29/4

8

‘रत्नाकर’ और उनका उद्धव-शतक

(आलोचनात्मक अध्ययन)

VISIT:-
(8) VINOD
BOOK DEPOT
FOR
OLD & NEW
Medical ... University College
SCHOOL ... COMPETITION BOOKS
... JAMMU-1800...

V RS

निवेदन

कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ब्रजभाषा-काव्य के अंतिम 'क्लैसिक' कवि माने जाते हैं। यों तो उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी और वे कवि, गद्यकार, अनुवादक, टीकाकार तथा आलोचक सभी कुछ थे किन्तु इन समस्त रूपों में उनका कवि रूप ही सर्वाधिक भव्य एवं गरिमामण्डित था। रत्नाकरजी ने अनेक काव्य-ग्रन्थों का सृजन किया जिनमें सबसे महत्वपूर्ण कृति 'उद्धव-शतक' है। उद्धवशतक भ्रमरगीत परम्परा की एक अभिनव कड़ी है। भक्तिकालीन भावुकता तथा रीतिकालीन कलात्मकता ने इस काव्य-ग्रन्थ का शृङ्गार किया है। भावपक्ष एवं कलापक्ष के मणि-काँचन संयोग ने रत्नाकरजी की काव्य-कृति को उत्कृष्ट कोटि का बना दिया है। यद्यपि काव्य का वर्ण्य-विषय निर्गुण पर सगुण की विजय—अत्यन्त प्राचीन है और प्रायः समस्त भ्रमरगीत-कारों ने इसी का विवेचन किया है, किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा कौशल से उसे मौलिक और रमणीय बना दिया है। चित्रोपम वर्णनों ने काव्य के सौंदर्य में चार चाँद लगा दिए है। सूर की भावुकता और नन्ददास की तर्क-प्रणाली दोनों ही रत्नाकर के उद्धवशतक में विद्यमान हैं। गोपियों के तर्क भी नारी हृदय की सरलता और सरसता से आप्लावित हैं। उनमें कोरी बुद्धिवादिता नहीं अपितु हृदय और बुद्धि का संयोग है। उद्धवशतक का प्रत्येक छन्द अपनी रश्मि-राशि से झिलमिला रहा है तथा उत्कृष्ट भावों और श्रेष्ठ काव्य-कौशल से भरा हुआ है। भावुकता, चित्रोपमता, मनोवैज्ञानिकता, उक्ति-चातुर्य और वर्णन-कौशल से आपूरित रत्नाकर का उद्धवशतक भ्रमरगीत-काव्य का एक देदीप्यमान रत्न सिद्ध होता है।

उद्धवशतक के काव्य-सौष्ठव के उद्‌घाटन हेतु प्रस्तुत पुस्तक 'रत्नाकर और उनका उद्धवशतक' की रचना हुई है। इस आलोचनात्मक अध्ययन में किसी नवीनता का अनुसंधान करना अव्यावहारिक ही होगा, क्योंकि इस पुस्तक में पूर्ववर्ती विद्वान् लेखकों के अनुसंधान और मान्यताओं को छात्रोपयोगी बनाकर रखा गया है। फिर भी उसकी शैली आदि अपनी ही है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक उद्धवशतक के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

शुभकामनाओं के साथ

—उषा यादव

प्रश्नावली

संख्या **पृष्ठ**

१. श्री 'रत्नाकर' के जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए। १

२. भ्रमरगीत काव्य-परम्परा का दिग्दर्शन कराते हुए उद्धवशतक की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। १३

३. उद्धव-गोपी-संवाद विषयक हिन्दी की अन्य रचनाओं से उद्धव-शतक की तुलना करते हुए उसकी विशेषताएँ बतलाइए। १३

४. "उद्धव-शतक वह चित्रोपम सत्काव्य है जिसमें प्रबन्धात्मक मुक्तक का प्राधान्य है।" इस कथन की सविस्तार व्याख्या कीजिए। २६

५. उद्धव-शतक प्रबन्ध-काव्य है अथवा मुक्तक ? स्पष्ट कीजिए। २६

६. उद्धव-शतक किस प्रकार का काव्य है ? सविस्तार विवेचन कीजिए। २६

७. उद्धव-शतक एक भाव-प्रधान काव्य है जिसमें रमणीयता और नवीनता दोनों आ गई हैं। उद्धरण देते हुए इस कथन की विवेचना कीजिए। ३५

८. रत्नाकरजी में भावों का विश्लेषण तथा उनकी मार्मिक सजीव चित्रमयी अभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता है। प्रमाण तथा उद्धरण देते हुए इस कथन को स्पष्ट कीजिए। ३५

९. उद्धवशतक के भावपक्ष का विवेचन कीजिए। ३६

१०. "उद्धवशतक में कवि को विरह-वर्णन में अद्‌भुत सफलता मिली है।" सिद्ध कीजिए। ३६

११. "उद्धवशतक में दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्तों को लौकिक व्यवहार के क्षेत्र में वही तक प्रयुक्त किया गया है जहाँ तक उनमें उपयोगिता और उपयुक्तता का व्यापक तत्व सन्निहित है।" उद्धवशतक के अपने अध्ययन के आधार पर इस कथन का सप्रमाण स्पष्टीकरण कीजिए। ४७

१२. "उद्धवशतक में अत्यन्त मार्मिक तथा भावपूर्व काव्यमय पद्धति द्वारा निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का समर्थन दृष्टिगोचर होता हैं।" उदाहरण देते हुए इस कथन का

३. उद्धवशतक की दार्शनिक विचारधारा पर प्रकाश डालिए । ४७

४. "उद्धवशतक में मार्मिक भावाभिव्यक्ति के लिए अनुभावों का बहुत अधिक आश्रय लिया गया है । कहीं-कहीं तो अनेक अनुभावों के सुष्ठु सुगुम्फन में अत्यन्त प्रवीणता दिखाई गई है ।" उपर्युक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की प्रामाणिकता पर विचार कीजिए । ५६

१५. "रत्नाकर के काव्य में भाव-चित्रों को रमणीय बनाने के लिए अनुभावों का प्रयोग कुशलता से किया गया है ।" इस कथन की यथार्थता पर सप्रमाण विचार व्यक्त कीजिए । ५७

१६. "रत्नाकर जी का सौन्दर्य-दर्शन प्रायः सर्वत्र सत्काव्योचित शालीनता से मण्डित है ।" उद्धवशतक के आधार पर इस कथन की सत्यता पर विचार कीजिए । ६८

१७. "सूरसागर में ब्रज-बल्लभियों के प्रेमोद्गारों के सामने कृष्ण का भाव कुछ दब सा जाता है । रत्नाकरजी ने दोनों को समान भूमि पर प्रतिष्ठित किया है ।" इस दृष्टि से उद्धवशतक के वर्ण्य-विषय के प्रतिपादन में कवि की नवीन शैली की समीक्षा कीजिए । ७२

१८. उद्धवशतक के आधार पर रत्नाकरजी के प्रकृति-चित्रण की विशेषताएँ बताइये । ७७

१९. "भक्तों की अपेक्षा रत्नाकर कम रसमय किन्तु अधिक सूक्तिप्रिय हैं । रीति कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान, अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं ।" उद्धवशतक को दृष्टि में रखते हुए इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए । ८०

२०. "रत्नाकर जी के जीवनव्यापी श्रृङ्गार में छिपी हुई दुःख की छाया ही मानों 'उद्धवशतक' का केन्द्र पाकर साकार हो गई है ।" इस कथन की विवेचना कीजिए । ८७

२१. "एक पथ विशेष पर परिश्रमपूर्वक चलते-चलते रत्नाकरजी साहित्य में अपनी एक लीक बना गये हैं ।" इस कथन पर उद्धवशतक से उदाहरण देते हुए अपने विचार प्रकट कीजिए । ९०

२२. "रत्नाकरजी को भक्ति और रीतिकाल के बीच की कड़ी कहा जाता है ।" उद्धवशतक के आधार पर इस मत की सार्थकता सिद्ध ९४

२३. रचनाकाल के अतिरिक्त क्या कुछ और भी तत्व रत्नाकर के काव्य में मिलते हैं जिसके स्थान पर उन्हें आधुनिक कवियों की कोटि में स्थान दिया जा सके ? वर्ण्य-वस्तु और रचना-शैली की दृष्टि से उन्हें हिन्दी काव्य की किन प्रवृत्तियों से प्रभावित मानना ठीक होगा ? ६४

२४. उद्धवशतक में भक्तिकालीन भाव-प्रवणता तथा रीतिकालीन चमत्कार-निपुणता का मणि-कांचन संयोग दिखायी देता है। उपयुक्त उदाहरण देते हुए इस कथन का समाधान कीजिए। ६४

२५. "उद्धवशतक में भक्तिकालीन आत्मा रीतिकालीन कलेवर में अवतरित हुई है।" इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए। ६४

२६. "भक्तिकालीन भावुकता तथा रीतिकालीन कलात्मकता से समन्वित होकर रत्नाकर का उद्धवशतक अतीव हृदयहारी बन गया है।" सिद्ध कीजिए। ६४

२७. "रत्नाकरजी में अपनी बहुज्ञता को काव्यानुकूल बनाने की अपूर्व क्षमता थी। उद्धवशतक में उनकी बहुज्ञता का प्रकाशन अत्यन्त चारुता और चतुरता से हुआ है।" उपयुक्त उद्धरणों के आधार पर इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए। १०६

२८. उद्धवशतक के आधार पर कविवर रत्नाकर की काव्य-शैली की समीक्षा कीजिए। ११२

२९. उद्धवशतक की भाषा, उसके पदलालित्य तथा अर्थ-गौरव पर सोदाहरण प्रकाश डालिए। ११७

३०. उद्धवशतक के अलंकार-विधान का विवेचन कीजिए। १२८

३१. उद्धवशतक में प्रयुक्त साँगरूपक अत्यन्त मार्मिक हैं। उनमें प्रस्तुत-अप्रस्तुत का अत्यन्त सुन्दर सामञ्जस्य है। भावाभिव्यंजन की दृष्टि से वे उच्चकोटि के हैं और रत्नाकर के सूक्ष्म निरीक्षण और उनकी कलाविषयक सुरुचि के पूर्ण परिचायक हैं। उपयुक्त उद्धरण देते हुए कथन की यथार्थता पर प्रकाश डालिए। १३५

३२. "छन्दों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकरजी की अधिकारपूर्ण कलम स्वीकार की गई है; विशेषतः इनके कवित्त बेजोड़ हुए हैं।" उद्धवशतक से उपयुक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिए

३३. उद्धवशतक की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। १४४
३४. रत्नाकर जी कृत उद्धवशतक को ध्यान में रखते हुए उनके काव्य-कौशल पर प्रकाश डालिए। १४४
३५. "उद्धवशतक में काव्य-कला के आभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों पक्षों का पूर्ण सामञ्जस्य दिखाई पड़ता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए। १४४
३६. कविवर रत्नाकर और डा० रसाल के 'उद्धवशतक' की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए। १५६
३७. कलापक्ष की दृष्टि से रत्नाकर एवं रसाल के उद्धवशतक-काव्य का मूल्यांकन कीजिए। १६७
३८. ब्रजभाषा काव्यधारा में कविवर रत्नाकर का स्थान निर्धारित कीजिए। १७९

रत्नाकर और उद्धवशतक

प्रश्न १—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के जीवन-परिचय व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—जीवन-परिचय—रत्नाकरजी का जन्म काशी के एक समृद्ध वैश्य परिवार में विक्रमी संवत् १९२३ (सन् १८६६ ई०) में भाद्रपद शुक्ला ५ (ऋषि पंचमी) को हुआ था। इससे ठीक सोलह वर्ष पूर्व, इसी तिथि को काशी में ही भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ था। रत्नाकरजी अपनी साहित्य साधना की दिशा में भारतेन्दुजी से बहुत प्रभावित रहे। रत्नाकर के पूर्वज आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त संपन्न थे। उनके प्रपितामह का नाम सेठ तुलाराम था और उनके पूर्वज पहले दिल्ली और फिर लखनऊ में आकर बस गए थे। एक बार सेठ तुलाराम लखनऊ के नवाब जहाँदरशाह के साथ काशी आए और इस पवित्र तीर्थस्थान से इतने प्रभावित हुए कि काशी के शिवालाघाट पर मकान खरीदकर वहीं रहने लगे। सेठ तुलाराम के पुत्र का नाम संगमलाल था और उनके दो पुत्र बाबू पुरुषोत्तमदास तथा बाबू हरीदास हुए। पुरुषोत्तमदास के पुत्र बाबू रघुनाथदास एवं बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हुए। रत्नाकरजी के पिता बाबू पुरुषोत्तमदास की भारतेन्दुजी से गाढ़ी मित्रता थी। यद्यपि रत्नाकरजी के पिता आयु में भारतेन्दुजी से दस-बारह वर्ष बड़े थे, तथापि उनकी मैत्री अत्यन्त प्रगाढ़ थी। एक दिन प्रातःकाल तड़के पुरुषोत्तमदासजी के द्वार पर किसी ने आवाज दी और पैसा माँगा। भिखारी के लिए नौकर द्वारा जब पुरुषोत्तमदासजी ने पैसा भिजवाया तो वह भारतेन्दुजी को पहचान गया। तुरन्त ही भारतेन्दुजी को ऊपर बुलवाया गया और उनके इस परिहास से सारा घर हास्य पूरित हो उठा। रत्नाकरजी के हृदय में बचपन से ही कविता के प्रति रुचि थी और वे कवियों की मण्डली में बैठा करते थे। एक बार उनके विषय में भारतेन्दु ने कहा था। "यह लड़का आगे चलकर अच्छा कवि बनेगा।"

रत्नाकर की शिक्षा पाँच वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ हुई। एक मौलवी द्वारा उर्दू-फारसी की शिक्षा दी जाने लगी। इसके एक वर्ष पश्चात् हिन्दी-

शिक्षा प्रारंभ हुई। लगभग आठ वर्ष की आयु में उन्हें बनारस के बी० पी० स्कूल में अंग्रेजी की शिक्षा के लिए भर्ती कराया गया। यहाँ अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त करके आप क्वीन्स कालिज में प्रविष्ट हुए और सन् १८६१ ई० में अंग्रेजी, दर्शन तथा फारसी लेकर २५ वर्ष की आयु में बी० ए० पास किया। तदुपरान्त उन्होंने एम० ए० तथा एल-एल० बी० में प्रवेश लिया किन्तु माताजी की मृत्यु हो जाने के कारण परीक्षा न दे सके। इसके पश्चात् उनका अध्ययन समाप्त हो गया। अपने विद्यार्थी-जीवन में वे परिश्रमी कुशाग्रबुद्धि एवं अध्यवसायी विद्यार्थी माने जाते थे और अध्यापक गण उनसे संतुष्ट तथा प्रसन्न रहते थे।

अध्ययन की समाप्ति के उपरान्त लगभग ६ वर्षों तक रत्नाकरजी विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों में संलग्न रहे। आरम्भ में उन्होंने 'जकी' उपनाम से उर्दू-फारसी में कविता प्रारम्भ की। इस दिशा में मिरजा मुहम्मद हसन फायज उनके गुरु थे। किन्तु फारसी कविता उन्हें अधिक समय तक आकृष्ट न रख सकी और उन्होंने हिन्दी कविता के क्षेत्र में पदार्पण किया। ब्रजभाषा के तो वे अनन्य उपासक ही बन गये।

सन् १८९३ ई० में रत्नाकरजी ने 'साहित्य सुधानिधि' नामक पत्र निकाला जो कि अत्यन्त शीघ्र लोकप्रिय हो गया। इसी पत्रिका में उनका 'दोहा-नियम-रत्नाकर' नामक निबन्ध प्रकाशित हुआ जिसका डा० ग्रियर्सन ने 'लाल चन्द्रिका' की भूमिका में उल्लेख किया। डा० ग्रियर्सन ने रत्नाकरजी की बड़ी प्रशंसा भी की और इस प्रकार साहित्यिकों का ध्यान विशेष रूप से उनकी ओर आकृष्ट हुआ। सन् १८९८ ई० में सरकारी दफ्तरों में हिन्दी के प्रवेश कराने के लिये एक 'डेपुटेशन' तत्कालीन लाटसाहब से मिला था जिसमें रत्नाकरजी भी सम्मिलित थे। इन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिली और सन् १९०० ई० में कचहरियों में हिन्दी का प्रवेश हो गया। सन् १९०० ई० में प्रसिद्ध पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इसके प्रथम अंक के संपादकीय मण्डल में रत्नाकरजी का नाम भी था।

सन् १९०० ई० में रत्नाकरजी ने एटा जिला में स्थित अवागढ़ नामक स्थान में खजाने के निरीक्षक पद पर नौकरी प्रारम्भ की। किन्तु जलवायु अनुकूल न होने के कारण दो वर्ष उपरांत नौकरी छोड़कर पुनः काशी लौट आये। सन् १९०२ ई० में अयोध्या-नरेश सर प्रतापनारायण सिंह बहादुर

के प्राइवेट सेक्रेटरी बनकर अयोध्या चले गये। अपनी योग्यता एवं कार्य-क्षमता के बल पर वे चीफ सेक्रेटरी के पद पर पहुँच गए। सन् १९०६ में महाराज के दिवंगत हो जाने पर महारानी श्रीमती जगदम्बा देवी ने आपको अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया और सन् १९२८ ई० तक वे इस पद पर आसीन रहे। इस अवधि में उन्हें अपने विरोधियों के मिथ्या प्रचार का सामना करना पड़ा। अपनी योग्यता के कारण रत्नाकरजी महारानी के विशेष कृपा-पात्र बन गए थे अतएव उनके विरोधियों ने उनके चरित्र पर अनेकों लाँछन लगाने प्रारम्भ कर दिये। इन मिथ्या प्रचारों ने रत्नाकरजी को बहुत खिन्न कर दिया और वे साहित्य-सेवा न कर सके। सन् १९०७ ई० में **'हम्मीर हठ'** के सम्पादन के उपरान्त सन् १९२० तक वे साहित्यिक क्षेत्र से पूर्ण पृथक रहे। महारानी की प्रेरणा से १४ मई सन् १९२१ ई० में उन्होंने **'गंगावतरण'** का सृजन प्रारम्भ किया तथा साथ ही **'बिहारी सतसई'** पर टीका भी लिखते गए। ये दोनों ग्रन्थ आपने महारानी जगदम्बा देवी को समर्पित किए।

स्वास्थ्य खराब रहने के कारण सन् १९२८ ई० में अपने पद से त्याग-पत्र देकर रत्नाकरजी काशी आ गए। अस्वस्थ होने पर भी वे 'सूरसागर' के सम्पादन में अथक परिश्रम करते रहे। ब्रजभाषा का व्याकरण और कोष निर्माण करने में भी वे संलग्न रहे। किन्तु इस परिश्रम ने उनके स्वास्थ्य को और गिरा दिया। डाक्टरों ने उन्हें आराम करने की सलाह दी परन्तु उन्होंने काम बन्द न किया। डाक्टरों ने उन्हें यूरोप के किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान में घूम आने को कहा परन्तु उन्होंने इसे स्वीकार न किया। सत् १९३२ ई० के ग्रीष्म काल में हरिद्वार जाते समय रत्नाकरजी ने श्री दुलारेलाल भार्गव से कहा कि इस शरीर का कोई भरोसा नहीं अतएव सूरसागर के कार्य को पूरा करके छपवा लेना। विधि के विधान को कोई टाल नहीं सकता। वास्तव में रत्नाकरजी हरिद्वार से काशी न लौट पाये और २१ जून सन् १९३२ में ६६ वर्ष की अवस्था में हरिद्वार में उनका स्वर्गवास हो गया।

रत्नाकरजी का गार्हस्थ जीवन सुखी नहीं कहा जा सकता। यों तो मानव जीवन ही सुख:दुख के ताने-बाने से बुना है पर रत्नाकरजी के पारिवारिक जीवन में सुख की अपेक्षा दु:ख का ही अधिक साम्राज्य रहा। उनके दो विवाह हुए किन्तु दोनों ही पत्नियाँ अल्पकाल में स्वर्गवासिनी हो गईं और रत्नाकरजी को विधुर रूप में जीवन व्यतीत करना पड़ा। प्रथम पत्नी श्रीमती भवानी देवी

से उन्हें दो सन्तानें हुईं—१. कमलमणि देवी तथा २. श्री राधेकृष्ण दास। दूसरी पत्नी से भी दो सन्तानें हुईं परन्तु दोनों ही अल्पायु में दिवंगत हो गईं और दूसरी पत्नी भी सन् १९०४ में स्वर्ग सिधार गईं। रत्नाकरजी के बड़े भाई बाबू रघुनाथदास जी की विधवा पत्नी ने ही राधेकृष्ण दास की देख-भाल और लालन-पालन किया। इस प्रकार रत्नाकरजी का व्यक्तिगत जीवन प्रियजनों के असमय वियोग की पीड़ा से सदैव आक्रान्त बना रहा।

रत्नाकरजी के मित्रों और परिचितों की संख्या कम न थी। बाबू श्यामसुन्दर दास उनके सबसे अभिन्न मित्र थे। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० बदरीनाथ भट्ट, बाबू रामकृष्ण वर्मा आदि से भी उनकी मित्रता थी। तत्कालीन सभी साहित्यकारों से रत्नाकरजी का परिचय था। रत्नाकरजी के निधन ने हिन्दी साहित्य संसार में जो स्थान रिक्त किया है, उसकी पूर्ति संभव नहीं है। विशेषतः ब्रजभाषा काव्य के रिक्तस्थान की पूर्ति तो असंभव ही है।

व्यक्तित्व—रत्नाकरजी का व्यक्तित्व अत्यन्त गरिमा-मण्डित था। हिन्दी साहित्य के इतिहास के मध्ययुग ने उन्हें अपनी ओर पूरी तरह से आकृष्ट किया था। फलस्वरूप शरीर धारण से आधुनिक काल के कवि होते हुए भी वेशभूषा और विचार-धारा से वे मध्ययुग के कवि थे। ग्रेजुएट होते हुए भी वे ठेठ बनारसी ठाठ में रहा करते थे। धोती, कुरता, बनारसी दुपलिया टोपी तथा दुपट्टा उनका परिधान था। बाहर आते-जाते समय शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहना करते थे। भारतीय संस्कृति के रंग में वे पूरी तरह रंगे हुए थे। उनके वस्त्र इत्र की मदिर-मादक सुगंधि से युक्त रहते थे। सिर में वे चमेली का तेल डालते थे और आँखों में सुरमे की हल्की लकीर डाला करते थे। प्रातःकाल वे जल्दी उठते थे और नित्य कर्म से निवृत्त हो व्यायाम करते थे। घुड़सवारी का भी उन्हें शौक था। परिमाण-स्वरूप उनका स्वास्थ्य अत्यन्त उत्तम था और ६०-६५ वर्ष की आयु में भी वे ४०-४५ वर्ष के से प्रतीत होते थे।

रत्नाकरजी वैभव की गोद में पले थे। धन और सम्पत्ति के अथाह-सागर में उन्होंने बाल्यकाल से ही क्रीड़ा की थी। फलस्वरूप उनमें विलासिता आ गई थी। एक बार जब वे अपने कई मित्रों के साथ रेल के फर्स्ट क्लास में बैठ कर सफर कर रहे थे, नौकर जलपान वगैरह रख कर चला गया। खा-पीकर

रत्नाकरजी ने नौकर को आवाज दी और उसे पत्तल फेंकने का आदेश दिया खिड़की के पास बैठे होने पर भी रत्नाकरजी स्वयं पत्तल फेंकने का कष्ट न कर सके, यह देख पदमसिंह शर्मा को आश्चर्य हुआ और वे इस शेर को बोल पड़े—

"नजाकत इस कदर है उनके पाकी
उठा सकती नहीं बारे हिना की।"

अर्थात् उस पाँव की कोमलता इतनी अधिक है कि मेंहदी के रंग का बोझ भी नहीं उठा सकती। शेर सुनकर रत्नाकरजी बड़े प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने सफाई दी कि बचपन से ही सारे काम नौकरों से कराये जाने की आदत पड़ी हुई है। इसलिए हर समय नौकरों से घिरा रहने के कारण अपना कोई काम स्वयं नहीं कर पाता हूँ।

रत्नाकरजी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है, "रत्नाकरजी में वह जिन्दादिली थी, जो एक विचित्र आकर्षण रखती थी। जब वे दिल खोलकर बातचीत करते थे तो भले ही किसी को उनके मुँहफटपन में सुसंस्कृति की कुछ कमी मालूम पड़ती हो, पर उनके स्वभाव की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि उनमें कृत्रिमता का सर्वथा अभाव था।......मानों वे अपने प्रत्येक समालोचक से कहते थे—"जैसे कुछ हम हैं तुम्हारे सामने हैं। तुम्हारी खुशी या नाराजगी के कारण हम अपना जीवन-क्रम बदल नहीं सकते।"[१]

रत्नाकरजी की **स्मरण-शक्ति** अत्यन्त तीक्ष्ण थी। एक बार हरिद्वार में उनका एक सन्दूक चोरी चला गया जिसमें अन्य सामान के साथ पाँच सौ कवित्तों की चौपतिया भी रक्खी थी। रत्नाकरजी ने आधे से अधिक कवित्त अपनी स्मरण शक्ति के बल पर पुनः ज्यों के त्यों लिख लिये। प्राचीन कवियों की न जाने कितनी कविताएँ उन्हें कंठस्थ थीं।

रत्नाकर जी **कविता-पाठ बड़ा सुन्दर** करते थे। कविता पाठ करते समय उनका मुख भावोद्दीप्त हो उठता था और मुख-मुद्रा अत्यन्त प्रभावशाली हो जाती थी। यथास्थान विराम देते हुए एवं वर्णों का स्पष्ट उच्चारण करते हुए वे इतने आकर्षक ढंग से कविता पाठ करते थे कि श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हो

---

१. साहित्य-सन्देश—फरवरी-मार्च १९६७, पृ० २७०।

जाते थे। कवित्त-सवैयों का वे इतने मधुर और संगीतात्मक ढंग से सस्वर पाठ करते थे कि उनके जीवन-काल में ही इस शैली को 'रत्नाकर शैली' कह-कर पुकारा जाने लगा था। समस्या-पूर्ति का उन्हें शौक था और एक-एक समस्या पर वे अनेक पूर्तियाँ बना डालते थे।

रत्नाकरजी **विनोदी वृत्ति** के थे। एक बार भारत जीवन प्रेस के अध्यक्ष श्री बलवीर ने प्राचीन कवियों की कविताओं का संग्रह तैयार करते समय 'पजनेस' की प्रत्येक कविता के लिए दो रुपए पुरुस्कार देने की घोषणा की। रत्नाकरजी 'पजनेस' की शैली में कुछ कवित्तों की रचना कर 'बलवीर' जी के पास पहुँचे। बलवीर जी को तनिक भी सन्देह न हुआ कि वे कवित्त 'पजनेस' द्वारा रचित नहीं है। जब वे पुरस्कार की राशि देने लगे तो रत्नाकर जी हँस पड़े और बोले कि ये तो मेरे द्वारा लिखे हुए कवित्त हैं। इस घटना से रत्नाकर जी की परिहासवृत्ति प्रकट होती है। अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वे अपने हंसमुख स्वभाव द्वारा प्रभावित कर लेते थे।

रत्नाकर जी **पर्यटन प्रेमी** थे। हरिद्वार, श्रीनाथद्वारा, जगन्नाथपुरी तथा कश्मीर उनके प्रिय स्थान थे। प्रत्येक वर्ष हरिद्वार वे अवश्य ही जाते थे। ग्रीष्म काल में वे किसी ठण्डे स्थान पर जाया करते थे। उन्होंने सुदूर दक्षिण को छोड़कर सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया था। समुद्र-तट उन्हें पसन्द था।

रत्नाकर जी **बहुज्ञ** थे। संगीत, कविता, वैद्यक, रसायन विज्ञान आदि क्षेत्रों में उनकी पहुँच थी। अत्यन्त परिश्रम से वे मूल्यवान औषधियाँ तैयार करते थे। अभी तक उनके वंशजों के पास उनके द्वारा निर्मित औषधियाँ विद्यमान हैं। मृदंग, तबला, सितार, वायलिन आदि वाद्यों को वे कुशलता पूर्वक बजा लेते थे। विभिन्न विषयों का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, पंजाबी और बंगला भाषाओं का आपको पर्याप्त ज्ञान था।

रत्नाकर जी पुरातत्व सामग्री के प्रति अभिरुचि रखते थे। उन्होंने प्राचीन अभिलेखों और शिलालेखों को पढ़ने का शौक था। पुरानी मूर्तियाँ और सिक्के एकत्र करना उन्हें पसन्द था। चने की दाल पर सुई की नोक से छोटे-छोटे अक्षरों में श्लोक लिखना उनके मनोरंजन का साधन था। सन्ध्या वन्दन उनका नित्यकर्म था। वे गौड़ीय माध्य सम्प्रदाय के वैष्णव थे और कृष्ण उनके इष्टदेव थे किन्तु धार्मिक संकीर्णता उनमें नाम मात्र को भी न थी।

रत्नाकरजी में आत्म-सम्मान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी परन्तु वे अभिमानी नहीं थे। उन्हें अपनी योग्यता का परिज्ञान था। कविता के क्षेत्र में गुरु का वे विशेष महत्व समझते थे। उर्दू-फारसी में कविता करते समय मिर्जा मुहम्मद हसन 'फायज' को उन्होंने अपना गुरु माना था। उस समय रत्नाकर जी की आयु बहुत कम थी। जब वे ५३ वर्ष के थे तो लोगों के आग्रह से किसी मुशायरे के लिए उन्हें एक गजल लिखनी पड़ी। उन्होंने अपने गुरु के पास कहला भेजा कि मैं आपकी खिदमत में हाजिर होना चाहता हूँ, मेहरबानी करके वक्त बतला दीजिए। मौलवी साहब स्वयं ही चले आए। रत्नाकरजी बोले कि मैं स्वयं ही गजल ठीक कराने के लिए आपकी खिदमत में हाजिर होना चाहता था। अत्यन्त संकुचित होते हुए गुरु ने गजल में थोड़ा-बहुत संशोधन किया और तभी रत्नाकरजी ने उसे मुशायरे में पढ़ा। इस प्रकार गुरु-भक्ति का आदर्श उनमें विद्यमान था।

रत्नाकर जी को समस्या-पूर्ति का बड़ा शौक था। उनका कहना था—

"दीजिए समस्या हमें कवित्त बनाइवे को—
कलम रुके तो सर कलम कराइए।"

इस प्रकार यह प्रकट है कि रत्नाकरजी का व्यक्तित्व अत्यन्त ओजस्वी तथा प्रभावशाली था। उनके व्यक्तित्व ने तत्कालीन साहित्यकारों को प्रभावित किया और सभी ने रत्नाकरजी के महत्व का अनुभव किया।

कृतित्व—ब्रजभाषा काव्य रत्नाकरजी के कृतित्व का चिर-ऋणी रहेगा। श्री वियोगी हरि ने लिखा है—

"ब्रजभाषा-लालित्य-मधुप, साहित्य-गुनाकर।
कृष्ण-प्रेम-रस-लीन-मीन, कविवर रत्नाकर॥
'समालोचनादर्श' 'हरीचन्द' 'गंगावतरण'।
रचि, सतसैया-मथन कियौ रसिकन रस-वितरन॥
ब्रज-रस-प्रवाह पूरन कियौ, उद्धव-शतक प्रकाशिकैं।
कविदेव-सरिस रचना रची, बानी विमल विलासिकैं॥

रत्नाकर जी की साहित्य-साधना गद्य एवं पद्य दोनों क्षेत्रों में दिखाई पड़ती है। काव्य के क्षेत्र में उन्होंने प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों काव्य-शैलियों को अपनाया। गद्य में उन्होंने अनेक साहित्यिक तथा ऐतिहासिक लेख लिखे। रत्नाकर जी का सम्पूर्ण कृतित्व निम्न पाँच भागों में बाँटा जा सकता है—

१. लेख २. भाषण
३. सम्पादित ग्रन्थ। ४. अनुवादित ग्रन्थ
५. मौलिक काव्य-ग्रन्थ।

(१) **लेख**—रत्नाकर जी ने ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दोनों प्रकार के लेख लिखे। उनमें से कुछ तो ऐसे थे जिन्होंने साहित्य जगत में हलचल मचा दी थी। ये लेख अत्यन्त सारगर्भित हैं तथा उनके गहन अध्ययन तथा सूक्ष्म चिन्तन के सूचक हैं। ये लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी फाइलों में छिपे पड़े हैं। इनका कोई संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इन लेखों की भाषा विषयानुकूल है। रत्नाकर जी के गद्य की भाषा-शैली सरल, सुबोध, प्रवाहमयी तथा प्रसादगुण युक्त है। भाषा में न तो संस्कृत के शब्दों की भरमार है और न उर्दू-फारसी के शब्दों का ही बाहुल्य है। फलस्वरूप भाषा अत्यन्त सरल तथा आकर्षक बन गई है। रत्नाकरजी के लेख निम्नलिखित हैं—

(क) **ऐतिहासिक लेख**—

१. महाराज शिवाजी का नया पत्र।
२. शुंग वंश का एक शिलालेख।
३. शुँग वंश का एक नया शिलालेख।
४. एक ऐतिहासिक पाषाणाश्व की प्राप्ति।
५. समुद्र गुप्त का पाषाणाश्व।
६. एक प्राचीन मूर्ति।

(ख) **साहित्यिक लेख**—

१. रोला छन्द के लक्षण।
२. महाकवि बिहारीलाल की जीवनी।
३. बिहारी सतसई सम्बन्धी साहित्य।
४. साहित्यिक व्रजभाषा तथा उसके व्याकरण की सामग्री।
५. घनाक्षरी नियम रत्नाकर।
६. वर्ण सवैया छन्द।
७. साहित्य रत्नाकर।
८. श्री देवदत्त कवि का शिवाष्टक।
९. तिथियों तथा वारों को मिलाने की सुगम रीति।

(२) **भाषण**—रत्नाकर ने सम्मेलनों में सभापति पद से अनेक बार भाषण भी दिये थे। अपने भाषणों में उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया उसमें साहित्यिकता और भाव-गांभीर्य दोनों विद्यमान हैं। भाषा में गम्भीरता होते हुए भी दुरूहता नहीं है। सन् १९२२ में दिए गए उनके एक भाषण की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

"......यह लोगों की भ्रान्त धारणा है कि अनुवादों से साहित्य की पर्याप्त वृद्धि होती है। वस्तुतः बात यह है कि चाहे इस प्रकार से अपने साहित्य में क्षणिक प्रकाश आ जाए और अन्यान्य साहित्यों की सामग्री से पूर्ण होकर अपना साहित्य भी परिपुष्ट दिखाई पड़ने लगे परन्तु इस प्रकार की परकीय संपत्ति से संपन्न होना लज्जास्पद ही है।......इसका यह तात्पर्य नहीं है कि साहित्य की वृद्धि में अनुवादों का कोई स्थान ही नहीं। आरम्भ में प्रायः अनुवादों की ही बाढ़ आती है। पर वह बाढ़ ऐसी संयत और अनुकूल होनी चाहिये जो आगे चलकर मौलिकता की प्रसविनी हो।"

रत्नाकर जी के भाषण निम्नांकित हैं—

१. प्रथम अखिल भारती कवि-सम्मेलन के सभापति-पद से दिया गया भाषण।

२. वीसवें अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति-पद से दिया गया भाषण।

३. चतुर्थ-प्राच्य-सम्मेलन के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष-पद से अंग्रेजी में दिया गया भाषण।

(३) **सम्पादित ग्रन्थ**—रत्नाकर जी एक सफल संपादक भी थे। सन् १८९३ ई० में उन्होंने 'साहित्य सुधानिधि' नामक मासिक पत्र निकाला था, जिसका संपादन वे तथा देवकीनन्दन खत्री मिलकर करते थे। रत्नाकर जी ने अनेक पुस्तकों का सम्पादन भी किया जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. सन् १८८७ ई० में **'सुधासर'** का संपादन किया। इस ग्रन्थ में प्राचीन कवियों के शृङ्गार रस के कवित्त-सवैये संग्रहीत हैं।

२. सन् १८९४ ई० में चन्द्रशेखर बाजपेयी कृत **'नख शिख'** का संपादन किया।

३. सन् १८९७ ई० में **'सुजान सागर'** का संपादन किया।

४. सन् १९०७ ई० में पं० चन्द्रशेखर बाजपेयी कृत **'हम्मीर हठ'** का संपादन किया।

५. दूलह कवि कृत **कवि-कुल-कंठाभरण** का संपादन भी किया।

६. चन्द्रशेखर बाजपेयी कृत **हित-तरंगिनी** का संपादन।

७. 'बिहारी रत्नाकर' नाम से **बिहारी सतसई** का भाष्य सहित संपादन।

८. **'सूरसागर'** का संपादन उन्होंने प्रारम्भ करके बहुत कुछ किया किन्तु असामयिक मृत्यु के कारण पूरा न कर सके तथा इसे बाद में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने पूरा किया।

९. उपर्युक्त संपादित ग्रन्थों के अतिरिक्त रत्नाकरजी ने अनेक अन्य ग्रन्थों का भी संपादन किया। उर्दू कवि कलक कृत 'वासोख्ते कलक' नामक कृति भी संपादित की। ब्रह्मदत्त कवि द्वारा रचित दीप प्रकाश तथा सुन्दर कवि द्वारा रचित सुन्दर श्रृङ्गार का भी संपादन किया।

(४) **अनुवादित ग्रन्थ**—रत्नाकरजी ने अंग्रेजी कवि 'पोप' के काव्य-ग्रन्थ 'ऐसे ऑन क्रिटीसिज्म' का पद्यानुवाद 'समालोचनादर्श' नाम से किया।

अनुवाद ब्रजभाषा में है। रत्नाकरजी ने पोप की रचना के मूल भावों की अत्यन्त कुशलता पूर्वक रक्षा की है। इस कार्य में उन्हें आश्चर्यजनक सफलता मिली है और यह रचना अनुवाद नहीं अपितु उनकी मौलिक रचना प्रतीत होती है। कहीं-कहीं पोप ने व्याकरण और छन्द सम्बन्धी त्रुटियाँ की है किन्तु रत्नाकरजी ने अपने अनुवाद में इन्हें सुधार लिया था। रत्नाकरजी का यह अनुवाद पोप की कृति का अविकल अनुवाद नहीं है। कुछ अंश अविकल अनुवाद, कुछ उसका छायानुवाद तथा कुछ अंश पूर्णतः मौलिक हैं। मूल रचना में ७४४ पंक्तियाँ हैं और रत्नाकर जी ने अनुवाद ७६० पंक्तियों में किया है। इसके पश्चात् २४ पंक्तियाँ उन्होंने अपनी ओर से लिखी हैं तथा इनमें युग का प्रभाव प्रतिबिम्बित हो रहा है।

(५) **मौलिक काव्य ग्रन्थ**—रत्नाकरजी ने प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य ग्रन्थों का सृजन किया था। उनके काव्य ग्रन्थों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

१. **हिंडोला**—यह रत्नाकर जी का प्रथम काव्यग्रन्थ है और इसका प्रकाशन सन् १८९४ में हुआ था। इसमें कवि ने वर्षाऋतु में राधा-कृष्ण के बन बिहार और झूला झूलने का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। प्रकृति

की सौंदर्य-सुषमा का इसमें सजीव अंकन है और कलापक्ष भी अत्यन्त उत्कृ कोटि का है। संयोग शृङ्गार का अलंकारों के माध्यम से उत्कर्ष हुआ है।

२. **समालोचनादर्श**—यह कवि की अनूदित रचना है। इस पर हम पहले विचार कर चुके हैं।

३. **हरिश्चन्द्र**—यह रत्नाकर जी का खण्ड-काव्य है। इसमें कवि ने सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा वर्णित की है। भाव-सौंदर्य की दृष्टि से यह काव्य अत्यन्त सफल है और इसमें प्रतिपादित करुण रस पाठकों के नयनों को सहज ही अश्रुप्लावित कर देता है इस काव्य की रचना रोला छन्द में हुई है और इसमें २३६ रोला छन्द प्रयुक्त हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के आधार पर रत्नाकरजी ने इस काव्य-ग्रन्थ को लिखा है।

४. **कलकाशी**—यह कवि की अपूर्ण कृति है। इसमें वे एक छप्पय तथा १४२ रोला छन्द लिख सके थे। अपनी जन्मभूमि काशी के प्रति कवि के हृदय में अनन्य अनुराग था इसीलिए बड़े ही मनोयोग से उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है। काशी के जन-जीवन का जीता-जागता चित्र इसमें उपस्थित है। यद्यपि कहीं-कहीं वर्णनों का विस्तार पाठक को उवा देता है परन्तु फिर भी यह रचना अत्यन्त आकर्षक बन पड़ी है।

५. **शृङ्गार लहरी**—इसमें कवि की समय-समय पर रची गई मुक्तक कविताएँ संगृहीत हैं। इसमें प्रधानतः संयोग शृङ्गार और कहीं-कहीं वियोग की अभिव्यंजना है। इसमें १६८ छन्द हैं तथा कवित्त सवैयों में इसकी रचना हुई है। पद्माकर के 'जगद् विनोद' का इस पर थोड़ा-सा प्रभाव है।

६. **प्रकीर्ण पद्यावली**—इसमें अधिकांशतः कवि की समस्या पूर्तियाँ संगृहीत हैं। इसके वर्ण्य-विषय विविध प्रकार के हैं। देशभक्ति, प्रकृति-चित्रण, धार्मिक भावना आदि को लेकर कवि ने इसकी कविताएँ लिखी हैं। इसमें १६२ छंद हैं तथा कवित्त, छप्पय, बरबै, सवैया, दोहा तथा रोला छन्दों में लिखे गए हैं।

७. **गंगा लहरी**—इस काव्य-कृति में रत्नाकरजी ने गंगा की मुक्ति प्रदायिनी महिमा का वर्णन करते हुए गंगा के प्रति अपना आत्म-निवेदन वर्णित किया है। पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' तथा पद्माकर की 'गंगालहरी' से संभवतः उन्होंने इसमें प्रेरणा ग्रहण की थी। किन्तु बाह्य प्रभाव उनके व्यक्तित्व

इस प्रकार आत्मसात हो गए हैं कि अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं और किसी अनुकृति की पहचान नहीं की जा सकती। इसमें ५२ कवित्त हैं।

८. **विष्णु लहरी**—इसके कवित्तों की संख्या भी ५२ है। इसमें कवि के विष्णु के प्रति मार्मिक उद्गारों की व्यंजना है।

९. **रत्नाष्टक**—इसमें सोलह अष्टक हैं। जो कि इस प्रकार हैं—१. श्रीशारदाष्टक, २. श्रीगणेशाष्टक, ३. श्रीकृष्णाष्टक, ४. गजेन्द्रमोक्षाष्टक, ५. श्रीयमुनाष्टक, ६. श्रीसुदामाष्टक, ७. श्रीद्रौपदी अष्टक, ८. तुलसी अष्टक, ९. वसन्ताष्टक, १०. ग्रीष्माष्टक, ११. वर्षाष्टक, १२. शरदाष्टक, १३. हेमन्ताष्टक, १४. शिशिराष्टक, १५. प्रभाताष्टक, १६. सन्ध्याष्टक। इनमें कवि की भक्ति भावना, प्रकृति-चित्रण आदि का निरूपण है।

१०. **वीराष्टक**—इसमें चौदह अष्टक हैं जोकि इस प्रकार हैं—१. श्री कृष्णदूतत्व, २. भीष्म प्रतिज्ञा, ३. वीर अभिमन्यु, ४. जयद्रथवध, ५. महाराणा प्रताप, ६. छत्रपति शिवाजी, ७. श्री गुरु गोविन्दसिंह, ८. महाराज छत्रसाल, ९. श्री महारानी दुर्गावती, १०. सुमति, ११. वीर नारायण, १२. श्री नीलदेवी, १३. महारानी लक्ष्मीबाई, १४. श्री ताराबाई। इसके प्रथम चार अष्टक पौराणिक तथा शेष दस ऐतिहासिक हैं।

११. **गंगावतरण**—इस खण्डकाव्य की रचना अयोध्या की महारानी जगदम्बा देवी के आग्रह और प्रेरणा से हुई। पहले कवि ने इसे सौ-सवा सौ छंदों में समाप्त किया था। १४ मई १९२१ से १५ जून १९२१ में इसकी रचना की थी। किन्तु महारानीजी तथा अन्य कुछ मित्रों के आग्रह से रत्नाकरजी ने इसे बाद में बढ़ा दिया। गंगावतरण की कथा का मुख्य आधार वाल्मीकि रामायण है। कथा तेरह सर्गों में विभक्त है। प्रारम्भ के आठ सर्ग अत्यन्त रोचक हैं तथा अंतिम पाँच सर्गों में कथा का अनावश्यक विस्तार है। श्रृङ्गार, वीर तथा करुण रस की इसमें सुन्दर योजना है। कलापक्ष तथा भावपक्ष दोनों ही दृष्टियों से काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का बन पड़ा है।

१२. **उद्धवशतक**—यह रत्नाकरजी की सर्वोत्कृष्ट काव्य कृति है। इसमें ११८ घनाक्षरी छन्द हैं। भ्रमरगीत काव्य परम्परा का उद्धवशतक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का मण्डन है। कृष्ण के अनन्य अनुराग से आपूरित ब्रजवासियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने के लिए उद्धव ब्रज पहुँचते हैं परन्तु ब्रज में चतुर्दिक परिव्याप्त प्रेम-समीर

उनके हृदय के ज्ञान-मेघों को विदीर्ण कर देता है और वे भी प्रेम के रंग में रंग जाते हैं। यही उद्धवशतक की कथा है। रत्नाकरजी ने इसमें भावपक्ष और कलापक्ष का मणि-काँचन संयोग उपस्थित किया है। एक ओर भावों का रम्य और चित्ताकर्षक सौंदर्य पाठकों को विभोर करता है तो दूसरी ओर उक्ति-वैचित्र्य की छटा उसे तन्मय बना देती है। कवि ने गोपी-उद्धव-संवाद के पुराने विषय को अत्यन्त आकर्षक और नूतन रूप प्रदान कर दिया है।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रत्नाकरजी का कृतित्व हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। रत्नाकरजी एक ऐसे प्रतिभा संपन्न कवियों में से थे जिनको "कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू" कहा जाता है। यद्यपि उनका कवि रूप ही हिंदी साहित्य में प्रख्यात है, तथापि उनका निबंधकार, संपादक और टीकाकार का रूप भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। ब्रजभाषा के निर्वाणोन्मुख दीप ने उनके काव्य में अपना अंतिम आलोक विकीर्ण किया। निःसन्देह ब्रजभाषा काव्य उनका चिरऋणी रहेगा और माँ भारती उनकी रचनाओं से स्वयं को सदैव गौरवान्वित अनुभव करेगी।

प्रश्न २—भ्रमरगीत परम्परा का दिग्दर्शन कराते हुए उद्धवशतक की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ३—उद्धव-गोपी संवाद विषयक हिन्दी की अन्य रचनाओं से उद्धव-शतक की तुलना करते हुए उसकी विशेषताएँ बतलाइए।

उत्तर—भ्रमरगीत का अभिप्राय—'भ्रमरगीत' मूलतः उपालंभ काव्य है। काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से उसे विप्रलम्भ शृङ्गार से सम्बन्धित माना जाता है। कंस के आमंत्रण पर जब कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा चले गए और पर्याप्त समय तक वापिस नहीं लौटे तो ब्रजाङ्गनाएँ उनके विरह में संतप्त हो उठीं। कृष्ण मथुरा से आकर राज्य-कार्यों में इतने व्यस्त हो जाते है कि स्वयं ब्रज नहीं जा पाते और अपने अनन्य सखा उद्धव को ब्रजवासियों का कुशल-क्षेम जानने के लिए भेजते हैं। उद्धव का योगोपदेश गोपियों को एक ओर क्षुब्ध करता है तो कृष्ण की निष्ठुरता उन्हें दूसरी ओर आक्रोश से भर देती है। किन्तु उद्धव के सम्मुख वे अपने हृदयोद्गारों को व्यक्त कैसे करें? उद्धव अतिथि होने के कारण पूज्य हैं, प्रियतम कृष्ण के द्वारा प्रेषित होने के कारण

ौर अधिक वंदनीय हैं, उनसे कटु वचन कैसे कहे जायें? इसी समय एक भ्रमर वहाँ मंडराने लगता है और गोपियों की समस्या का निदान हो जाता है। वे निःसंकोच भाव से उस पर अपने मन का गुबार निकालने लगती हैं। भ्रमर एवं पुरुष की वृत्ति समान होती है। दोनों ही रस-लोलुप एवं प्रेम प्रवंचक होते हैं। गोपियों के विरह के अगाध पारावार में अहर्निश दग्ध होने के लिए छोड़ कर जो कृष्ण मथुरा में कुब्जा के आकर्षण पाश में बंध गए हैं, उन्हें गोपियाँ भ्रमर के व्याज से जी भर कर खरी-खोटी सुनाती हैं। फूल-फूल पर मंडराकर रस-पान करने वाले मधुप का सा ही उन्हें कृष्ण का व्यवहार प्रतीत होता है और वे उस पर मनमाने उपालम्भ बरसाती हैं। यही प्रसंग साहित्य में **भ्रमरगीत** के नाम से विख्यात है। **इसका मूल उद्देश्य ज्ञान पर प्रेम की तथा मस्तिष्क पर हृदय की विजय प्रदर्शित करके सगुण भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना है।**

भ्रमरगीत परम्परा की उद्भावना एवं विकास—हिन्दी काव्य की भ्रमर-गीत परम्परा का मूलाधार श्रीमद्भागवत पुराण है। इसके दशम स्कन्ध के ४६ वें तथा ४७ वें अध्याय में यह प्रसंग मिलता है। भागवतकार का भ्रमर-गीत रचना का उद्देश्य ज्ञान की पराजय तथा भक्ति की विजय प्रदर्शित करना न था। उन्होंने ज्ञान, कर्म एवं भक्ति में समन्वय स्थापित किया है। भ्रमर आगमन के अवसर पर गोपियों की भावधारा में ज्वार आ जाता है और वे कृष्ण पर व्यंग्य तथा उपालम्भ की वर्षा करती हैं। कथा की धारा सरलता पूर्वक आगे बढ़ती गई है। भागवत में वर्णित भ्रमरगीत प्रसंग अपनी मर्मस्पर्शिता तथा सरसता के कारण कविजनों में अत्यन्त लोकप्रिय हो गया तथा हिन्दी साहित्य के सभी कालों में कवियों ने इस पर लेखनी चलाई।

भक्तिकाल में भ्रमरगीत प्रसंग—हिन्दी में 'भ्रमरगीत' के प्रणेता महाकवि सूरदास है। सूर ने भ्रमरगीत की आत्मा की रक्षा करते हुए इसके स्वरूप का अत्यन्त स्वाभाविक और आकर्षक विकास किया। सूर ने तीन भ्रमरगीतों की रचना की। प्रथम की रचना चौपाई नामक छन्द में हुई है तथा यह भागवत का छायानुवाद सा लगता है। द्वितीय भ्रमरगीत रोला और दोहा छंद में निर्मित है। तृतीय का आरम्भ भिन्न रूप में हुआ है किन्तु कथा वही है। सूर ने अपने भ्रमरगीत में उपालम्भों की सुन्दर योजना की है। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म पर सगुण ब्रह्म की विजय प्रदर्शित की है। गोपियों के द्वारा ज्ञान और योग का उपहास उड़ाया है। गोपियाँ कभी उद्धव को चिढ़ाते हुए कहती हैं—

"ऊधौं जोग बिसरि जनि जाहु ।
बांधौ गांठि छूटि परिहै कहूँ, फिर पाछे पछिताहु ।"

तो कभी उद्धव के वचनों से अपना मनोरंजन करते हुए कहती हैं—

"मधुकर भली करी तुम आए ।
वे बातें कहि कहि या दुख में ब्रज के लोग हँसाए ।"

गोपियों ने कृष्ण पर भी मधुर व्यंग्य की बौछार की है । कृष्ण की लंपटता और छैलापन को लक्ष्य कर वे कहती हैं—

"स्याम बिनोदी रे अधुबनियाँ ।
अब हरि गोकुल काहे कौं आवत भावित नवजोबनियाँ ।"

'नवजोवनियाँ' शब्द में कृष्ण की नारी-लोलुपता की ओर कटाक्ष है तथा कुब्जा के विकृत अंग का स्मरण कर कृष्ण की रूपासक्ति की हँसी उड़ाई गई है ।

गोपियों की मीठी-मीठी चुटकियाँ रस और माधुर्य से आपूरित हैं । कभी वे ज्ञान मार्ग को अपनाने में अपनी असमर्थता व्यक्त करती हैं—

"ऊधौ मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयौ स्याम संग को आराधै ईस ।"

तो कभी योग को अपने लिए नितान्त अनुपयुक्त बताती हैं—

"ऊधौ जोग कहा है कीजतु ।
औढ़ियत है कि बिछैयत है किधौं खैयत है किधौं पीजत ।"

सूर का भ्रमरगीत रस, अलंकार, भक्ति, भाव-व्यंजना आदि विविध काव्यांगों से सज्जित एक अनुपम काव्य-रत्न माना जाता है ।

सूर के उपरान्त अष्टछाप के प्रायः सभी कवियों ने भ्रमरगीत की रचना की, जिनमें **नन्ददास** का भ्रमरगीत सर्वाधिक प्रसिद्ध है । नन्ददास ने कथा का आरम्भ उद्धव संदेश से किया है—

"ऊधौ कौ उपदेश सुनौ ब्रजनागरी ।"

उद्धव उपदेश देते हैं फिर उद्धव एवं गोपियों के मध्य निर्गुण-सगुण ब्रह्म विषयक विवाद होता है । कृष्ण की सगुण-लीला सुख का अनुभव करने वाली गोपियाँ उद्धव के निराकार ब्रह्म पर अविश्वास करते हुए कहती हैं—

"जौ मुख नाहिन हुतौ, कहौ किन माखन खायौ ?
पायन संग गो संग कहो को बन बन धायौ ?
आँखिन में अंजन दियौ, गोवर्धन दियो हाथ ।
नन्द जसोदा पूत ह्वै कुवर कान्ह ब्रजनाथ ।
सखा सुनि स्याम के ॥

(भ्र० गी० १०)

परमानन्ददास, कृष्णदास, चतुर्भुजदास, कुम्भनदास, गोविन्दस्वामी, छीतस्वामी आदि अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी भ्रमरगीत प्रसंग पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं ।

भक्तिकाल के कुछ अन्य कवियों ने भी भ्रमरगीत प्रसंग को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया है । **रहीम** ने इस विषय पर स्वतन्त्र रचना तो नहीं की है पर रहीम रत्नावली में कुछ बरवै मिलते हैं । गोपियाँ उद्धव के समक्ष अपने अनन्य कृष्ण-प्रेम की दुहाई देते हुए कहती हैं—

"कहा छलत हौ ऊधौ दै परतीति ।
सपनेहु नहिं बिसरै, मोहनि मीति ॥

(रहीम रत्नावली, ४३)

रसखान ने भी भ्रमरगीत प्रसंग पर कुछ स्फुट कवित्त-सवैये रचे हैं । संख्या में अत्यन्त अल्प होते हुए भी ये भाव-व्यंजना में अपूर्व हैं । मुकुन्ददास, मलूकदास तथा घासीराम आदि भक्तयुगीन कवियों ने भी इस पर कुछ छंदों की रचना की है । अनन्य रामभक्त तुलसी ने भी इस लोकप्रिय प्रसंग पर कृष्ण गीतावली में अनेक पद लिखे हैं ।

रीतिकाल में भ्रमरगीत प्रसंग—रीतिकालीन कवियों ने भ्रमरगीत परम्परा को आगे बढ़ाया तथा प्रायः सभी कवियों ने कुछ न कुछ इस प्रसंग पर अवश्य लिखा । रीतियुग शृङ्गार युग था इसलिए इस युग के भ्रमरगीत प्रसंग में शृंगारिक उपालम्भ, वाग्विदग्धता तथा उक्ति-वैचित्र्य का प्राधान्य रहा । कुब्जा काण्ड पर इस युग के कवियों ने बड़ी रुचि के साथ लेखनी चलाई । रीतिकालीन आचार्यों में मतिराम, देव घनानन्द, पद्माकर सेनापति, वृन्दावनदास व भिखारीदास आदि उल्लेखनीय हैं । परन्तु इन 'रीतिकालीन' कवियों में न तो सूर और नन्ददास आदि भक्ति कवियों जैसा विरह-गांभीर्य है और न वैसी उत्कट भक्ति भावना ही है । इनमें केवल उक्ति-वैचित्र्य और वर्णन कौशल

दृष्टिगत होता है। राधा-कृष्ण को शृङ्गारिक उक्तियों का आधार बनाकर इन कवियों ने नायिका-भेद, हाव, अनुभाव, संचारीभाव आदि का सुन्दर निरूपण तो किया है किन्तु इनमें विरह-गाम्भीर्य का अभाव है। केवल 'मधुकर' या 'मधुप' शब्दों के आधार पर इनकी रचनाएँ भ्रमरगीत परम्परा में परिगणित की जाती हैं, किन्तु उसकी आत्मा का इनमें सर्वथा अभाव है। मतिराम की गोपियाँ 'उद्धव' के योगोपदेश के उत्तर में केवल इतना ही कहती हैं—

"पगी प्रेम नन्दलाल के हमें न भावत जोग।
मधुप राजपद पाय के भीख न मांगत लोग ॥"

घनानन्द की गोपियाँ भी उद्धव की योग-कथा को सुनकर कहती हैं—

"कित जोग-कथा सु वृथा ही बकौ यह तौ तब ही अनुमान लई।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम दे प्रतिबिंबहि मूरति मानि लई ॥
घन आनन्द वे हू सुजान हुते किहि गों हठ के सठ हानि लई।
ब्रज खेत हो हेत खुमारनि को तजि भाजि बचे हम जानि लई ॥"

पद्माकर की गोपियाँ कृष्ण और कुब्जा को लेकर कटूक्ति करती हैं—

"जोग को न सोच अरु योग को न सोच कछू,
ये ही बढ़ौ सोच तौ सबनि सुहाए है।
कूबरी के कूबर में बेध्यौ है त्रिभंगता,
त्रिभंग को त्रिभंगी लाल कैसे सुरझाई है।"

चाचा वृन्दावनदास के भ्रमरगीत में सूर आदि भक्त कवियों की परम्परा का कुछ न कुछ पालन दिखाई देता है। इनकी गोपियाँ उद्धव के योग संदेश और कृष्ण-प्रेम की तुलना करती हैं—

"योग काँच को मनिया ऊधौ सो तुम हमें दिखायौ।
वृन्दावन हित रूप रावरे प्रीति सो रतन गमायौ ॥"

इस प्रकार रीतियुगीन कवियों ने भ्रमरगीत प्रसंग पर अपनी लेखनी चलाई तो अवश्य है परन्तु वे इस प्रसंग की आत्मा का संस्पर्श करने में असमर्थ रहे हैं। उक्ति-वैचित्र्य और वाग्वैदग्ध्य ही उनकी प्रधान विशेषता है, मार्मिक भाव-व्यंजना नहीं।

आधुनिक काल में भ्रमरगीत प्रसंग—आधुनिक युग विज्ञान का युग है। विज्ञान की विजय-दुन्दुभी आज दिग-दिगन्त में बज उठी है। बौद्धिकता की

ओर भी आज का मानव समग्र मन-प्राण से उन्मुख हो उठा है। आधुनिक [युग] में रचा गया भ्रमरगीत काव्य इन युगीन परिस्थितियों से प्रभावित है। आधुनिक युग की प्रमुख भ्रमरगीत रचनाएँ और उनके रचयिताओं के नाम इस प्रकार हैं—

१. रघुनाथदास रामसनेही कृत **'विश्रांत-सागर'**।
२. प्रागनि कृत **'भंवरगीत'**।
३. भारतेन्दु कृत **'कुछ स्फुट पद'**।
४. हरिविलास कृत **'विष्णुगीत'**।
५. रसीले का **'ऊधौ ब्रजगमन'**।
६. सत्यनारायण कविरत्न का **'भ्रमरदूत'**।
७. 'हरिऔध' का **'प्रिय-प्रवास'**।
८. 'रत्नाकर' का **'उद्धव-शतक'**।
९. मैथिलीशरण गुप्त का **'द्वापर'**।
१०. जगन्नाथ सहाय का **'कृष्ण सागर'**।
११. डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' का **'उद्धवशतक'**।
१२. द्वारिकाप्रसाद मिश्र का **'कृष्णायन'**।
१३. लाला हरदेवप्रसाद की **'ऊधौ पचीसी'**।
१४. श्याम सुन्दरलाल दीक्षित कृत **'श्याम-सन्देश'**।

भारतेन्दु में रीतिकालीन कवियों की चमत्कारवादिता के स्थान पर सूर की भावुकता मिलती है। कृष्ण-प्रेम में आकण्ठ-मग्न गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

"प्रिय सों प्रीति लगी नहीं छूटै।
ऊधौ चाहौ सो समझाओ अब तो नेह न टूटै॥"

सूर की गोपियों के कथन **'ऊधौ मन नाहीं दस बीस'** की भाँति ही भारतेन्दु की गोपियाँ भी कहती हैं—

"ऊधौ जो अनेक मन होते।
तो इक श्याम सुन्दर को देते इक लै जोग संजोते।"

सत्यनारायण कविरत्न का भ्रमरदूत भ्रमरगीत परम्परा में एक अभिनव कड़ी जोड़ता है। इसमें प्राचीन निर्गुण-सगुण का विवाद न होकर पराधीन

भारत की दुर्दशा चित्रित है। यहाँ संदेशवाहक भ्रमर मथुरा से गोकुल से जाकर गोकुल से मथुरा जाता है और इसके द्वारा संदेश प्रेषित करने वाली कोई गोपी नहीं, माता यशोदा है। यहाँ माता यशोदा को 'भारतमाता' के रूप में अंकित कर भारत की विभिन्न समस्याएँ वर्णित हैं। माता यशोदा भ्रमर को दूत बनाकर भेजते हुए कहती हैं—

"जननी जन्मभूमि सुनियत स्वर्गहु सौं प्यारी।
सो तजि सबरो मोह साँवरे तुमनि बिसारी।
का तुम्हरी गति मति भई, जो ऐसौ बरताव।
किधौं नीति बदली नई, ताकौं परयौ प्रभाव।
कुटिल विष को भर्‌यौ॥"

'हरिऔध' के पवन दूती प्रसंग में कृष्ण का विलासी रूप चित्रित नहीं है अपितु वे एक समाज सुधारक लोकनायक के रूप में चित्रित किये गये हैं। राधा भी लोकसेविका रूप में चित्रित है—

"मैं ऐसी हूँ न निज दुख से कष्टिता शोकमग्ना
हा ! जैसी हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दुःखों से।"

प्रियप्रवास में भ्रमर को देखकर वर्णसाम्य के आधार पर गोपियों को कृष्ण की स्मृति विकल बनाने लगती है—

"मधुकर सुन तेरी श्यामता है न वैसी,
अति अनुपम जैसी श्याम के गात की है।
पर जब जब आँखें देख लेती तुझे हैं,
तब-तब सुधि आती श्यामली मूर्ति की है।"

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'द्वापर' में भी भ्रमरगीत प्रसंग उपलब्ध होता है। इसमें कवि ने भ्रमर के स्थान पर एक 'विहंग' की उद्भावना की है जो कि उड़ता हुआ आ जाता है और गोपियाँ उसे लक्ष्य कर उपालम्भ देती हैं।

आधुनिक भ्रमरगीतकारों में कविवर 'रत्नाकर' मूर्धन्य स्थान के अधिकारी हैं। डा० वी० एन० भट्ट ने लिखा है।

"रत्नाकरजी के उद्धवशतक में भ्रमरगीत प्रसंग पुनः एक बार उसी रूप में उपस्थित हुआ जिस ढङ्ग से मध्यकालीन कवियों ने उसे निरूपित किया

।। उनकी गोपियों की भावुकता यदि सूर के समान है तो तर्क-प्रणाली न्ददास की गोपियों जैसी। भक्तिकालीन भावुकता तथा रीतिकालीन कलात्मकता से समन्वित होकर उनका 'उद्धवशतक' अतीव हृदयहारी बन गया है।"[1]

उद्धवशतक में भाव-व्यंजना का मनोहारी सौन्दर्य परिलक्षित होता है। भावों का हनन करके कवि ने कहीं भी चमत्कार-सृष्टि नहीं की है। केवल एक स्थल पर रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित होकर कवि ने विरह की ऊहात्मक व्यंजना की है। उद्धव के अनुरोध पर जब गोपियाँ कृष्ण के लिए पत्र लिखने बैठती हैं तो विरह-ताप के कारण—

"सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैकु डंक लागैं
अंक लागैं कागद बररि बरि जात हैं।"

अन्यत्र सभी स्थलों पर भावों का मार्मिक सजीव और स्वाभाविक चित्रण हैं। अनुभावों और संचारियों की सुन्दर योजना द्वारा कवि ने भावों का सजीव चित्र उपस्थित किया है। भावों के अनूठेपन के साथ ही उक्ति वैचित्र्य की मनोरम छटा भी इस काव्य में दर्शनीय है। कवि के कथन की शैली ऐसी प्रभावशाली है कि पाठक का हृदय वर्णित भावों के साथ सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेता है। गोपी-उद्धव संवाद के पिष्ट-पेषित विषय को भी कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा मौलिक और आकर्षक बना दिया है।

उद्धवशतक का पदोद्‌घाटन अत्यन्त नाटकीय शैली से होता है। यमुना में स्नान करते हुए एक मुरझाए कमल पुष्प को देख कृष्ण विरह-विधुरा कमल-मुखी राधा की स्मृति में विह्वल हो उठते हैं। उनकी विह्वलता ज्ञानी उद्धव को चकित बना देती है और वे कृष्ण को ज्ञान का उपदेश देते हैं। कृष्ण उस उपदेश को शिरोधार्य करने के लिए उद्यत हैं यदि उद्धव एक बार गोकुल गली की धूल धारण कर आएँ।

उद्धव ब्रज पहुँचकर ब्रजांगनाओं को ज्ञान और योग का उपदेश देते हैं। उसे सुनकर गोपियाँ मृतवत हो जाती हैं। उद्धव के ज्ञानोपदेश का वे अपनी मार्मिक उक्तियों द्वारा खण्डन करती हैं। नारियों के लिए वे योग को अनुपयुक्त बताती हैं और उद्धव से प्रश्न करती हैं कि आप मुख से तो कृष्ण के दूत होने

---

१. रत्नाकर : **उनकी प्रतिभा और कला**—डा० वी० एन० भट्ट, पृ० १८३।

की बात कह रहे हैं और विवेचन कर रहे हैं ब्रह्म विषयक सिद्धान्तों का; अतए आप कृष्ण के दूत हैं अथवा ब्रह्म के ? योग द्वारा प्राप्त होने वाली मुक्ति क तुच्छ बताते हुए वे कहती हैं—

"मुक्ति मुकता कौ मोल-माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं ।"

वियोग-ज्वाला को वे योग से भी कष्टकर सिद्ध करती हैं—

"करिकै विचार ऊधौ मन माँहि लखौ
जोगी सौं वियोग-भोग-भोगी कहा कम हैं ।"

उद्धव का निर्गुण ब्रह्म गोपियों के लिए किसी काम का भी तो नहीं है। हाथों के बिना वह गाय नहीं दुह सकेगा, पैरों के बिना थिरक कर नाच नहीं सकेगा, मुख के बिना माखन नहीं खा सकेगा, नेत्र और कानों के अभाव में उनकी विपत्तियों का देख-सुन कर निवारण न कर सकेगा, अतएव हे उद्धव तुम्हीं बताओ—

"रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारे काम आइ है ।"

रत्नाकरजी ने उद्धव का वार्तालाप गोपियों से ही कराया है। नन्द, यशोदा, राधा आदि से नहीं। उद्धव के ब्रज से वापिस जाते समय नन्द, यशोदा और राधा द्वारा केवल कृष्ण के लिए उपहार भेजने का उल्लेख है—

"पीत पट नन्द जसुमति नवनीत नयौ
कीरति-कुमारी सुखारी दई बाँसुरी ।"

माता-पिता और प्रेयसी की मूक वेदना इन उपहारों द्वारा बड़ी भावुकता से व्यंजित हुई है। नन्दबाबा अपने पुत्र के लिये उसका प्रिय पीला पीताम्बर भेज रहे हैं। माता यशोदा अपने लाड़ले को भाने वाला मृदुल नवनीत भेज रही है और राधा इस विरह-बेला में सुरीली वंशी भेज रही है। कभी कृष्ण की वंशी के स्वरों में राधा का नाम मुखर था, शायद वंशी की मधुर रागिनी ही कृष्ण को अपनी विस्मृत प्रेयसी का स्मरण दिला सके।

उद्धवशतक में मार्मिक उपालम्भों की भी कमी नहीं है। कृष्ण, कुब्जा, उद्धव सबको अपने व्यंग्य वाण का आधार बनाते हुये गोपियाँ कहती हैं—

"वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला है।"

सपत्नी डाह के कारण गोपियाँ उद्धव के ब्रज आगमन के मूल में भी कृष्ण के स्थान पर कुब्जा का हाथ समझती हैं—

"रसिक सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी पठाए हौ।"

उद्धवशतक में भ्रमर, मधुकर आदि की आड़ लेकर उपालम्भ नहीं दिये गये हैं। केवल एक स्थल पर 'मधुप' शब्द का प्रयोग अवश्य हुआ है—

"मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमारैं नेह
देह में अछेह विष विषम बगारै है।"

उद्धव के ब्रज से वापिस जाते समय गोपियाँ अपना अभिनयात्मक संदेश कृष्ण को देने के लिये कहती हैं—

"औसर मिलै और सर ताज कछु पूछहिं तौ
कहियौ कछु न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह के कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौं॥"

चित्रोपमता, चारुता, नादसौन्दर्य, मार्मिक भाव-व्यंजना, वचन-विदग्धता आदि रत्नाकर के उद्धवशतक की प्रमुख विशेषताएँ हैं। एक ओर नारी हृदय की विरह-जनित आकुलता इससे अभिव्यक्त हुई है तो दूसरी ओर भक्ति का माधुर्य भी प्रस्फुटित हुआ है। प्रवाहमयता की दृष्टि से उद्धवशतक के कवित्त प्रशंसनीय हैं। आदि से अन्त तक उनमें ऐसा प्रवाह है कि पाठक उस धारा में बहता चला जाता है प्रेम की महत्ता और ज्ञान की निस्सारता अत्यन्त मार्मिक उक्तियों द्वारा वर्णित की गई है।

रत्नाकर के उद्धवशतक की विशेषता है—तुल्यानुराग। कृष्ण के विरह में ब्रजाङ्गनाएँ जितनी व्यथित हैं, कृष्ण भी ब्रज के विरह में उतने ही संतप्त हैं। इस उभयपक्षीय प्रेम ने उद्धवशतक के प्रेमादर्श को भव्य और गरिमा मंडित बना दिया है। भाषा की दृष्टि से इसमें ब्रजभाषा का शुद्ध साहित्यिक रूप उपस्थित है। संगीतात्मकता, माधुर्य आदि गुणों से उद्धवशतक की भाषा विभूषित है।

रत्नाकर के अनन्तर **डा० रसाल** ने भी भ्रमरगीत परम्परा में 'उद्धवशतक' की रचना की। **पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र** ने 'कृष्णायन' लिखा। लाला हरदेव प्रसाद ने 'ऊधौ पचीसी' लिखी। जगन्नाथ सहाय ने 'कृष्ण सागर' तथा डा० श्यामसुन्दर दीक्षित ने 'श्याम सन्देश' की रचना की। किन्तु भावपक्ष एवं कलापक्ष का जैसा सुन्दर समन्वय रत्नाकर के उद्धवशतक में दिखाई देता है। वैसा इन कवियों में से किसी के काव्य में नहीं है। सम्पूर्ण भ्रमरगीत परम्परा में रत्नाकर जी के उद्धवशतक का महत्त्वपूर्ण स्थान है और आधुनिक युग की भ्रमरगीत रचनाओं में उसे सर्वोत्कृष्ट माना जा सकता है। सूर की भावुकता नंददास की तर्कप्रियता, रीति कवियों की अलंकारप्रियता सभी कुछ रत्नाकर के उद्धवशतक में विद्यमान हैं। इन विशेषताओं से पूर्ण यह काव्य-प्रसून काव्य-रसिकों के लिए विशेष आकर्षक बन गया है।

भ्रमरगीत का दार्शनिक एवं प्रतीकात्मक महत्व—भ्रमरगीत काव्य का दार्शनिक एवं प्रतीकात्मक महत्त्व है। यद्यपि भागवत में ब्रह्म के निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूपों का उल्लेख है और साधन रूप में ज्ञान तथा भक्ति दोनों को स्वीकार किया गया है तथापि युगीन परिस्थितियों के कारण कालान्तर में ब्रह्म के ये दोनों स्वरूप एक दूसरे से बहुत दूर जा पड़े। भक्ति युग तक पहुँचते-पहुँचते निर्गुण-सगुण विवाद तीव्र हो गया। भक्त कवियों ने सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया। भक्ति काल की भ्रमरगीत रचनाओं में कृष्ण वियोगिनी गोपियों की विरह वेदना का अंकन तो है ही भक्ति का उन्मुक्त उद्घोष भी है। भाव-व्यंजना के साथ दार्शनिक विचारधारा का भी सुन्दर निरूपण है। उद्धव ज्ञान के प्रतीक हैं और गोपियाँ भक्ति की प्रतीक हैं। निर्गुण-सगुण विवाद में न केवल गोपियों की विजय और उद्धव की पराजय होती है अपितु सगुण की विजय और निर्गुण की पराजय होती है।

भ्रमरगीत का मनोवैज्ञानिक महत्व—जब पुरुष नारी को अपनी भोग्या मान बैठता है और रंगीन रंगरेलियों में फँसकर एक के पश्चात् दूसरी नारी के आकर्षण में बंधता जाता है तो पुरुष की इस स्वार्थी एवं लंपट वृत्ति को देख नारी का अन्तर हाहाकार करने लगता है। किन्तु अबला होने के कारण वह उस हृत्पीड़न को मौन भाव से सहन करने के लिए विवश रहती है। ऐसे में उसकी वेदना उमड़-घुमड़ कर नयनों के नीर के माध्यम से बरस पड़ती है। उसका हृदय पुरुष के स्वार्थपूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध हो उठता है और वह अपनी

दना व्यंग्य और उपालंभ के माध्यम से व्यक्त करती है। यही भ्रमरगीत व मनोवैज्ञानिक महत्व है। गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में अपना सर्वस्व लुटा चुकी थीं और कृष्ण उनके मन-मंदिर के अधिष्ठाता बन गए थे। किन्तु कृष्ण उन्हें छोड़ कर मथुरा चले गए और कुब्जा के प्रेम में डूब गए। इस प्रणय-जन्य कुण्ठा के कारण ही गोपियाँ कृष्ण को उपालंभ देती हैं। वे रूपगर्विता और प्रेमगर्विता हैं तथा कृष्ण को अपना और स्वयं को उनका समझती हैं। यह अभिमान उनके रोम-रोम में बसा हुआ है—

"वे तौ हैं हमारे ही हमारे हौ, हमारे ही,
और **हम उनही की उनही की उनही की हैं।"**

किन्तु कृष्ण ने मथुरा जाकर उनकी खोज-खबर ही नहीं ली। वे कृष्ण के विरह में तड़प रही हैं और कृष्ण कुब्जा के प्रेम में मग्न हो उठे हैं। गोपियों का आहत हृदय तड़प उठता है और वे कृष्ण तथा कुब्जा के सम्बन्धों को लेकर व्यंग्य, उपालंभ और कटूक्तियों की वर्षा कर देती हैं। कभी-कभी तो वे कुब्जा के विकृत अंग को लेकर रंग-भवन के दृश्य की कल्पना करके उसका उपहास तक उड़ाती हैं।

"सोच है यहै कै संग ताके रंगभौन माँहि
कौन धौं अनोखौ ढंग रचत निराटी हैं।
छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट कोऊ
काटि देत खाट किधौं पाटि देत-माटी हैं।।"

गोपियों की ये उक्तियाँ मनोवैज्ञानिक सत्य पर अवलंबित हैं। अपने प्रियतम को छीन लेने वाली नारी को वे सहन भी कैसे कर सकती थीं ? जो कृष्ण पहले उनके थे, केवल उन्हीं के; वे अब कुब्जा के हो गए हैं, यह पीड़ा का दंश उन्हें प्रतिक्षण आहत बनाता है। कृष्ण की प्रेयसी होने के नाते उन्हें यह उपालंभ देने का अधिकार मिल गया है। निश्चय ही भ्रमरगीत का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्व है।

मूल्यांकन—भ्रमरगीत परम्परा के उद्भव तथा विकास का एक सम्यक् अवलोकन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साहित्य के इतिहास में इस परम्परा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यों तो युग-विशेष की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप साहित्य-सागर में अनेक भाव-धाराएँ उत्पन्न होती हैं और युग का

पटाक्षेप होने के साथ ही विलीन भी हो जाती हैं, किन्तु कुछ धाराएँ अपनी शाश्वत जीवन-शक्ति के कारण युगों-युगों तक उसी प्रकार प्रवाहित होती रहती हैं। भ्रमरगीत परम्परा इन्हीं कतिपय चिर प्रवहमान धाराओं में से एक है। यह धारा विगत पाँच शताब्दियों से निरन्तर बहते रहने पर भी अवरुद्ध नहीं हुई है। युग भावना को वहन करने की अद्‌भुत सामर्थ्य ने ही इसे चिरजीवन प्रदान किया है। भक्तिकालीन कवियों को यदि इसने उनके अन्तर के भक्ति उद्‌गार व्यक्त करने का अवसर प्रदान किया और निर्गुण के खण्डन तथा सगुण के मण्डन के माध्यम से सिद्धान्तों को व्यक्त करने का अवसर दिया तो रीतियुगीन कवियों को ईर्ष्या, मान, व्यंग्य और उपालंभ आदि शृङ्गारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का पूर्ण अवकाश प्रदान किया। आधुनिक युग बौद्धिकता और वैज्ञानिकता का उद्‌घोष लेकर अवतरित हुआ है। वह कृष्ण को न तो भक्तिकालीन मान्यताओं के अनुसार ब्रह्म मानता है और न रीतिकालीन कवियों द्वारा निरूपित विलासी नायक। आधुनिक युग के कवियों ने अपने भ्रमरगीत प्रसंग में कृष्ण को आदर्श महापुरुष के रूप में चित्रित किया है जो कि लोक-कल्याण और राष्ट्रहित के लिए अपने अन्तर के ब्रज-प्रेम को कुचल देते हैं और विश्वहित के दुर्गम परन्तु पुनीत पथ पर प्रयाण करते हैं।

इस प्रकार युग-भावना को वहन करने की अद्‌भुत सामर्थ्य के कारण भ्रमर-गीत परम्परा साहित्य के इतिहास में चिरजीवी हो गई है।

उपसंहार—भ्रमरगीत परम्परा के उद्‌भव, विकास एवं महत्व पर दृष्टि-पात करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस परम्परा में कविवर रत्नाकर के 'उद्धव-शतक' का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक युग में जन्म लेकर भी रत्नाकरजी मध्यकालीन भावनाओं से ओत प्रोत थे और उनकी कला का चरम परिपाक 'उद्धव शतक' में उपलब्ध होता है। भक्ति युग और शृङ्गार युग का अनुपम समन्वय इस काव्य-ग्रन्थ की विशेषता है। इनकी भावुकता सूर का स्मरण दिलाती है, तर्क प्रणाली सूरदास का और कलापक्ष का सौंदर्य रीतियुग की कलात्मकता से टक्कर लेता है। यद्यपि आधुनिक युग की बौद्धिकता और वैज्ञानिकता को रत्नाकरजी ने नहीं अपनाया है किन्तु युग के प्रभाव से कवि अछूता नहीं रह सकता। इसलिए युग का प्रभाव रत्नाकर के उद्धवशतक पर भी पड़ा है। किन्तु मुख्यतः मध्यकालीन प्रवृत्तियाँ ही उसमें

विशेष रूप से प्रकट हुई हैं। रत्नाकर के बाद भी अनेक विद्वानों ने इस प्रसंग को काव्य का वर्ण्य-विषय बनाया किन्तु वे रचनाएँ रत्नाकर के उद्धवशतक से श्रेष्ठ तो क्या समान स्तर की भी नहीं बन सकी हैं। जो भावुकता एवं कलात्मकता रत्नाकर के उद्धव-शतक में है वह इन परवर्ती रचनाओं में नहीं। वस्तुतः रत्नाकरजी ब्रजभाषा काव्य के अंतिम देदीप्यमान रत्न हैं और उनका उद्धवशतक भ्रमरगीत परम्परा की एक दीप्तिमान कड़ी है। जब तक हिन्दी साहित्य रहेगा रत्नाकर और उनके उद्धवशतक का आलोक अपनी उज्ज्वल आभा विकीर्ण करता रहेगा।

प्रश्न ४—"उद्धवशतक वह चित्रोपम सत्काव्य है जिसमें प्रबन्धात्मक मुक्तक का प्राधान्य है।" इस कथन की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५—उद्धवशतक प्रबन्ध काव्य है अथवा मुक्तक ? स्पष्ट कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—उद्धवशतक किस प्रकार का काव्य है ? सविस्तार विवेचन कीजिये।

उत्तर—विद्वानों ने काव्य का विभाजन कई आधारों पर किया है। पाश्चात्य विद्वानों ने व्यक्ति और संसार को आधार बनाकर काव्य का Subjective तथा Objective इन दो रूपों में मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण किया है। भारतीय आचार्यों ने (१) शैली की दृष्टि से, (२) अर्थ की दृष्टि से, (३) वस्तु तथा विषय के आधार पर तथा (४) ऐन्द्रयिक आधार पर काव्य को वर्गीकृत किया है। शैली की दृष्टि से गद्य, पद्य तथा मिश्र ये तीन काव्य के भेद होते हैं। अर्थ की दृष्टि से उत्तम, मध्यम, अधम काव्य के भेद होते हैं। विषय तथा वस्तु की दृष्टि से वर्णनात्मक, प्रबन्धात्मक तथा मुक्तक काव्य होता है तथा ऐन्द्रियिक आधार पर दृश्य तथा काव्य दो भेद होते हैं।

रत्नाकर कृत उद्धवशतक के सम्बन्ध में विद्वानों में इस बात पर मतभेद है कि वह किस प्रकार का काव्य है ? कुछ विद्वान इसे प्रबन्ध काव्य मानते हैं, कुछ मुक्तक काव्य सिद्ध करते हैं और कुछ प्रबन्ध तथा मुक्तक का समन्वय "प्रबन्धात्मक मुक्तक" सिद्ध करते हैं। इस सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि मुक्तक काव्य किसे कहते हैं तथा

प्रबन्ध काव्य का क्या आशय है। मुक्तक काव्य वह है जिसमें कोई विशेष कथा नहीं होती है। स्वच्छन्द रूप से भी संगीतात्मकता के साथ भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है। इसका लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार दिया है— अग्निपुराणकार के अनुसार जो अपना अर्थ अभिव्यक्त करने में स्वतः समर्थ हो यह मुक्तक काव्य है "**मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षमम् सताम्।**" अभिनव गुप्त के शब्दों में, पूर्वापर सम्बन्ध से निरपेक्ष होते हुए भी मुक्तक में रसानु भूति कराने की क्षमता होती है—"**पूर्वापर निरपेक्षेणापि येन रसचर्वणा क्रियते तन्मुक्तकम्।**" तथा विश्वनाथ के अनुसार मुक्तक के पद्य एक दूसरे से मुक्त होते हैं—"**छन्दोबद्ध पदं पद्यम् तेन मुक्तेन मुक्तकम्।**" आशय यह है कि मुक्तक काव्य में पूर्वापर तारतम्य का सर्वथा अभाव होता है। प्रत्येक छन्द पूर्ण भावाभिव्यक्ति में समर्थ होता है।

प्रबन्ध काव्य में व्यवस्थित वृत्त, पूर्वापर तारतम्य युक्त पद्य, विविध वर्णन मार्मिक स्थल, चरित्र-चित्रण तथा सांगोपांगता होती है।

रत्नाकर प्रणीत उद्धवशतक का एक विहंगम पर्यावलोकन करने से प्रकट होता है कि उसमें प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों काव्य शैलियों की विशेषताएँ सन्निहित हैं। उद्धवशतक में मुक्तक काव्य की निम्न विशेषताओं का सन्निवेश हैं—

(१) उसका प्रत्येक छन्द अपने आप में स्वतन्त्र है।

(२) पूर्वापर सम्बन्ध के अभाव में भी उन छन्दों में रसानुभूति कराने की क्षमता है क्योंकि कृष्ण के जीवन के मार्मिक प्रसंगों को लेकर वे रचे गये हैं।

(३) कवि ने उन्हें बाद में क्रम से रखने का प्रयास किया है। उद्धवशतक के 'निवेदन' में उन्होंने स्वीकार किया है कि शनैः शनैः इन कवित्तों की रचना हुई तथा जिस क्रम से वे बने उस क्रम से पुस्तक में नहीं रखे गए अपितु विषयानुकूल ही एकत्रित किये गये हैं। फलस्वरूप उनमें एकसूत्रता नहीं आ सकी है।

उद्धवशतक में मुक्तक काव्य की उपर्युक्त विशेषताओं का सन्निवेश होने के कारण अनेक विद्वानों ने उसे मुक्तक काव्य माना है। श्री रामप्रकाश दीक्षित ने लिखा है, "**वस्तुतः उद्धवशतक की रचना मुक्तक रूप में हुई है और वह मुक्तक**

काव्य ही है।"[1] डा० स्नेहलता श्रीवास्तव के शब्दों में **"यह कहना अनुचित न होगा कि उद्धवशतक मुक्तक काव्य है जिसके मूल में कथा की अन्तर्धारा विद्यमान है।"**[2]

मुक्तक काव्य की विशेषताओं से सम्पन्न होने के साथ ही उद्धवशतक प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं से भी आपूर्ण है। उद्धवशतक के छन्द पूर्वापर सम्बन्ध से रहित नहीं है। इसका प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होते हुए भी इसमें एक घटना विशेष की कथा भी सन्निहित है। प्रबन्धकाव्य की कसौटी पर हम उद्धवशतक का अध्ययन इस प्रकार कर सकते हैं—(क) कथानक की दृष्टि से, (ख) चरित्र-चित्रण की दृष्टि से, (ग) रस योजना की दृष्टि से तथा (घ) मार्मिक स्थलों के समावेश की दृष्टि से।

(क) **कथानक की दृष्टि से**—उद्धवशतक की कथावस्तु इस प्रकार है—मथुरा में आकर कृष्ण राज्य-कार्यों में इतना अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि ब्रज के स्मरण का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। एक दिन यमुना में स्नान करते समय मुरझाए कमल पुष्प को देख उन्हें विरहिणी राधा की निष्प्रभ अवस्था स्मरण हो आती है और भावावेग में वे मूर्च्छित हो जाते हैं। कृष्ण का हृदय ब्रज-जीवन की नाना स्मृतियों से विह्वल, व्याकुल एवं संतप्त हो उठता है। ज्ञानी उद्धव कृष्ण का यह प्रेमावेश देख चकित होते हैं, और उन्हें ज्ञान मार्ग के सम्बन्ध में बताते हैं। कृष्ण का कहना है कि तुम एक बार ब्रज हो आओ तथा विरहिणी ब्रजाङ्गनाओं को इसी ज्ञानोपदेश से धैर्य धारण करा आओ फिर मैं इस उपदेश को ग्रहण कर लूँगा। उद्धव ज्ञानाभिमान में चूर ब्रज पहुँचते हैं कि ब्रज में पहुँचकर वहाँ के प्रेम-प्रभाव से अछूते नहीं रह पाते। ब्रज का कण-कण प्रेम-रस से सिंचित है। ज्ञानी उद्धव भी उसी रंग में रंग जाते हैं तथा मथुरा लौटकर कृष्ण से शीघ्रातिशीघ्र ब्रज जाने का अनुरोध करते हैं जिससे विरह संतप्त गोपिकाओं को और अधिक संताप न पहुँचे।

उद्धवशतक की यह कथा यद्यपि छोटी-सी है पर इसमें कथानक का ऐसा उत्कर्ष निहित है कि ध्यान और योग की अपेक्षा प्रेम और भक्ति की महत्ता प्रतिपादित की गई है। उद्धवशतक की कथा प्राचीन होते हुए भी अनेक मौलिक

---

१. **उद्धवशतक : विवेचन और व्याख्या—पृ० ७३।**
२. **हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा—पृ० ५०३।**

उद्भावनाओं तथा रमणीय कल्पनाओं के कारण अत्यन्त रोचक बन गई है। डा० शिवबालक शुक्ल के शब्दों में **"अपनी अभिनव कल्पनाओं, अनूठी उद्भावनाओं के कारण हम उसे पुरानी बोतल में भरी हुई ताजी मदिरा कह सकते हैं जिसे एक बार जो भी पीता है झुक-झुक पड़ता है और प्यास नहीं बुझती।"**[1]

उद्धवशतक की कथा के आरम्भ से पूर्व मंगलाचरण है। इसका अस्तित्व प्रबन्ध काव्य में ही रहता है। कवि ने तुल्यानुराग का महत्त्व समझा है और कृष्ण के हृदय में नन्द, यशोदा, गोप, गोपी तथा राधा के प्रति उठने वाले भावावेश को व्यक्त किया है। कथा के तारतम्य की रक्षा के लिए उद्धव कृष्ण से योग विषयक जो चर्चा करते हैं वही बातें ब्रज में गोपियों से कहते हैं। कथा छोटी अवश्य है पर अनुभाव योजना, मुद्रा चित्रण, नाटकीयता चित्रात्मकता, और भावों की मर्मस्पर्शिता से ओतप्रोत है। इस कथानक का कार्य है 'ज्ञान पर प्रेम की विजय' तथा कवि ने सफलतापूर्वक कार्य-निर्वाह किया है। इस प्रकार कथावस्तु की दृष्टि से उद्धवशतक की प्रबन्धात्मकता में सन्देह नहीं किया जा सकता।

(ख) **चरित्र-चित्रण की दृष्टि से**—उद्धवशतक के नायक श्रीकृष्ण हैं। काव्य का शीर्षक यद्यपि 'उद्धव' से आरम्भ होता है परन्तु कृष्ण ही सम्पूर्ण कथासूत्र में माला में धागे की भांति पिरोए हुए हैं। वे ही इस ग्रन्थ के नायक हैं। वही अपनी प्रेम-विह्वलता प्रदर्शित कर उद्धव को ब्रज भेजते हैं जहाँ गोपियाँ उनके सखा की अच्छी खबर लेती हैं। उद्धव का ज्ञानाभिमान नष्ट हो जाता है और वे प्रेमी बनकर कृष्ण के पास वापिस लौटते हैं। इस प्रबन्ध-काव्य की नायिका राधा है। यद्यपि ग्रन्थ में उनकी उपस्थिति स्पष्ट नहीं है। कथारम्भ में मुरझाये कमल को देख कृष्ण को राधा की ही स्मृति आती है और वे मूर्छित हो जाते हैं। शुक द्वारा राधा नाम का उच्चारण सुनकर उनकी चेतना वापिस लौटती है। राधा के मुख चन्द्र का ध्यान ही कृष्ण के हृदय के प्रेम-पारावार में आलोडन-विलोडन की सृष्टि करता है और उनका मन रूपी जहाज डूबने लगा है। गोपियों ने उसको मानगर्विता बताया है और उसकी

---

१. **साहित्य-संदेश**—फरवरी-मार्च १९६७, पृ० ३२४।

वियोग-व्यथा के असीमित रूप का आभास यह कहकर दिया है कि यदि उद्धव की निर्गुण गाथा को राधा ने सुन लिया तो उसके नयनों से ऐसी अश्रु-वृष्टि होगी कि संसार में प्रलय आये बिना नहीं रहेगी—

"फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह,
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना।"

इस प्रकार 'उद्धवशतक' के नायक कृष्ण तथा नायिका राधा सिद्ध होती है।

(ग) रस-योजना की दृष्टि से—उद्धवशतक का अंगीरस विप्रलम्भ श्रृंगार है। कृष्ण और गोपियाँ एक दूसरे के आलम्बन हैं। कृष्ण पक्ष में कमल पुष्प को सूँघना, राधा नाम सुनना उद्दीपन विभाव है और गोपियों के पक्ष में कृष्ण का पत्र, ब्रज का वातावरण, प्रकृत्ति-सौन्दर्य आदि उद्दीपन विभाव है। हर्ष, विषाद, चिन्ता, वितर्क आदि संचारी भाव है तथा कंप, पुलक, अश्रु, कण्ठावरोध, शैथिल्य और वैवर्ण्य अनुभाव है।

(घ) मार्मिक स्थलों का समावेश—उद्धवशतक में अनेक मर्मस्पर्शी स्थलों की सुन्दर झाँकी विद्यमान है। कृष्ण का ब्रज की याद में विह्वल होना, उद्धव के ब्रज पहुँचने पर गोपियों का उनके योगोपदेश को सुनकर वेदना से भरना, उद्धव का प्रेम के रंग में रंगकर वापिस लौटना आदि उद्धवशतक के मार्मिक स्थल हैं। संपूर्ण काव्य मर्मस्पर्शी उक्तियों से भरा पड़ा है। हृदय को छू लेने की अपार सामर्थ्य रत्नाकरजी की लेखनी में है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकर प्रणीत उद्धवशतक एक ओर मुक्तक काव्य की विशेषताओं से विभूषित है। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों काव्य शैलियों का इसमें मणि-कांचन संयोग है। उद्धवशतक का प्रत्येक छन्द अपने आप में स्वतन्त्र होने के कारण मुक्तक काव्य की श्रेणी में आता है जो सम्पूर्ण छन्द एक कथा-सूत्र में नियोजित होने के कारण प्रबंध की कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। यही कारण है कि विद्वानों ने इसे **'प्रबन्धात्मक मुक्तक'** काव्य कहा है। डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने उद्धवशतक की भूमिका में लिखा है **"इसमें प्रबन्ध-काव्य और मुक्तक दोनों का सुन्दर सामञ्जस्य है अर्थात् इसमें एक घटना विशेष की कथा भी है और साथ ही इसका प्रत्येक छन्द**

स्वतन्त्र-सा भी है।............उद्धवशतक वह चित्रोपम सत्काव्य है जिसमें प्रबन्धात्मक मुक्तक का प्राधान्य है।"[१]

डा० विशम्भरनाथ भट्ट ने भी लिखा है, "उद्धवशतक का प्रत्येक छन्द अपने आप में पूर्ण होने के कारण मुक्तक काव्य की विशेषताओं से सम्पन्न है, तथापि इन कवित्तों को कथा-प्रसंग के अनुसार संगृहीत करके रत्नाकरजी ने उद्धवशतक को प्रबन्ध काव्य का रूप भी प्रदान कर दिया है।"[२]

इसी प्रकार डा० सरला शुक्ल का भी अभिमत है, "भ्रमरगीत प्रसंग में लिखे गये पद रस-चर्वण में समर्थ होते हुए भी पूर्ण रूप से मुक्तक नहीं हैं। उनमें एक कथा-धारा का स्रोत प्रवाहित है यद्यपि वह पूर्ण प्रबंध रूप में नहीं है। इस प्रसंग को भाव प्रधान प्रबंधात्मक मुक्तक काव्य कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।"[3]

कु० उषा जायसवाल ने भी लिखा है, "मुक्तक के सम्पूर्ण गुणों से युक्त होने के साथ-साथ प्रबंध काव्य के तत्वों को भी इस काव्य में ग्रहण किया गया है। अतः इसे प्रबंध मुक्तक की संज्ञा देना अनुचित न होगा।"[४]

इस प्रकार विद्वानों के उपयुक्त मतों से सहमत होते हुए हम कह सकते हैं कि उद्धवशतक प्रबंधात्मक मुक्तक काव्य है। प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होते हुए भी सम्पूर्ण काव्य में एक तारतम्य मिलता है जो इसे प्रबंधात्मक मुक्तक काव्य सिद्ध करता है।

उद्धवशतक एक **चित्रोपम** काव्य भी है। उद्धवशतक की भूमिका में रसालजी ने इसे 'चित्रोपम सत्काव्य' लिखकर इसकी चित्रोपमता को स्वीकार किया है। अनुभावों के सफल प्रयोग द्वारा कवि ने इस काव्य को चित्रोपमता प्रदान की है। हम किसी भी छन्द को लें उस छन्द में वर्णित सम्पूर्ण चित्र हमारे नेत्रों के समक्ष मूर्तिमान हो जाता है। उद्धवशतक नाटक के समान दृश्य काव्य नहीं है परन्तु चित्रोपम काव्य अवश्य ही है। कवि ने काव्य की चित्रपटी पर अपनी कल्पना की तूलिका में सजीवता के रंग भरकर जिन अनुपम चित्रों को अंकित किया है, वे पाठक के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालते

---

१. उद्धवशतक, आमुख—पृ० २०-२१।
२. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला—पृ० १८०।
३. हिन्दी-साहित्य में भ्रमरगीत की परम्परा—पृ० ५।
४. रत्नाकर और उनका काव्य—पृ० १३२।

हैं। उद्धवशतक का पटोद्घाटन इसी नाटकीय शैली में हुआ है। यमुना पर स्नान के निमित्त गए हुए कृष्ण एक मुरझाए कमल पुष्प को देखकर सूँघने की इच्छा से ज्यों ही नासिका से लगाते हैं त्यों ही विरह-पीड़िता राधा की स्मृति से विकल होकर सुध खो बैठते हैं। कृष्ण की उस समय जो मनोदशा हुई है वह निम्न पंक्तियों में सजीव हो उठी है—

"कान्ह गये जमुना नहान पै नए सिर सौं
नीकैं तहाँ नेह की नदी में न्हाइ आए हैं।"

कृष्ण की विह्वल अवस्था देख उनके अन्तरंग सखा उद्धव के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि कृष्ण की इस व्याकुलता का कारण क्या है? कृष्ण भी अपने सखा को अन्तर के ब्रजानुराग से अवगत कराना चाहते हैं किन्तु कहैं तो कैसे कहैं? व्यथा-कथा इतनी अकथनीय होती है कि शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति से परे है हृदय उस वेदना को अनुभव करता है, उसमें तड़पता है पर शब्दों द्वारा उसे बाहर व्यक्त नहीं कर पाता। आँसू और हिचकियाँ ही कृष्ण के हृदय की बात कहते हैं—

"नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सौं
रही सही सोऊ कहि दीनि हिचकीनि सौं।"

एक अन्य चित्र देखिए। कृष्ण के सन्देश वाहक बनकर उद्धव ब्रज जा रहे हैं। कृष्ण के हृदय में इस समय भावों का उद्दाम ज्वार उठ रहा है। हृदय चाहता है कि कुछ न कुछ सन्देश भेजता जाऊँ पर जिह्वा से शब्द बाहर नहीं निकलते। उद्धव के रथ के साथ चलते हुए कृष्ण का चित्र पाठकों के नेत्रों के समक्ष मूर्तिमान हो उठता है—

"सीरे तपे विविध संदेसनि में बातनि की
घातनि की झौंक में लगेइ चले जात हैं।

अब उद्धव की ओर भी देखिए। मथुरा से चलते समय वे ज्ञानाभिमान से चूर थे किन्तु जैसे-जैसे ब्रज की ओर पहुँचते हैं, उनका अभिमान नष्ट होने लगता है। यमुना के कछार, तमाल वृक्षों की पंक्ति, करील के कुंज उन्हें ब्रज की प्राकृतिक सुषमा से अवगत कराते हैं और ब्रज का प्रेम के रंग में रंगा हुआ कण-कण उनके हृदय के ज्ञानाभिमान को नष्ट करने लगता है। उद्धव यह देख चकित होकर सोचते हैं—

"जाने कौन बहति बयार बरसाने में।"

ब्रज में उद्धव के आगमन का समाचार सुनते ही ब्रज-बल्लभियाँ चारों ओर से दौड़-दौड़ कर उन्हें घेर लेती हैं। कृष्ण का संदेश जानने के लिए उत्सुक गोपिकाओं का यह चित्र कितना सजीव बन पड़ा है—

"उझकि उझकि पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहन छवै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥"

गोपियों की यह आतुरता देख उद्धव संकुचित हो उठते हैं और योग-सन्देश देना भूल कुशल समाचार पूछकर मौन रह जाते हैं, गोपियों की दशा देख उद्धव की जो अवस्था होती है, उसका सजीव चित्र इन पंक्तियों में देखिये—

"सूखे से स्रमे से, सकबके से, सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।
हौले से, हले से, हूल-हूले से हिये में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥"

गोपियों के अनन्य प्रेम के समक्ष उद्धव का ज्ञान और योग परास्त होता है। ज्ञानी उद्धव प्रेमी बन जाते हैं। उद्धव ब्रज से विदा हो रहे हैं। चारों ओर से ब्रजाङ्गनाएँ उन्हें विदाई देने के लिए एकत्र हो जाती हैं कोई कृष्ण को उपहार स्वरूप भेजने के लिए मयूर-पंख लाई हैं, कोई अंजली में गुंज पुष्प लिए हुए हैं, कोई दही लेकर उपस्थित हुई है। नन्दबाबा अपने लाड़ले कन्हैया के लिए पीताम्बर भेज रहे हैं और माता यशोदा ताजा मक्खन लिए हुए हैं। राधा ने सुरीली बाँसुरी कृष्ण के लिए दी है। उद्धव की प्रस्थान-बेला में प्रत्येक गोपी अपने आराध्य कृष्ण के लिए कुछ न कुछ सन्देश भेजना चाहती है। पर भावावेग के कारण उनके मुख से इतना ही निकलता है, **"रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ।"**—इतना ही कहकर वे रह जाती हैं।

ब्रजवासियों से विदा लेकर उद्धव चल देते हैं। उनकी भाव-विह्वल अवस्था का चित्रोपम वर्णन इन पंक्तियों में देखिये—

"रथ तैं उतरि पथ पावन जहाँ ही तहाँ
बिकल बिसूरि धूरि लोटन लगत हैं।"

उद्धव की स्थिति इस समय अत्यन्त उलझी हुई है। हृदय चाहता है कि ब्रज छोड़कर न जाऊँ किन्तु कृष्ण को ब्रज की दशा से अवगत कराने का दायित्व आगे बढ़ने को बाध्य कर रहा है। उद्धव की इस अवस्था को कवि ने अमूर्त उपमानों द्वारा कुशलता से चित्रित किया है—

"माँगी बिदा मांगत ज्यों मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लौं।
बिथकित सांस लौं चलत रुकि जात फेरि
आंस लौं गिरत पुनि उठत उसास लौं॥"

जिस प्रकार कोई हृदय को मसोसकर मृत्यु माँगता है, उसी प्रकार उद्धव ने ब्रजवासियों से विदा माँगी और अपने हृदय के उल्लास की तरह चुपचाप गमन किया। भाव यह है कि ब्रज से विदा लेते समय उद्धव को मृत्यु सदृश यंत्रणा हुई और विदा माँगते ही जैसे अनजाने ही उनका उल्लास जाता रहा था वे भी चुपचाप चल दिये। थकित श्वास के समान वे चलते हैं, आँसुओं के समान वे गिरते हैं, फिर उच्छ्वास के समान उठ वैठते हैं। उद्धव का यह चित्रांकन रत्नाकर जैसे कुशल भावना के चितेरे का ही काम है।

उद्धव का आगमन सुनकर कृष्ण दौड़कर द्वार पर आते हैं। उद्धव की भाव-विह्वल अवस्था देख वे द्वार पर ही ठिठक कर खड़े रह जाते हैं। उद्धव के मन में कुछ कहने की और कृष्ण के मन में कुछ पूछने की इच्छा होती है, लेकिन न उनसे कहा जाता है और न उनसे पूछा ही जाता है। कृष्ण और उद्धव के मिलन का जो सचित्र वर्णन रत्नाकर जी ने किया है वह समस्त ब्रज-भाषा साहित्य में अनूठा है। तरल एवं भावुकता का ऐसा दृश्य अनुपमेय है—

"ब्रज-रज रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ—
धाइ बलवीर है अधीर लपटाए लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम मदमाते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत॥
कीरति कुमारी के दरस रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत॥

रत्नाकरजी ने अपनी रचना-चातुरी के बल पर स्थिर एवं गत्यात्मक दोनों प्रकार के चित्र खींचे हैं। ये सभी चित्र अपनी सजीवता और मार्मिकता में बेजोड़ हैं। मुहावरों का सुन्दर काव्योपयुक्त प्रयोग, अलंकार-विधान आदि के माध्यम से रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में चित्रोपमता की सृष्टि की है। उद्धवशतक की चित्रोपमता पर एक दृष्टिपात करने के उपरान्त हम डा० पदमसिंह शर्मा 'कमलेश' के शब्दों में कह सकते हैं, "**समग्र रूप से उद्धवशतक की चित्रोपमता का विचार करने पर उसे हम सूक्ष्म वृत्तियों और उनके धूपछाँही रूप के विभिन्न प्रकार के चित्रों का एलबम कह सकते हैं।**'' उनमें विविध शैलियों के चित्र मिलते हैं। यह सब कवि की अनुभूति की गहराई का तो सूचक है ही, उसके अबाध भाषाधिकार, पाण्डित्य एवं लोक ज्ञान का भी द्योतक है। अपनी इस चित्रोपमता के कारण ब्रज-भाषा का यह बहुमूल्य रत्न छायावादी काव्य की श्रेष्ठतम कृति से टक्कर लेने की क्षमता रखता है।"[१]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्धवशतक वह चित्रोपम सत्काव्य है जिसमें प्रबन्धात्मक मुक्तक का प्राधान्य है। उद्धवशतक की चित्रोपमता यदि एक ओर पाठकों को मंत्रमुग्ध बनाती है तो दूसरी ओर उसमें प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों का सफल समन्वय भी हमें विस्मय-विमुग्ध किये बिना नहीं रहता। रत्नाकरजी की रचना-चातुरी का सुन्दर रूप हमें इस काव्य में परिलक्षित होता है। निःसन्देह यह काव्य रत्नाकर जी की कीर्ति-कौमुदी का अक्षय आधार स्तम्भ है।

प्रश्न ७—उद्धवशतक एक भाव-प्रधान काव्य है जिसमें रमणीयता और नवीनता दोनों आ गई हैं। उद्धरण देते हुए इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८—रत्नाकरजी में भावों का विश्लेषण तथा उनकी मार्मिक सजीव चित्रमयी अभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता है। प्रमाण तथा उद्धरण देते हुए इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

---

१. **साहित्य-संदेश**, फरवरी-मार्च १९६७, पृ० ३४६।

अथवा

प्रश्न ९—उद्धवशतक के भावपक्ष का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न १०—उद्धवशतक में कवि को विरह वर्णन में अद्‌भुत सफलता मिली है।" सिद्ध कीजिए।

उत्तर—रत्नाकर जी रससिद्ध कवि थे। उनका भावुक हृदय श्रृंगार रस के निरूपण में अधिक रमा है। श्रृङ्गार रस का साहित्य में बहुत अधिक महत्त्व है। अधिकांश आचार्यों ने इसे **'रसराज'** की उपाधि से विभूषित किया है। व्यापकता और सरसता ही वे प्रधान गुण हैं जिनके कारण इस रस को इतना महत्त्व मिला है। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है। 'रति' मानव हृदय की वह वृत्ति है जो शाश्वत है एवं चिरकाल से मानव के विभिन्न कार्य-कलापों का संचालन करती आई है। श्रृङ्गार के दो पक्ष हैं—संयोग तथा वियोग। रत्नाकरजी ने अपनी रचनाओं में इन दोनों रूपों का चित्रण किया है। उनका उद्धवशतक वियोग श्रृङ्गार का एक अनुपम ग्रन्थ है।

रत्नाकरजी का उद्धवशतक एक भाव-प्रधान काव्य है जिसमें रमणीयता और नवीनता दोनों विद्यमान हैं। रत्नाकरजी में भावों का विश्लेषण तथा उनकी मार्मिक सजीव चित्रमयी अभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता थी और उनकी यह विशेषता उद्धवशतक में प्रदर्शित हुई है। कृष्ण के मथुरा गमन के अनन्तर सम्पूर्ण ब्रजवासी कृष्ण के विरह में संतप्त हो उठते हैं। कृष्ण भी ब्रज के वियोग में कम विह्वल और व्याकुल नहीं हैं। कृष्ण तथा गोपियों के विरह का उद्धवशतक में अत्यन्त मार्मिक अंकन है। विप्रलम्भ श्रृङ्गार के रस में डूबी हुई उद्धवशतक की सूक्तियाँ पाठकों के हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहतीं। रत्नाकरजी ने कृष्ण और गोपियों के विरह का ऐसा हृदयग्राही वर्णन किया है कि पाठक भाव विभोर हुए बिना नहीं रहता। उद्धवशतक की विरह जनित उक्तियाँ अपनी भावुकता में सूर और घनानन्द की उक्तियों से टक्कर लेती हैं।

उद्धवशतक में वर्णित विरह वर्णन की विशेषता यह है कि कवि ने इसमें **उभयपक्षीय प्रेम का चित्रण** किया है। कृष्ण के विरह में व्रजाङ्गनाएँ जितनी

व्यथित हैं कृष्ण भी उनके वियोग में उतने ही सन्तप्त हैं। कवि रत्नाकर ने उनकी वियोग व्यथा का ऐसा सजीव चित्रण किया है जैसे स्वयं उसे अपनी आँखों से देखा हो। वर्णन में पाठकों को तन्मय बना देने की अपूर्व क्षमता है। उद्धवशतक का आरम्भ कृष्ण की ब्रज-स्मृति से हुआ है! एक दिन यमुना में मुरझाये कमल को देख कृष्ण को विरह-विधुरा राधा की स्मृति हो आती है और वे अचेत हो उठते हैं। पिंजरबद्ध शुक के मुख से 'राधा' नाम सुन उनकी मूर्च्छा भंग होती है और वे ब्रज की स्मृतियों में लीन हो उठते हैं। ब्रज-वियोग जनित अन्तर्व्यथा कृष्ण को संतप्त बना देती है और वे अपने अन्तरंग सखा उद्धव से भी इस सम्बन्ध में कुछ कह नहीं पाते। उनके हृदय की अन्तर्व्यथा नेत्रों की अश्रु-धारा के माध्यम से व्यक्त हो उठती है—

"तौलौं अधिकाई तैं उमग कंठ आइ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियानि तैं।"

वास्तव में व्यथा कही नहीं अपितु सही जाती है। हृदय उसे अनुभव करता है किन्तु वाणी उसके प्रकाशन में असमर्थ रहती है। कृष्ण की व्यथा भी शब्दों के माध्यम से कम, आँसुओं और हिचकियों के माध्यम से अधिक व्यंजित होती है—

"नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।"

ब्रज में जीवन-यापन करते समय कृष्ण ने जो क्रीड़ाएँ की हैं, जो आनन्द-केलियाँ की हैं, उनका ध्यान रात-दिन उनके हृदय में काँटे के समान कसकता है—

"ऊधौ ब्रज-बास के बिलासनि कौ ध्यान धंस्यौ
निसि-दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है।"

कृष्ण की व्यथा ज्ञानी उद्धव को आश्चर्यचकित कर देती है। वे ज्ञान की चर्चा चलाते हैं किन्तु कृष्ण का कहना है कि तुम एक बार मथुरा जाकर गोपिकाओं को समझा-बुझा आओ, तब मैं तुम्हारा सभी उपदेश सिर-आँखों पर ग्रहण करूँगा। उद्धव मथुरा पहुँचते हैं। उनके आगमन पर ब्रज-वनिताओं की जो अवस्था होती है वह दर्शनीय है। प्रियतम कृष्ण का सन्देश जानने की उत्कंठा से वे उद्धव को चारों ओर से घेर लेते हैं—

"उझकि-उझकि पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकौ लिख्यौ है कहा हमकौ लिख्यौ है कहा
हमकौ लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ॥"

गोपियों की कृष्ण विषयक आतुरता उद्धव के ज्ञानोपदेश देने के उत्साह को क्षीण कर देती है। फिर भी उपदेश तो देना ही है। किन्तु ब्रह्म और योग विषयक उद्धव की बातों को सुन गोपियाँ हत्बुद्धि सी खड़ी रह जाती हैं। उनकी मधुर मादक कल्पनाओं और मनोरम आशाओं का भवन भूमिसात हो जाता है, शेष रह जाता है केवल निराशा और व्यथा से आपूरित यह रूप—

"सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी कोऊ थानहि थिरानी है।
कहै रतनाकर रिसानी बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी बिथकानी है ॥
कोऊ सेदसानी, कोऊ भरि दृग-पानी रही,
कोऊ घूमि घूमि परी भूमि मुरझानी है।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी, कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी है ॥"

विरह विह्वल गोपिकाओं का सात्विकों तथा अनुभावों की योजना पर आधृत यह समूह चित्र द्रष्टव्य है। चित्र की एक-एक रेखा अत्यन्त सूक्ष्मता से स्पष्ट हुई है। भावों पर आश्रित होने के कारण चित्र अत्यन्त मार्मिक बन गया है। कहाँ तो गोपियाँ कृष्ण का प्रेम रस अभिषिक्त सन्देश सुनने के लिए उत्कण्ठित थीं और कहाँ उद्धव ने उन्हें ब्रह्म ज्ञान और योग का नीरस उपदेश दिया। आशा के विपरीत सन्देश मिलने पर उनका हृदय खिन्न हो उठा और वे तड़प कर कह उठीं—

"ह्याँ तौ विषम ज्वर वियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई है।"

वे तो उद्धव से इस उपदेश के स्थान पर सबसे पहले यह छोटा सा सन्देश सुनना चाहती हैं कि कृष्ण मथुरा से कब वापिस लौटेंगे—

ऊधौ कहौ सूधौ सो सनेस पहिलैं तो यह
प्यारे परदेस तें कबै धौं पग पारिहैं।

उद्धव के मुख से कृष्ण का समाचार न सुन और बार-बार ब्रह्म-चर्चा सुन गोपियाँ खीझ उठती हैं—

"कान्ह दूत कैधों ब्रह्म दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौं मति ब्रजवारी की।"

उद्धव ने बताया है कि कृष्ण और ब्रह्म एक ही हैं, पंचभूतों में उसी ब्रह्म की सत्ता व्याप्त है अतएव ब्रह्म में लय हो जाने के लिए योग साधनों को अपनाओ। किन्तु गोपियाँ ब्रह्म में लय होकर अपने अस्तित्व को समाप्त नहीं करना चाहतीं। उन्हें तो द्वैत भाव ही पसन्द है। सागर में एक बूँद जल डालने या निकालने से सागर की सागरता में अन्तर नहीं आता किन्तु बूँद का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ब्रह्म में लय होकर उन्हें अपने अस्तित्व को समाप्त करना अभीष्ट नहीं—

"मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की॥"

उद्धव के ब्रह्म से गोपियों को क्या लेना देना ? वे तो केवल कृष्ण की दासी हैं और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी की उपासना उन्हें इष्ट नहीं—

"चेरी हैं न ऊधौ ! काऊ ब्रह्म के बबा की हम
सूधौं कहि देत एक कान्ह की कमेरी हैं।"

कृष्ण के प्रति भी गोपियों के अन्तर में आक्रोश जाग्रत होता है किन्तु वह क्षणिक ही रहता है। कृष्ण पर उन्हें इतना विश्वास है कि वे कल्पना भी नहीं कर पातीं कि कृष्ण ने उनके लिए यह सन्देश भेजा होगा। कृष्ण की निष्ठुरता पर वे दुःखी हैं, कृष्ण के कुब्जा के आकर्षण पाश में आबद्ध हो जाने से उन्हें खिन्नता भी है किन्तु अपने कृष्ण पर वे अविश्वास नहीं कर पातीं और इसीलिए उद्धव के समक्ष अपने हृदय की आशंका व्यक्त करते हुए कहती हैं कि—

"प्रेम प्रन धारी गिरधारी कौ सनेसौ नाहिं
होत है अन्देसो भूठ बोलत बनाए हौं।

ज्ञान-गुन गौरव-गुमान भरे फूले फिरौ
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ ॥"

गोपियों को अपने प्रेम की अविचलता पर अभिमान है। उद्धव भले ही ज्ञान और योग की कितनी ही चर्चा करें किन्तु उनकी जिह्वा तो चातकी के समान प्रियतम कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ रट नहीं सकती। उनके हृदय-मन्दिर के अधिष्ठाता कृष्ण हैं और अब कृष्ण को वहाँ से हटाकर ब्रह्म को स्थापित करके अपने प्रियतम के साथ वे विश्वासघात क्यों करें—

"नन्द के कुमार सुकुमार कौ बसाइ यामैं
ऊधौ अब आइ कै बिसास उदबासैं हम।"

उद्धव की ज्ञान चर्चा को सुनकर वे खीझ उठती हैं और स्पष्ट रूप से कह देती हैं कि यदि उद्धव का विचार है कि इस प्रकार वे हमें ज्ञानमार्गी बना सकेंगे तो यह उनकी भूल है। गोपियों के हृदय से कृष्ण का बाहर निकलना असम्भव है। आँधी तूफान बादलों को छिन्न-भिन्न कर देते हैं किन्तु गोपियों के हृदय से कृष्ण नहीं हटेंगे—

"लौटि पौटि बात कौ बवण्डर बनावत क्यों
हिय तैं हमारे घनस्याम हटिहैं नहीं।"

गोपियों को इस बात का गर्व है कि कृष्ण के प्रति उनका अनन्य और एकनिष्ठ अनुराग है। यह अनुराग किसी प्रकार भी कम नहीं हो सकता। गोपियों के निम्न कथन भाव गाम्भीर्य, सरसता और मनोरमता की दृष्टि से द्रष्टव्य हैं जिसमें उन्होंने अपने प्रेम की अखण्डता पर अभिमान व्यक्त किया है—

"यह अभिमान तौ गवैं हैं ना गये हूँ प्रान
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं।"

गोपियों के हृदय में प्रेम की कल-कल निनादिनी वारि-धारा प्रवाहित हो रही है। योग-साधना द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होगी, इस बात को सुनकर भी गोपियाँ उत्साहित नहीं होती। मुक्ति को कृष्ण-प्रेम के समक्ष तुच्छ बताते हुए वे कहती हैं कि—

"मुक्ति-मुकुता को मोल-माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं।"

उद्धव के ज्ञानोपदेश को सुन गोपियाँ उनका उपहास उड़ाने से भी नहीं चूकतीं—

"जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हें
तातैं तुम ऊधौ हमें सोवत लखात हौ।"

उद्धव के अतिरिक्त गोपियाँ कुब्जा की भी खूब खबर लेती हैं। नारी सुलभ सौतियाडाह के कारण वे सोचती हैं कि उद्धव को कुब्जा ने ही लिखा-पढ़ा कर भेजा है—

"रसिक सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए हौ।"

कृष्ण, कुब्जा और उद्धव सबको अपने आक्रोश का केन्द्र बना गोपियाँ कहती हैं—

"वै तो भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं।"

उद्धव के बार-बार आग्रह करने पर गोपियाँ योग-साधना को अङ्गीकार करने के लिए भी उद्यत हो जाती हैं। वे चित्तवृत्तियों का निरोध, प्राणायाम, समाधि, आदि को अपना लेंगी किन्तु उसी अवस्था में जब योग साधना द्वारा कृष्ण की प्राप्ति हो जाए—

"सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ।"

गोपियाँ अपने हृदय पटल पर कृष्ण का चित्र अंकित करके ब्रह्म के पास ले जाने की बात उद्धव से कहती हैं। यदि ब्रह्म का स्वरूप कृष्ण से बिल्कुल मिल गया तब तो वे ब्रह्म को अङ्गीकार करेंगी और यदि जरा भी भिन्नता हुई तो पुनः यहीं वापिस लौट आयेंगी—

"जैहैं प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ
तातै ब्रह्म रावरे रूप कौ मिलैंहै हम।
जौपै मिल्यो तौ तौ धाइ चाय सौं मिलैंगी पर
जौ न मिल्यौ तौ पुनि इहाँ ही लौटि ऐंहै हम।"

गोपियाँ यह देखकर चकित हैं कि उद्धव कृष्ण के समीप रहते हुए भी ब्रह्म का बखान कैसे करते हैं? सौन्दर्य के आगार श्रीकृष्ण का सान्निध्य भी उवद्ध को कृष्ण-भक्त कैसे नहीं बनाता? अपने प्रश्न का उत्तर उनकी समझ

में यही आता है कि गोपियाँ अनुराग के नेत्रों से कृष्ण को देखती हैं और यदि यही दृष्टि उद्धव की भी हो जाए तो निश्चय ही वे ब्रह्म ज्ञान का बखान भूल जायेंगे। इसीलिए वे उद्धव से कहती हैं—

"ऊधौ ब्रह्म ज्ञान कौ बखान करते ना नैंक
देख लेते कान्ह जो हमारी अंखियानि तैं।"

उद्धव ब्रज में कुछ दिनों तक रहने के उपरान्त मथुरा वापिस लौटने लगते हैं। उद्धव चलते समय गोपियों से कृष्ण के लिए सन्देश माँगते हैं। गोपियों का उद्धव से अनुरोध है कि वे ब्रजाङ्गनाओं की दीन दशा का समाचार कृष्ण को न दें। ब्रजवासियों के दुःखों को सुन कृष्ण करुणार्द्र हो उठेंगे अतः और कुछ कहने के स्थान पर कृष्ण से हमारी 'राम राम' कह देना—

"आँस भरि ऐहै और उदास मुख ह्वै है हाय
ब्रज दुख त्रास की न तातैं सांस लीजियौ।
नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम राम कहि दीजियौ।"

यहाँ पर 'राम राम' शब्द गोपियों का कृष्ण को प्रणाम सूचित कर रहा है। साथ ही यह भी बता रहा है कि विरह पीड़िता गोपियों के जीवन की अवसान बेला आ गई है जब 'राम राम' कहा जाता है। इस प्रकार या शब्द अंतिम प्रणाम का भाव झलका रहा है। भाव व्यंजना की दृष्टि से ये पंक्तियाँ अप्रतिम हैं।

गोपियाँ अपना यह सन्देश भी कृष्ण को तभी देने के लिए कहती हैं जब कृष्ण जिज्ञासु होकर स्वयं ही इस सम्बन्ध में प्रश्न करें। गोपियाँ ब्रज की दशा का शब्दों द्वारा उल्लेख करने से निषेध करती हैं और अभिनय द्वारा ही इसे ज्यों का त्यों कृष्ण के समक्ष प्रस्तुत करने का अनुरोध करती हैं—

"औसर मिलै औ सरताज कछु पूछिहैं तौ
कहियो कछू न दसा देखी सो दिखाइयो।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबे को चाहि हिचकी लै रहि जाइयो॥

उद्धव की ब्रज से प्रस्थान बेला का भी कवि ने अत्यन्त भाव प्रवण अंकन किया है। उद्धव के जाते समय गोपियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़ी हो जाती हैं। उनके हृदय में भावों का ज्वार उठ रहा है, कृष्ण के पास अपनी-

अपनी बात पहुँचाने की आकांक्षा तीव्र गति से उद्वेलित हो रही है किन्तु हृदय की बात वे कहें तो कैसे ? भावों की जो अनुभूति उन्हें हो रही है वह शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति से परे है। इसीलिए वे 'जरा हमारी बात भी सुनो' के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह पातीं—

"सबद न पावत सो भाव उमगावत जो
ताकि-ताकि आनन ठगे से ठहि जात हैं।
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं ॥"

उद्धवशतक में रत्नाकरजी ने सर्वत्र ही मार्मिक भाव-व्यंजना की है। केवल एक स्थान पर वे रीतिकालीन चमत्कार प्रदर्शन के मोह से ग्रस्त हो गए हैं। उद्धव गोपियों से कृष्ण के लिए पत्र लिखने का आग्रह करते हैं। अपने उमड़ते हुए हृदय को बलपूर्वक दबा कर गोपियाँ पत्र लिखने की चेष्टा करती हैं किन्तु सफल नहीं हो पातीं। न तो कोई बात स्फुरित होती है और न वे अपने हृदय तक को शांत कर पाती हैं। उद्धव के बार-बार अनुरोध करने पर और धैर्य धारण करने पर जब वे पत्र लिखने ही लगती हैं तब उनके अंग-ताप से क्या होता है यह दर्शनीय है—

"सूखि जात स्याही लेखिनी कै नैंकु डंक लागे
अंक लागै कागद बररि बरि जात हैं।"

यह ऊहात्मक कल्पना रीतिकालीन कवियों का स्मरण दिला देती है। परन्तु जैसा कि डा० बी० एन० भट्ट ने लिखा है "उद्धवशतक में ऐसी ऊहात्मक कल्पनाएँ अधिक नहीं हैं। अन्यत्र रत्नाकर जी सामान्य भावभूमि से अलग नहीं हटे हैं। यही करण है कि उनकी सूक्तियाँ अनुभूति के मार्दव से आप्लावित हैं।"[1]

उद्धव मथुरा पहुँचते हैं। कृष्ण उनके आगमन का समाचार सुनकर दौड़कर द्वार पर आते हैं। उद्धव की भाव विह्वल दशा देख वे ठगे से खड़े रह जाते हैं। उद्धव के हृदय में ब्रज के समाचार कहने की और कृष्ण के हृदय में उन्हें पूछने की बलवती इच्छा है परन्तु न उनसे कहा जाता है और न उनसे पूछा जाता है। कृष्ण प्रेमातिरेक तथा भावावेश में भरकर उद्धव से लिपट जाते

---

१. रत्नाकर : **उनकी प्रतिभा और कला**—डॉ० बी० एन० भट्ट, पृ० ३०७।

हैं। कृष्ण और उद्धव के मिलन का यह चित्रमय वर्णन अनूठा ही है। भावुकता से स्नात ऐसा दृश्य सरलता से देखने को नहीं मिलता—

ब्रज-रज रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलवीर ह्वै अधीर लपटाए लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम मद माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत॥
कीरति कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पुलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोछि
पोंछि पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत॥"

गोपियों ने कहा था कि 'कहिबे कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ।' इस बात का उद्धव ने मथुरा पहुँचकर अक्षरशः पालन किया। भावावेश में वे कृष्ण के समक्ष कुछ कह न सके—

"आँसुनि की धार औ उभार कौं उसाँसनि के
तार हिचकीनि के तनक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रँच
भावनि के विषय प्रपंच सरि लेन देहु॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनावौ नाथ
नैंसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।
कहत अबै हैं कहि आवत जहाँ लौ सबै
नैंकु थिर कढ़त करेजौ करि लेन देहु॥"

उद्धवशतक के भावपक्ष का एक सम्यक अवलोकन यह सिद्ध कर देता है कि रत्नाकर जी ने भावों का अत्यन्त सजीव और मार्मिक चित्रण किया है। अन्य भक्त कवियों की भाँति उन्होंने ब्रज की महिमा का भी गान किया है। अपने आराध्य का लीलाधाम होने के कारण भक्त कवियों ने बड़े उत्साह से ब्रज की महिमा गाई है! उद्धवशतक में उद्धव भी कृष्ण से कहते हैं—

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर
गौन रौन रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै रतनाकर बिहाय प्रेम गाथा गूढ़
स्त्रौन-रसना में रस और भरते नहीं॥

गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
लेखि प्रलयागम हूँ नैकु डरते नहीं ।
हो तौ चित्त चाव जौ न रावरे चितावन कौ
तजि ब्रज गाँव इतै पाँव धरते नहीं ।"

उद्धवशतक की मार्मिक भावानुभूति के सम्बन्ध में डा० भट्ट ने सत्य ही लिखा है, "उद्धवशतक में रत्नाकर जी की रससिक्त सूक्तियाँ बड़ी ही मर्मस्पर्शी हैं । उनमें उद्वेग अथवा भड़क नहीं, हृदय की सच्ची पुकार है । विरह की आवेगपूर्ण भावना से ओत-प्रोत होने के कारण वे पाठक के हृदय को बड़ी मधुरता से स्पन्दित कर देती हैं । विरहिणी ब्रजाङ्गनाओं के आँसुओं में यदि प्रेमानुभूति की स्निग्धता, अनुभूति की आर्द्रता, कल्पना की रंगीनी और स्वभावगत आभिजात्य है, तो दीर्घ निःश्वास में संयम की सुगन्ध भी है ।"[1]

भाव-व्यंजना के सम्बन्ध में प्रधानतः दो बातों पर विचार किया जाता है (क) कवि का कितने भावों से परिचय है । (ख) कितनी गंभीरता के साथ उसने भावानुभूति की है । उद्धवशतक में कवि का भावों से परिचय तो देखने की बात ही नहीं उठती क्योंकि यह विप्रलंभ श्रृंगार का काव्य है और इसमें वियोग भाव की ही व्यंजना है । हाँ, जहाँ तक भावानुभूति की गहराई का प्रश्न है, रत्नाकरजी ने इस दिशा में महान सफलता प्राप्त की है । भावों की मार्मिक अभिव्यंजना के लिए कवि ने प्रायः दो विधियाँ अपनाई हैं—(१) अनुभावों तथा सात्विकों की योजना तथा (२) मूक व्यंजना । कृष्ण जब ब्रज की स्मृति में विकल हो उठते हैं, उस समय अपने अन्तरंग सखा उद्धव से भी वे हृदय की बात नहीं कह पाते और उनकी अन्तर्व्यथा आँसुओं के माध्यम से ही व्यक्त होती है ।

"तौ लौं अधिकाई तैं उमंग कण्ठ आयौ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अंखियानि तैं ।"

इन पंक्तियों में अश्रु सात्विक अनुभाव का सौंदर्य दर्शनीय है । निम्न पंक्तियों में कवि ने भावाभिव्यंजन के लिए मौनव्यंजना का आश्रय लिया है । उद्धव के ब्रज जाने के समय का चित्र है । कृष्ण ने उन्हें रथ पर चढ़ा दिया है किन्तु स्वयं वापिस नहीं लौटते और बातों की झोंक में उनके साथ लगे चले जा रहे हैं—

---

१. **रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला**—डॉ० वी० एन० भट्ट, पृ० ३१० ।

"सोरे तपे विविध संदेसनि की बातनि की
घातनि की झोंक में लगेई चले जात हैं।"

कृष्ण का कुछ कह न सकना और बातों की झोंक में साथ लगे चले जाना उनके हृदय के प्रेमावेग का परिचायक है। वाणी के द्वारा यदि प्रेम प्रकट हुआ तो उसकी गरिमा ही क्या रही ? कृष्ण के मौन ने उनके हृदय की अनुराग-भावना का जैसा उद्घाटन किया है वैसा किसी अन्य विधि द्वारा संभव न था।

उद्धव शतक में केवल सात्विक भावों का ही नहीं, संचारी भावों का भी सुन्दर समावेश है निम्न कवित्त में स्मृति, चिन्ता, अभिलाषा तथा असूया आदि अनेक संचारी भावों का सुन्दर सुगुंफन है—

"आवत दिवारी बिलखाई ब्रज-बारी कहैं
अबकी हमारें गाँव गोधन पुजैहै को।
कहै रतनाकर विविध पकवान चाहि
चाह सौं सराहि चख चंचल चलैहै को।
निपट निहोरि जोरि हाथ निज साथ ऊधौ
दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को।
कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावै कान्ह
इन्द्र कोप लोपक गुबर्धन उठैहै को॥

रससिद्ध कवि अपनी प्रतिभा से जिस बात का चित्रण करता है उसे सजीव और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत करता है। रत्नाकरजी ऐसे ही रससिद्ध कवि थे। उद्धवशतक में उन्होंने वियोग भाव की जैसी अभिव्यंजना की है, वह उनकी महती प्रतिभा की परिचायक है। उद्धवशतक का कोई भी कवित्त उठाकर देख लीजिए, भाव-सौंदर्य की दीप्ति से झिलमिला रहा है। भावों का हनन करके चमत्कार सृष्टि रत्नाकरजी को अभीष्ट न थी। उद्धवशतक में कला-सौंदर्य भी कम नहीं है किन्तु उसने कहीं भी भावों का हनन नहीं किया है। उद्धवशतक का प्रत्येक छन्द रत्न की भाँति उद्भासित हो रहा है और अपनी प्रभा से रसिक हृदयों में आलोक माला विकीर्ण कर रहा है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्धव-शतक एक भाव-प्रधान काव्य है जिसमें रयणीयता भी है और मौलिकता भी।

रचना का विषय नया नहीं है, किन्तु कवि ने अपने रचना-कौशल से उसमें नवीनता भर दी है। वियोग भावना का जैसा मार्मिक अंकन रत्नाकरजी की समर्थ लेखनी द्वारा हुआ है वह उन्हें उच्चकोटि का रससिद्ध कवि सिद्ध करता है। रत्नाकरजी में भावों का विश्लेषण तथा उनकी मार्मिक चित्रमयी अभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता थी। अनुभावों के द्वारा, सात्विकों के द्वारा और मौन व्यंजना द्वारा उन्होंने सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का भी सचित्र अंकन किया है। निःसन्देह भाव-सौन्दर्य की दृष्टि से उद्धवशतक आधुनिक युग का एक श्रेष्ठ काव्य कहा जा सकता है।

प्रश्न ११—उद्धवशतक में दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्तों का लौकिक व्यवहार के क्षेत्र में वहीं तक प्रयुक्त किया गया है जहाँ तक उनमें उपयोगिता और उपयुक्तता का व्यापक तत्व सन्निहित है। उद्धवशतक के अपने अध्ययन के आधार पर इस कथन का सप्रमाण स्पष्टीकरण कीजिए।

अथवा

प्रश्न १२—"उद्धवशतक में अत्यन्त मार्मिक तथा भावपूर्ण काव्यमय पद्धति द्वारा निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का समर्थन दृष्टिगोचर होता है।" उदाहरण देते हुए इस कथन का समाधान कीजिये।

अथवा

प्रश्न १३—उद्धवशतक की दार्शनिक विचारधारा पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में दार्शनिक विचारधारा का सुन्दर समावेश किया है। उद्धवशतक में प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धान्त कोई नये नहीं हैं, भ्रमरगीत परम्परा के कवियों ने उन्हें अपने काव्य में वर्णित किया है फिर भी रत्नाकरजी ने इस परम्परागत विषय को अनेक मौलिक उद्भावनाओं द्वारा नवीन तथा चमत्कारपूर्ण बना दिया है। विचारों के प्रस्तुतीकरण का ढंग भी अत्यन्त सुन्दर है। कवि ने दार्शनिक विचारों को कोरे बुद्धिवाद के आधार पर प्रस्तुत नहीं किया है, अपितु हृदय और बुद्धि के संयोग के आधार पर ऐसा किया है। डा० रसाल के शब्दों में **"उद्धवशतक में दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्तों को लौकिक व्यवहार के क्षेत्र में वहीं तक प्रयुक्त किया गया है जहाँ तक उनमें उपयोगिता और उपयुक्तता का व्यापक तत्व सन्निहित है।"**[1]

---

१. **उद्धवशतक—भूमिका**, पृ० ४२-४३।

हिन्दी की भ्रमरगीत परम्परा का स्रोत श्रीमद्भागवत है। भागवत की आधारशिला पर ही भ्रमरगीत की परम्परा के भव्य भवन का संस्थापन हुआ है। भागवत में गोपियों के प्रेम और भक्ति को ज्ञान और योग से महत्त्व-पूर्ण बताया गया है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों ने भी ऐसा किया है। रत्नाकर का उद्धवशतक भी भ्रमरगीत परम्परा की एक कड़ी है और इस काव्य-ग्रन्थ में अत्यन्त मार्मिक तथा भावपूर्ण काव्यमय पद्धति द्वारा निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का समर्थन दृष्टिगोचर होता है। शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन का प्रभाव उद्धवशतक के उद्धव पर है इसीलिए **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'**, **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**, **'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति'** आदि अद्वैत-दर्शन के वाक्यों का वे प्रतिपादन करते हैं। गोपियाँ इनका खण्डन कर प्रेम और भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं। गोपियों की अविचल भक्ति ज्ञानी उद्धव का हृदय परिवर्तन कर उन्हें भी प्रेम और भक्ति के रंग में रंग देती है। इस प्रकार इस काव्य में बड़े ही रोचक ढंग से निर्गुण का खण्डन एवं सगुण का मण्डन किया गया है।

उद्धवशतक में दर्शन का प्रसङ्ग सर्व प्रथम उद्धव-कृष्ण-संवाद के अवसर पर दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण को ब्रज की स्मृतियों में विकल होता देख ज्ञानी उद्धव कृष्ण के मोह का विश्लेषण करते हुए उन्हें ब्रह्म की अद्वैतता का उपदेश देते हैं। उद्धव समझते हैं कि पंच तत्त्वों से निर्मित इस सृष्टि में ब्रह्म सर्वव्याप्त है। वही ब्रह्म तुममें है और वही गोपियों में। फिर अपने से अपने का कैसा मिलन और कैसा बिछोह ? तुम मोह के वशीभूत होकर ही वियोग दुःख का अनुभव कर रहे हो। संसार को असत्य और स्वप्नवत बताते हुए उद्धव कहते हैं—

"असत असार या पसार में हमारी जान
जन भरमाए सदा ऐसे रहिबो करें।
जागत औ पागत अनेक परपंचनि मैं
जैसे सपने में अपने कौं लहिबौ करैं ॥"

उद्धव के इस उपदेश का कुछ विरोध न कर कृष्ण केवल इतना कहते हैं—

"आवौ एक बार धारि गोकुल गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीत धरि लैहैं हम।"

उद्धव ब्रज पहुँचते हैं और 'उद्धवशतक' में गोपी-उद्धव-संवाद के अवसर पर दूसरी बार दर्शन का प्रसंग उपस्थित होता है। मथुरा से ब्रज जाते समय मार्ग में ही प्रेम और भक्ति की सरस बयार उद्धव के ज्ञान-मेघों को इधर-उधर उड़ाने लगती है और उनके हृदय में प्रेम के अंकुर फूटने लगते हैं। ज्ञान-गठरी की गाँठ न जाने कब और कैसे खुल जाती है और उसमें रखी हुई विचार रूपी पूँजी जमुना के कछारों, करील के कुंजों और तमाल वृक्षों के समूह में उलझ जाती है।

ब्रज में पहुँचकर, प्रेमातुर ब्रजाङ्गनाओं को देखकर उद्धव का समस्त ज्ञान-चातुर्य नष्ट हो गया। किन्तु जिस कार्य के लिए वे मथुरा से आये थे, वह तो उन्हें करना ही था। उद्धव ने भी गोपियों को कृष्ण के प्रति आसक्ति समाप्त करने तथा अद्वैत ब्रह्म दर्शन का उपदेश दिया। उद्धव का गोपियों को उपदेश था कि यदि तुम अपनी इच्छ:नुसार कृष्ण का संयोग चाहती हो तो योग-साधना द्वारा बाह्य जगत से ध्यान हटाकर अपने हृदय में प्रज्वलित ज्योति में उनके दर्शन प्राप्त करो। अपनी आत्मा को ब्रह्म में लीन कर देने पर तुम्हें अखण्ड सुख की प्राप्ति होगी—

"चाहत जौ स्वबस संजोग स्याम-सुन्दर कौ
जोग के प्रयोग मैं हियौ तौ बिलस्यौ रहै।
कहै रत्नाकर सु-अन्तर-मुखी ह्वै ध्यान
मंजु हिय-कंज-जगी जोति मैं धस्यौ रहै॥
ऐसें करौ लीन आतमा कौं परमात्मा में
जामैं जड़ चेतन-विलास विकस्यौ रहै।
मोह-वस जोहत बिछोह जिय जाकौ छोहि
सो तो सब-अन्तर निरन्तर बस्यौ रहै॥"

उद्धव गोपियों को समझाते हैं कि पंचतत्व में उसी एक ब्रह्म की सत्ता विद्यमान है। माया के प्रपंच के कारण ही भेद दिखाई पड़ता है। जिस प्रकार अनेक काँच के टुकड़ों में दिखाई देता हुआ भी सूर्य वस्तुतः एक ही है उसी प्रकार भ्रम के आवरण को हटाकर ज्ञान-दृष्टि से देखने पर ब्रह्म की अद्वैतता दृष्टिगत होगी—

"देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही में कान्ह ही में सब कोई है।"

उद्धव गोपियों से कहते हैं कि सागर और उसकी बूंद में अन्तर कैसा? यदि तुम कृष्ण से अविचल मिलाप चाहती हो तो—

"अविचल चाहत मिलाप तौ विलाप त्यागि
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं।"
जीव आतमा कौ परमातमा में लीन करौ
छीन करौ तन कौ न दीन करौं मन को।"

उद्धव की इस ज्ञान-वार्त्ता को सुन गोपियाँ हत्‌बुद्धि सी रह गईं। कुछ क्षण उपरान्त स्वयं को संभालकर वे बोलीं—

"ह्याँ तो विषम ज्वर वियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई है।"

गोपियों ने दर्शन-शास्त्र के जीव और ब्रह्म विषयक प्रसंग को न तो कभी पढ़ा था और न सुना था, अतएव उनकी समझ में उद्धव की बातें नहीं आतीं। वे तो धड़कते हृदय से अपने प्रियतम कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं और इसीलिए उन्हें उद्धव से इस प्रश्न के उत्तर की अपेक्षा है—

"ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिलें तौ यह
प्यारे परदेस तें कबै धौं पग पारिहैं।"

किन्तु उद्धव के मुख से ब्रह्म ज्ञान का उपदेश सुन वे खीझ उठती हैं और सव्यंग्य उद्धव से पूछती हैं—

"कान्ह दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजवारी की।"

उद्धव के जीव और ब्रह्म के एकता के सिद्धान्त को गोपियाँ एकदम अस्वीकार कर देती हैं, क्योंकि इस सिद्धान्त को स्वीकार करने का अर्थ अपने अस्तित्व को समाप्त करना है। सागर में एक बूंद जल डाल देने या निकाल देने से सागर की सागरता में कोई घटा-बढ़ी नहीं होती किन्तु जल की बूंद का अस्तित्व समाप्त हो जाता है यह स्थिति गोपियों को अङ्गीकार नहीं—

"जैहै बनि बिगरि न बारिधता बारिधि की
बूंदता बिलैहै बूंद बिवस बिचारी की।"

गोपियाँ अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहती हैं। यही द्वैत भाव भक्ति का वांछित तत्व है। गोपियाँ भी ब्रह्म बन जाने पर भी नारी ही बनी रहना चाहती हैं—

"ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जो रहैं
तौ तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं।"

उद्धव ने ब्रह्म को अलख, अरूप तथा निराकार कहकर योग-युक्तियों के सहारे अन्तः चक्षुओं से भृकुटी में उसके दर्शन करने का उपदेश दिया था। गोपियाँ इसे असम्भव बताती हैं और कहती हैं कि तुम्हारी बातें स्वयं विरोध मूलक हैं। एक ओर कहते हो कि ब्रह्म निर्गुण निराकार है, दूसरी ओर कहते हो कि उसका ध्यान करो और उसका रसपान करो। रूप-रसहीन का ध्यान और रसपान कैसे सम्भव है ? फिर जो ब्रह्म इतने विशाल संसार में भी ढूंढने से नहीं मिल सकता, उसे भृकुटी में नेत्र मूँदकर कैसे देखा जा सकता है ? तुम्हारी बातों में कोई निश्चित मत न होकर विरोध विद्यमान है। गोपियाँ इस भाव को इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

"रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ।
एते बड़े विस्व माँहि हेरै हूँ न पैयै जाहि
ताहि भृकुटी में नैन मूँदि लखिबौ कहौ।"

गोपियाँ किसी रूप-रंगहीन की आराधना करना भी नहीं चाहतीं। एक ही अनंग की आराधना कर उनकी समस्त इच्छाएँ पूरी हो गई हैं अतः दूसरे अंग-रहित की उपासना उनके लिए व्यर्थ है—

"राखौ धरि ऊधौ उतै अलख अरूप ब्रह्म
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं कहा।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरीं अब
और अंग-रहित अराधि करिहैं कहा॥"

यही नहीं गोपियों को निर्गुण ब्रह्म अपने लिए अनुपयोगी भी प्रतीत होता है। हाथों के बिना वह कृष्ण की भाँति उनकी गायें नहीं दुह सकता, पैरों के बिना उन्हें नाचकर रिझा नहीं सकता, मुख के बिना उनका माखन नहीं खा सकता, वेणु नहीं बजा सकता और गोधन के गीत नहीं गवा सकता।

आँखों और कानों के बिना वह ब्रजवासियों के कष्ट देख-सुन नहीं सकता। अतएव अत्यन्त भोलेपन से वे उद्धव से प्रश्न करती हैं कि—

"रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारे काम आइ है।

उद्धव ने ब्रह्म-प्राप्ति का उपाय योगाभ्यास बताया है। नियम, व्रत, संयम, ध्यान, प्राणायाम आदि की महत्ता ब्रजाङ्गनाओं के समक्ष वर्णित की है। किन्तु गोपियाँ कहती हैं कि तुम्हारी "छीन करौ तन कौ" यह बात हमारी समझ में नहीं आती। जिन अंगों पर अत्यन्त चाव से चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों का आलेपन किया है, उन पर भस्म लगाना कहाँ तक उचित है? जिस केशराशि को कृष्ण ने अत्यन्त स्नेह से सँवारा है उसे जटाओं में कैसे बदल दें? जिस मुख को कृष्ण चाँद और कमल कहा करते थे उसे कौवे की चोंच के समान कैसे बना लें? और तो और प्राणायाम द्वारा साँस रोकना हमें बिलकुल पसंद नहीं है क्योंकि—

"एकै बार लैहैं भरि मीच की कृपा सौं हम
रोकि-रोकि साँस बिनु मीच मरिबौ कहा।

तथा—

"और हूँ उपाय केते सहज सुढंग ऊधौ
साँस रोकिबै कौ कहा जोग ही कुढंग है।"

वियोगानल की ज्वाला के सामने गोपियों को ब्रह्म-ज्योति महत्वहीन प्रतीत होती है और इसीलिए वे उद्धव से कहती हैं—

"कहै रतनाकर बरीहैं विरहानल मैं
ब्रह्म की हमारैं जिय जोति जँचिहै नहीं।"

वियोग-ताप से दग्ध जिस हृदय को गोपियों ने अश्रु-जल तथा कृष्ण विषयक चर्चा की वायु से कुछ शीतल किया है उसे फिर से ब्रह्म-ज्योति की उष्णता से तप्त बनाना कौनसी बुद्धिमानी है। जिस हृदय में उन्होंने कृष्ण को बसाया है, उसमें ब्रह्म को बसाकर कृष्ण के साथ विश्वासघात गोपियों को अभीष्ट नहीं।

गोपियाँ विरह वियोगी को योगी से श्रेष्ठ बताती हैं। उनका कहना है कि योगी तो केवल वस्त्र ही रंगते हैं जबकि हमारे मन भी प्रीति के रंग में

रंगे हुए हैं। योगी केवल भस्म लगाते हैं किन्तु हम विरहाग्नि में भस्मीभूत हो गई हैं। योगी समाधि की अवस्था में एक साँस में अनेक दिन बिताते हैं, हमारा कृष्ण वियोग में एक-एक क्षण कई-कई जन्मों के समान दीर्घ हो उठा है। योगी संसार के ऐश्वर्य से उदासीन होकर मुक्ति की कामना करते हैं किन्तु हमने मुक्ति और भुक्ति दोनों को उपेक्षणीय माना है। अतएव हे उद्धव तुम अपने मन में विचार करके देखो तो पता चलेगा कि **"जोगी सौं वियोग-भोग-भोगी कहा कम है।"**

गोपियाँ योग के जटिल विधानों को भी स्वीकार करने को तैयार हैं—

"सहिहैं तिहारे कहै साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ।"

गोपियों का कहना है कि हम अपने प्राण-पट पर कृष्ण का चित्र बनाकर अपने साथ ले जायेंगी और ब्रह्म के रूप से उसे मिलायेंगी। यह ब्रह्म का स्वरूप उससे मिल गया तो अत्यन्त उत्साह से ब्रह्म में लीन हो जायेंगी अन्यथा यहीं वापिस लौट आवेंगी—

"जैहैं प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ
तातैं ब्रह्म रावरे अनूप कौं मिलैहैं हम।
जोपै मिल्यो तौ तौ धाइ चाय सौं मिलैंगी पर
जौ न मिल्यौ तौ पुनि इहाँ ही लौटि ऐहैं हम।"

रत्नाकरजी की गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म का खण्डन कर नाना उक्तियों से सगुण ब्रह्म का मण्डन करती हैं। इन उक्तियों में नंददास की गोपियों की भाँति शुद्ध दार्शनिकता नहीं है अपितु भाव और विचार का मणि-काँचन संयोग है। विरह-विदग्ध नारी हृदय में अनुस्यूत होने वाली भावनाएँ अपनी मार्मिकता में बेजोड़ हैं और साथ ही उनमें विचार पक्ष भी विद्यमान है। उद्धव ने संसार को स्वप्नवत् बतलाया है। इस सिद्धान्त को लेकर उद्धव की हँसी उड़ाते हुए गोपियाँ कहती हैं कि—

"जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हें
तातैं तुम ऊधौ हमें सोवत लखात हो।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुख आवत सों बिबस बयात हो॥

सोवत में जागत लखत अपने कों जिमि
त्यों ही तुम आप ही सुज्ञानी समुझात हो।
जोग-जोग कबहूँ न जानै कहा जोहि जकौ
ब्रह्म ब्रह्म कबहूँ बहकि बर रात हौ।"

गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में आकण्ठ मग्न हैं। उद्धव के ब्रह्म विषयक उपदेश को सुनकर खीझ उठती हैं—

"चेरी हैं न ऊधौ! काऊ ब्रह्म के बबा की हम
सूधे कहि देत एक कान्ह की कमेरी हैं।"

कृष्ण के विरह दुःख में भी गोपियों को वह सुख मिलता है जिसके सम्मुख ब्रह्मानन्द भी उन्हें तुच्छ, प्रतीत होता है। कृष्ण की एक कृपापूर्ण मुस्कान उन्हें जिस अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कराती हैं उसके समक्ष ब्रह्मानन्द का कोई महत्त्व ही नहीं है—

"सरग न चाहैं अपबरग न चाहैं सुनौ
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं विरक्ति उर आनैं हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माँहि
तन मन साँसनि की साँसति प्रमानैं हम॥
एक ब्रज-चंद कृपा-मंद मुसकानि ही मैं
लोक परलोक को अनन्द जिय जानैं हम।
जाके या वियोग-दुख में हू सुख ऐसौ कछू
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू में दुःख मानैं हम॥

गोपियाँ अपने प्रेम की अचलता का उल्लेख करते हुए उद्धव से कहती हैं कि—

"यह वह सिंधु नाँहि सोखि जो अगस्त्य लियो
ऊधौ यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है।"

गोपियों का यह अटल विश्वास है कि हम कृष्ण की हैं और कृष्ण हमारे प्रियतम हैं। वे उद्धव से कहती हैं कि तुम ज्ञान और योग का जो बखान कर रहे हो उसे तुरन्त भूल जाते, यदि कृष्ण को गोपियों की आँखों से—अनुराग के नेत्रों से देख लेते—

"ऊधौ ब्रह्म ज्ञान कौ बखान करते न नैकु
देख लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तैं।"

गोपियाँ उद्धव पर भी विश्वास नहीं करतीं। दूध का जला मठा फूंक-फूंक कर पीता है। अक्रूर मथुरा के आकर कृष्ण को अपने साथ ले गए, और अब उद्धव आए हैं। इन मथुरावासियों का वे विश्वास करें भी तो कैसे—

"लै गरो अक्रूर क्रूर तब सुख मूर कान्ह
आये तुम आज प्रान ब्याज उगहन कौ।"

उद्धव के योग संदेश के मूल में वे कुब्जा को मानती हैं और इसीलिए आहत हृदय से कहती हैं—

"रसिक सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौं
मेरी जान ऊधौ! क्रूर कूबरी पठाये हो।"

कृष्ण, कुब्जा, उद्धव सभी पर व्यंग्य करते हुए गोपियाँ कहती हैं कि—

"वे तौ भए जोगी पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरु हैं किधौं चेला हैं।"

इस प्रकार उद्धव-शतक में गोपियाँ अपनी मार्मिक उक्तियों द्वारा निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन करती हैं। डा० रसाल ने लिखा है "उद्धव का ज्ञान वस्तुतः गोपियों की अथाह भक्ति में ऐसा लुप्त हो जाता है कि उद्धव बस मंत्र-मुग्ध से ही खड़े रह जाते हैं। इस प्रकार ज्ञान और योग के ऊपर भक्ति और प्रेम की विजय होती है।"[१]

उद्धव-शतक के दार्शनिक विचारों का एक सम्यक् अनुशीलन करने से प्रकट होता है कि रत्नाकरजी को दर्शन-शास्त्र का अत्यंत गंभीर और सुलझा हुआ ज्ञान था। इस चिर-परिचित विषय-ज्ञान पर प्रेम की विजय को उन्हें परम्परा पालन के लिए अपनाना पड़ा था, उद्धव-शतक की रचना का लक्ष्य दार्शनिक खण्डन-मण्डन नहीं था। फिर भी विषय को उन्होंने अत्यन्त सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया। भावों और विचारों के मणि-कांचन-संयोग ने उद्धव-शतक के दार्शनिक पक्ष को अत्यन्त भव्य बना दिया है। काव्य की गरिमा भी कहीं नष्ट नहीं हुई है।

उद्धव-शतक में ज्ञान और योग पर प्रेम की विजय कवि ने इसीलिए प्रदर्शित की है क्योंकि बुद्धि की अपेक्षा हृदय का महत्व अधिक है। ज्ञान में

---

१. **उद्धव-शतक, भूमिका, पृ० ४०।**

बुद्धि की प्रधानता होती है और भक्ति में हृदय की। ज्ञान मार्ग केवल बुद्धि को लेकर चलता है जबकि भक्ति में हृदय और बुद्धि का सामञ्जस्य रहता है। यही कारण है कि भागवत आदि भक्ति-प्रधान ग्रन्थों में ज्ञानी उद्धव प्रेममयी गोपिकाओं के समक्ष पराजित प्रदर्शित किये गए हैं। भ्रमरगीत परम्परा के सभी कवियों ने ज्ञान पर प्रेम की विजय दिखाई है किन्तु रत्नाकरजी ने जिन मौलिक दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया है वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्धव-शतक में अत्यन्त मार्मिक तथा भावपूर्ण काव्यमय पद्धति द्वारा निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का मण्डन किया गया है। गोपियों के तर्क व्यंग्य और उपहास आदि उद्धव की ज्ञान-गरिमा को चूर-चूर कर देते हैं और वे भी ब्रजाङ्गनाओं की भाँति प्रेम के रंग में रंग जाते हैं। उद्धव-शतक में दर्शन शास्त्र के सिद्धान्त लौकिक व्यवहार के क्षेत्र में वहीं तक प्रयुक्त किए गए हैं जहाँ तक उनमें उपयोगिता और उपयुक्तता के व्यापक तत्व का सन्निवेश है। यदि सिद्धान्तों में उपयोगिता का गुण नहीं तो सामान्य प्राणियों के लिए वे मूल्यहीन सिद्ध होंगे। उद्धव-शतक में कवि ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है। उद्धव-शतक के दार्शनिक विवेचन के संबंध में डा० स्नेहलता श्रीवास्तव के शब्दों में हम अन्त में कह सकते हैं कि "यद्यपि विषय परम्परागत है किन्तु कवि ने अनेक मौलिक उद्‌भावनाओं द्वारा इसे नवीन तथा चमत्कारपूर्ण बना दिया है। गोपियों के तर्क बुद्धिवैभव और भावुकता दोनों को लेकर ही चले हैं अतः रत्नाकर का दार्शनिक विवेचन शुष्क होने से बच गया है।"[1]

प्रश्न १४—"उद्धवशतक में मार्मिक भावाभिव्यक्ति के लिए अनुभावों का बहुत अधिक आश्रय लिया गया है। कहीं-कहीं तो अनेक अनुभावों के सुष्ठु सुगुंफन में अत्यन्त प्रवीणता दिखाई गई है।" उपयुक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की प्रामाणिकता पर विचार कीजिये।

---

१. **हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा**—डा० स्नेहलता श्रीवास्तव, पृ० ४९५।

अथवा

प्रश्न १५—"रत्नाकर के काव्य में भाव-चित्रों को रमणीय बनाने के लिए अनुभावों का प्रयोग कुशलता से किया गया है।" इस कथन की यथार्थता पर सप्रमाण विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर—अनु+भाव=अनुभाव का शाब्दिक अर्थ है भावों के पश्चात् व्यक्त होने वाली चेष्टा। आश्रय की चेष्टाओं को अनुभाव कहते हैं। अनुभाव अनन्त हैं किन्तु उसके दो प्रमुख भेद हैं—सात्विक एवं कायिक। अन्तःकरण की बाह्य चेष्टाओं को सात्विक तथा शारीरिक बाह्य चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहते हैं। एक-एक भाव के बहुत से अनुभाव हो सकते हैं किन्तु मुक्तक काव्य में उन्हीं अनुभावों का चयन किया जाता है जो भाव की अभिव्यंजना में पूर्णतः समर्थ होते हैं। निश्चय ही सफल कवि रस-व्यंजना का पूर्ण वैभव अनुभावों के द्वारा ही व्यक्त करता है। रत्नाकरजी एक रस-सिद्ध कवि थे। स्वाभाविकता, मार्मिकता, प्रभविष्णुता और संवेदनीयता की दृष्टि से उद्धव-शतक भाव-व्यंजना का एक अक्षयकोष है। रत्नाकरजी ने भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए तथा भाव-चित्रों को रमणीय बनाने के लिए अनुभावों का प्रयोग कुशलता से किया है।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जब हृदय भावाकुल हो जाता है उस समय वाणी भी भाव-प्रकाशन में असमर्थ हो जाती है, अनुभाव ही तब भाव-प्रकाशन का कार्य संपादित करते हैं। रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में हृदय के शोक, पीड़ा, व्याकुलता आदि भावों की अभिव्यक्ति के लिए अनुभावों का आश्रय ग्रहण किया है। इस काव्य का आरम्भ अत्यन्त प्रभावशाली नाटकीय ढंग से हुआ है। मथुरा में कृष्ण राजनीतिक समस्याओं में इस प्रकार व्यस्त हो जाते हैं कि उन्हें ब्रज के स्मरण का भी अवकाश नहीं मिलता। एक दिन यमुना में स्नान करते समय मुरझाये कमल पुष्प को देख कमलमुखी राधा की विरह-विधुरा श्रीहत अवस्था उन्हें स्मरण हो आती है और वे अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं। कृष्ण की इस मर्मव्यथा को उद्धव जानना चाहते हैं किन्तु जानें तो कैसे? और कृष्ण भी अपनी व्यथा को उद्धव को समझाये भी कैसे? कृष्ण का हृदय क्या कहें, कैसे कहें, कहाँ तक कहें, शुरू कैसे करें, आदि की द्विविधा में पड़ा था कि भावनाओं ने अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग स्वतः खोज लिया—

"तौ लौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आई भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अंखियानि तैं।"

इस भाव विगलित दशा में आँसू और हिचकियाँ कृष्ण की व्यथा-कथा का प्रकाशन कर देती हैं—

"गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यों
प्रेम पर्‍यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैकु कही बैननि अनेक कहीं नैननि सौं
रही सही सोऊ कहि दीनि हिचकीनि सौं।।"

इन पंक्तियों में अनुभावों की सफल योजना हुई है। जो मर्मव्यथा शाब्दिक अभिव्यक्ति से परे थी, उसकी कवि ने अनुभावों द्वारा अत्यन्त सफल अभिव्यक्ति की है। कृष्ण के हृदय का मंथन और वेदना नयनों और हिचकियों से सहस्र धाराओं में विगलित हो बह निकली है।

ब्रज-विलास का ध्यान रूपी काँटा कृष्ण के अन्तःकरण से अहर्निश कसकता रहता है। ब्रज में जीवन-यापन करते समय उन्हें जो स्नेह और ममत्व मिला था उसकी समानता मथुरा का राजसी ऐश्वर्य भी नहीं कर पाता। सचमुच हृदय की सुख-शान्ति केवल वैभव पर ही निर्भर नहीं रहती है। कृष्ण को भी माता यशोदा का माखन-मलाई, गोपिकाओं द्वारा निर्मित मोर मुकुट ब्रजवासियों द्वारा प्यार से 'गोपाल' कहकर पुकारना भूलता नहीं। उसी अनिर्वचनीय सुख की स्मृति आज उन्हें व्यथित और व्याकुल बना रही है। परन्तु ज्ञानी उद्धव इसे समझ सकने में असमर्थ हैं और इसे कृष्ण की मोहाकुलता समझ ज्ञान की बातें करते हैं। कृष्ण उन्हें प्रेम के महत्त्व से अवगत कराने के लिए ब्रज भेजते हैं। कृष्ण का कहना है कि तुम एक बार ब्रज जाकर गोपियों को भी ज्ञानोपदेश दे दो फिर तुम्हारा उपदेश सिर आँखों पर ग्रहण कर लूँगा। उद्धव की ब्रज-प्रयाण बेला पर कृष्ण के हृदय में भावों का पारावार लहरा उठता है, व्यथा-कथा हृदय में न समाकर बाहर आने के लिए विकल हो उठती है। पर वे ब्रजवासियों को संदेश नहीं कह पाते, कंठ के अवरुद्ध हो जाने पर नयनों से आँसुओं की धारा प्रवाहित हो उठती है। सात्विक अनुभाव के आँसू कृष्ण के अन्तः स्थित भावों का उद्घाटन कर देते हैं—

"गहवर कंठ ह्वै न कढ़न सन्देश पायौ
नैन-मग तौ लौ आनि बैन अगवानी ह्वै ।
प्राकृत प्रभाव सौं पलट मनमानी पाइ
पानी आज सकल संवार्यौ काज बानी ह्वै ।।"

कृष्ण की इस समय जो अवस्था है उसे भुक्तभोगी ही समझ सकते हैं। उद्धव ब्रज जा रहे हैं यह देख कृष्ण के हृदय में भी लाख-लाख अभिलाषाएँ मचल उठी हैं किन्तु वे विवश हैं। उनकी विवशता सात्विक अनुभावों के रूप में प्रकट होने लगती है—

"उद्धव कैं चलत गुपाल उर माँहि चल
आतुरी मची सो परै कहि न कबीनि सौं।
कहै रतनाकर हियौ हूँ चलिबै कौ संग
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलीनि सौं ।।
आनि हिचकी ह्वै गरैं बीच सकस्यौई परै
स्वेद रस्यौई परै रोम-भंझरीनि सौं।
आनन-दुवार तैं उसाँस ह्वै बढ़्योई परै
आँस ह्वै कढ़्योई परै नैन खिरकीनि सौं।"

इस चित्र में पुरुष का नियन्त्रित उच्छ्वास अपने आप में सजीव और जीवित हो उठा है। कृष्ण के हृदय की उत्कण्ठा और आकुलता अनुभावों के माध्यम से सप्राण बन गई है।

इसी अवसर का अनुभावों का एक अन्य मार्मिक और गत्यात्मक चित्र देखिए। प्रेमावेग में कृष्ण की हालत घड़ी के पैण्डुलम जैसी हो रही है। वे गोपियों के लिए सन्देश भेजना चाहते है अतः दौड़-दौड़ कर उद्धव के चलते हुए रथ के पास कुछ कहने के लिए जाते हैं किन्तु मन में ही उलझकर रह जाते हैं। बातों की झोंक में उद्धव के साथ लगे ही चले जा रहे हैं किन्तु बात कुछ नहीं कह पा रहे। इन बातों की झोंक में साथ लगे जाने ने कृष्ण के हृदय की अकह-कथा जिस उत्तमता से कही है वह किसी अन्य रीति से व्यक्त होनी सम्भव न थी—

"सीरे तपे विविध संदेसनि की बातनि की
घातनि की झोंक में लगेई चले जात हैं।"

उद्धव चले जाते हैं और प्रेम-विह्वल गोपिकाओं के बीच ब्रज-भूमि में पहुँचते हैं। उद्धव का आगमन सुन गोपियाँ प्रिय-संदेश श्रवण की तीव्रतम अभिलाषा से अनुप्राणित होकर उन्हें चारों ओर से घेर लेती है किन्तु उद्धव की ओर दृष्टिपात करते ही अज्ञात आशंका से सिहर उठती हैं। उद्धव की मुख-मुद्रा से उन्हें संदेश की प्रतिकूलता का अनुमान हो जाता है किन्तु फिर भी वे श्वास, अश्रु और औत्सुक्य को रोक उद्धव के मुख-मण्डल पर अंकित रेखाओं में अपनी भाग्य-लिपि पढ़ने का प्रयास करती हैं। जिस प्रकार परीक्षाफल सुनने के लिए आया हुआ विद्यार्थी पहले अध्यापक की मुख-मुद्रा को देख अपना अनुमान लगाता है और फिर बड़ी व्याकुलता से परिणाम सुनने के लिए सतर्क हो उठता है, वही दशा गोपियों की है। आशा-निराशा के झूले में वे झूल रही हैं और उनका रोम-रोम संदेश सुनने के लिए प्रतीक्षा कर रहा है। उनकी रस विह्वलता को कवि ने अनुभावों के माध्यम से व्यक्त किया है। उत्सुकता की इस चरमावस्था में वे अपनी साँस तक रोके हुए हैं—

"आँस रोकि साँस रोकि पूछन हुलास रोकि
मूरित निरास की सी आस-भरी ज्वै रही।"

लेकिन उद्धव के हाथ में पत्र देखकर वे अपनी उत्सुकता अधिक न रोक सकीं और पूछ ही तो बैठती हैं—

"उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं॥"

इन पंक्तियों में कायिक अनुभावों का सुन्दर चित्रण है। कवि ने नाटकीय परिस्थिति उत्पन्न करके गोपियों की उत्सुकता, आतुरता और प्रेमाधिक्य का अत्यन्त भव्य चित्र उपस्थित किया है।

गोपियों के हृदय के अन्तर्द्वन्द्व का रत्नाकरजी ने सजीव चित्रांकन किया है। उनके हृदय में विभिन्न भावों का ज्वार-भाटा उठ रहा है। पहले तो वे कृष्ण का संदेश जानने को आतुर हो उठती हैं, फिर उद्धव की मुख-मुद्रा को देख विह्वल हो जाती हैं, उनकी आशा निराशा में परिणत हो जाती है, प्रतिकूल संदेश की आशंका से वे काँप उठती हैं और उनके मुख से कराह निकल कर रह जाती है—

"साहस कै कछुक उमाहि पूछिबै कौ ठाहि
चाहि उत गोपिका कराहि रहि जात है।"

गोपियों की यह कराह उद्धव को द्रवित कर देती है और उनका सम्पूर्ण ज्ञानाभिमान और वाक्चातुर्य तिरोहित हो जाता है। उस समय उद्धव की जो दशा होती है उसे कवि ने अनेक अनुभावों के सुष्ठु सुगुम्फन के द्वारा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है—

"दीन दसा देखि ब्रज बालनि की ऊधव कौ
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से॥
सूखे से स्रमे से सकबके से सके थके से
भूले से भ्रमे से भभरे भकुवाने से।
हौले से हले से हूल हूले से हियै में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥"

किन्तु उद्धव की यह किंकर्तव्यविमूढ़ दशा चिरकाल तक नहीं रहती। शीघ्र ही संयत होकर वे गोपियों को ज्ञान और योग का उपदेश देते हैं। कहाँ तो गोपियाँ प्रेम-संदेश सुनने की आशा लगाए थीं और कहाँ मिला योग-साधना का नीरस उपदेश। सुनते ही उनका हृदय शत-शत खण्डों में विदीर्ण हो उठता है। इन वियोगिनी ब्रजाङ्गनाओं का सामूहिक चित्र रत्नाकरजी ने अनुभावों एवं सात्विकों के द्वारा प्रस्तुत किया है। इस चित्र की प्रत्येक रेखा सजीव है, गोपियों की मर्मव्यथा सवाक् हो उठी है। मार्मिकता में तो यह चित्र अपूर्व है। अनुभाव योजना के द्वारा कवि ने उनके क्रोध, निराशा, व्याकुलता, शोक, जड़ता आदि मनोभावों को व्यंजित किया है और स्वभाव की भिन्नता भी निरूपित की है—

"सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी कोऊ थानहि थिरानी है।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी है॥
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी है।

कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी है ॥"

गोपियों के प्रेम की अनन्यता एकनिष्ठता और तन्मयता के समक्ष उद्धव का ज्ञान और योग पराभूत हो जाता है। वे ज्ञानी से प्रेमी बन जाते हैं और प्रेम के मद से उन्मत्त होकर मथुरा लौटते हैं। उद्धव जब कृष्ण के समीप पहुँचते हैं तो कृष्ण का हृदय ब्रज के समाचार जानने के लिए आतुर हो उठता है। गोपियों ने जो संदेश दिया था, वह मार्मिकता में अपनी समानता नहीं रखता। वाणी से कुछ न कहने और चेष्टाओं द्वारा ही ब्रज की स्थिति बताने का गोपियों ने उद्धव से अनुरोध किया था—

"औसर मिलै औ सरताज कछु पूछिहैं तौ
कहियौ कछू न दसा देखि सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबै कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ॥"

कृष्ण के समीप पहुँच उनसे मिलते समय उद्धव भाव-विभोर हैं और ऐसी ही अवस्था कृष्ण की भी है। उनके हृदय में उठने वाले भावों को कवि ने अनुभावों के माध्यम से मूर्तिमान किया है—

"आए दौरि पौरि लौं अवाइ सुनि ऊधव की
और ही बिलोकि दसा दृग भरि लेत हैं।
कहै रतनाकर बिलोकि बिलखात तिन्हैं
वेऊ कर काँपत करेजैं धरि लेत हैं ॥
आवति कछूक पूछिबै औ कहिबै की मन
परत न साहस पै दोऊ दरि लेत हैं।
आनन उदास साँस भरि उकसौहैं करि
सौंहैं करि नैननि निचौहैं करि लेत हैं ॥"

कृष्ण उद्धव से गोपियों के समाचार पूछते हैं किन्तु उद्धव भावावेश की तीव्रतम अवस्था में कुछ भी सुनाने में असमर्थ हैं। गोपियों ने आह भरकर कराह कर, नैनों में नीर भरकर और कहने की इच्छा होने पर भी हिचकियों के कारण कुछ न बोलने की बात कहकर अपना संदेश सुनाने की प्रार्थना की थी। मथुरा आकर उद्धव इसी प्रकार संदेश देते हैं, चेष्टाओं द्वारा ही संदेश देते हैं, वाणी द्वारा कहने में असमर्थ रहते हैं—

"आँसुनि की धार औ उभार कौ उसाँसनि के
तार हिचकीनि के तनक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच
भावनि के विषम प्रपंच सरि लेन देहु॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनावौ नाथ
नैसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।
कहत अबै हैं कहि आवत जहाँ लौं सबै
नैकु थिर कढ़त करैजो करि लेन देहु॥"

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्धवशतक में एक से एक बढ़कर अनुभाव-चित्र विद्यमान हैं जो मार्मिकता में बेजोड़ हैं। हृदय-उदधि की एक-एक उर्मि अनुभाव-चित्र से मूर्त्त हो उठी है। कभी पुलकावली तो कभी अश्रु-प्रवाह, कभी उच्छ्वास तो कभी प्रस्वेद, वैवर्ण्य, कंप, शैथिल्य आदि नाना अनुभावों से रत्नाकरजी ने भावों का सजीव मूर्तिकरण किया है। ये अनुभाव भाव-चित्रों को और अधिक रमणीय बनाने में सफल हुए हैं। इनके द्वारा भावों की और अधिक मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। वाणी जहाँ भाव-प्रकाशन में असमर्थ है, वहाँ, अनुभाव भाव-प्रकाशन करते हैं। काव्य की स्वाभाविकता और मर्मस्पर्शिता में इस अनुभाव योजना ने चार चाँद लगा दिए हैं। निश्चय ही इन अनुभावों के द्वारा उद्धव-शतक चित्रोपम सत्काव्य बन गया है।

भाव-चित्रों को और अधिक व्यंजक, रमणीय तथा अनुभूति-प्रवण बनाने के लिए प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों ने अनुभाव विधान का प्रश्रय ग्रहण किया है। रीतिकालीन कवि देव ने अपनी शृङ्गारिक अनुभूतियों को अनुभावों के माध्यम से मधुर चित्रों के रूप में रूपायित किया है। उदाहरण के लिए, निम्न पंक्ति देखिए—

"नैननि हँसाइ नेकु नीबी उकसाइ, हँसि,
ससि मुख सकुच सरोवर ते निकसी।"

यहाँ पर नेत्रों में हँसना, नीवी उकसाना और संकोच से झुकना अनुभाव वर्णित हैं। यद्यपि ये सभी अपने आप में सटीक हैं तथापि रत्नाकर के समान न तो गतिशील योजना है और न सम्पूर्ण चित्र ही। एक अन्य चित्र देखिए—रात्रि में रंगभवन का चित्र है। मिलन के लिए आतुर नायक नायिका को पान देता है पर वह हँसकर भौंह मरोड़ लेती है। इस पर ललचाकर नायक बाँह

पकड़ लेता है तो नायिका स्पष्ट ही मुँह से मनाकर देती है कि सखियाँ हमसे अवस्था में बड़ी हैं—इस प्रकार ढिठाई करना ठीक नहीं है। बेचारा नायक अब ललचाई आँखों से देख ही सकता है। परन्तु नायिका उसे थोड़ा और तंग करना चाहती है। कवि इस अन्तिम मधुर चेष्टा का एक हल्की रेखा से चित्र खींच देता है। नायक का धीरे-धीरे नायिका की ओर दृष्टि उठाना और नायिका का उसी अनुक्रम से अपनी दृष्टि को सखियों की ओर फेरते जाना—

"पान दियो हँसि प्यार सों प्यारी बहू लखि त्यों हंसि भौं मरोरी।
बाँह गही ललचाई ललामुख, नाहीं कही मुसकाई किसोरी।
तोरो न लाज जेठानी सखी जन, देव ढिठाई करै नहिं थोरी।
लाल जितै चितवै तिय पै, तिय त्यों त्यों चितौति सखीन की ओरी।"

देव अपनी अनुभाव योजना में प्रायः अलङ्कारों के मोह में पड़ गए हैं, अतः देव की अनुभाव-योजना प्रायः अस्वाभाविक हो गई है तथा शृङ्गारिकता इनके चित्रों का मूल स्वर है। यही नहीं, देव के चित्र में अनुभाव प्रायः अन्तिम चरण में होता है जो कि चित्र को गहराई अवश्य देता है किन्तु सम्पूर्णता नहीं। देव की अनुभाव योजना ऐन्द्रियता, रूढ़ उपमान, यमक और अनुप्रास आदि अलंकारों के भार से बोझिल तथा चमत्कार-प्रधान है। ठीक इसके विपरीत रत्नाकर का अनुभाव-विधान इन दोषों से मुक्त सहज, स्वाभाविक और सामूहिक चित्र प्रस्तुत करने वाला है।

रीतिकालीन कवि घनानन्द ने हावों का चित्रण ही अधिक किया है। बिहारी की भाँति ही घनानन्द रूप की मार से घायल हैं। जहाँ बिहारी कहते हैं कि—

"कहा लड़ैते दृग करें, परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली, कहुँ पीतपट, कहुँ मुकुट बनमाल॥"

या

"कियो जु चिबुक उठाइ कै, कंपित कर करतार।
टेढ़ी पै टेढ़ी फिरै, टेढ़े तिलक लिलार॥"

वहाँ घनानन्द का कथन है कि—

"रूप के भारनि होति है सोंही लजौंहिये दीठि सुजान यों भूली।
लागियै जात न लागी कहूँ निसि; पागी वहीं पलकौ मति भूली।

"बैठिये जु हिय पैठत आजु कहा उपमा कहियै सम तूली।
आए हो भोर भए घनआनन्द आखिन माँझ तो साँझ सी फूली।।"

इस पद में लज्जा, पलकों का स्थिर होना, आँखों का रक्तिम होना आदि अनुभावों के द्वारा नायिका की मनोदशा को व्यंजित किया गया है।

घनानन्द के अनुभाव-चित्र प्रायः रूप वर्णन या संभोग और विलास के हैं। वे संयोग चेष्टाओं, भंगिमाओं का सुन्दर चित्रण करते हैं। संचारी भाव, अनुभाव और विभावों का पूर्ण योग होने से वे शृङ्गार रस के सम्पूर्ण उपादान एक ही पद में रख देते हैं—

"सुख स्वेद कनो मुख चन्द बनी
बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद जोवन रूप छकी अंखियाँ
अवलोकनि आरस रंगरली।
घन आनन्द ओपति ऊँचे उरोजनि
चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली
सुजान मनोरथ बेलि फली।।"

घनानन्द ने राधा-कृष्ण की समस्त शृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन किया है फलतः हावों एवं अनुभावों की उनकी योजना फड़कती हुई है। उनकी पैनी दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यापार छूटा नहीं है। ऐसे ही एक सवैया की प्रशंसा करते हुए शुक्लजी अपने इतिहास में उद्धृत करते हैं कि—

"निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी।
छवि रंग भरी मुरि चाहन की।"

"इस अन्तिम सवैये के प्रथम तीन चरणों में कवि ने बहुत सूक्ष्म कौशल दिखाया है। 'मुरि चाहनि' और 'तकि मोरनि' से यह व्यक्त किया गया है कि एक बार नायक ने नायिका की ओर मुड़कर देखा, फिर देखकर मुड़ गए और अपना रास्ता पकड़ा। देखकर जब वे मुड़े तब नायिका का मन उनकी ओर इस प्रकार ढल पड़ा जैसे पानी नाली में ढल जाता है। कटि में बल देकर प्यारे नायिका के मन में डूबने के डर से निकल गए।[1]

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३४३।

रसखान ने कायिक एवं मानसिक अनुभावों का सूक्ष्म चित्रण किया है, उनकी योजना बहुत ही स्पष्ट एवं सजीव है। कायिक अनुभाव का चित्र नायिका की चंचलता में द्रष्टव्य है—

"नैन नचाइ चितैं मुसकाइ सुओट ह्वै जाइ अंगूठा दिखायो।"

सौन्दर्य के इस चित्र में कायिक अनुभावों की सजीवता द्रष्टव्य है किन्तु नवीनता नहीं है।

कृष्ण भक्त कवियों में नागरीदास के काव्य में भी अनुभाव-योजना मिलती है। एक चित्र द्रष्टव्य है जो कि सजीवता में बेजोड़ है—

"जोरत नैन, मरोरत भौंह, चोरत चित्त निचोरत धोती।"

रत्नाकर के साथ ही अन्य कवियों के अनुभाव-विधान का एक सम्यक अवलोकन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रत्नाकरजी की अनुभाव-योजना अपूर्व है। भक्ति एवं रीतिकाल के कवियों के अनुभाव-विधान का अपूर्व समन्वय इनके काव्य में है। किन्तु रत्नाकर के चित्र भक्त-कवियों के अधिक निकट हैं। अनुभावों की योजना स्पष्ट तो है ही, साथ ही रस संयुक्त भी है। रत्नाकर की दृष्टि शारीरिक क्रियाकलाप तक ही सीमित नहीं रह गई है, वह मानस प्रतिक्रिया को भी मूर्त रूप प्रदान करती है। कभी-कभी वातावरण भी व्यंजित हो उठता है। रीतिकाल के अधिकांश कवियों ने अनुभाव-विधान को ही काव्य की सफलता मानकर उसके उत्कर्ष का प्रयास किया था। रसिकता रीतियुग के काव्य की आत्मा थी और उस रसिकता की अभिव्यक्ति के लिए हाव और अनुभाव सर्वाधिक सफल साधन थे। अतः रीतिकाल का काव्य अनुभाव-योजना से अधिक निखर कर आया है। इस काल के कवियों में मतिराम, बिहारी, देव, पद्माकर, रसखान, घनानन्द, भिखारीदास आदि जिस कवि पर हम दृष्टिपात करें, प्रत्येक के काव्य में अनुभावों की योजना दृष्टिगत होती है। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी अनुभाव-व्यंजना के धनी हैं, उनकी सतसई सात्विक और कायिक अनुभावों के साथ वाचिक और आहार्य अनुभावों की क्रीड़ास्थली भी है। संयोगकालीन अवस्था में आन्तरिक आनन्द के फलस्वरूप जो स्वेद, कंप, रोमांच, वैवर्ण्य आदि होते हैं, वे सब सतसई में विद्यमान हैं। सतसई में अनुभावों के सभी रूप मिल जाते हैं किन्तु रत्नाकर से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी प्रायः संभोग

या संयोग की भावभूमि पर प्रतिष्ठित हैं अतः उनके काव्य में ऐन्द्रियता का समावेश है, जबकि रत्नाकर का उद्धवशतक विरह काव्य है। उसमें कायिक अनुभाव प्रायः स्मृति, उत्सुकता अथवा विरह से प्रभावित है। बिहारी तथा रत्नाकर दोनों ने ही नेत्रों के द्वारा अनुभावों की योजना की है। बिहारी का एक संयोगकालीन चित्र देखिए—

"कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु ही सों बात॥"

रत्नाकरजी ने कृष्ण की ब्रज-वियोग जनित व्यथा वर्णित की है—

"प्रेम पर्‌यो चपल चुचाइ पुतरीन सौं।"

बिहारी और रत्नाकर दोनों ने ही रस व्यंजना के लिए अनुभावों का सहारा लिया है। जैसे—

"सटपटाति सी ससिमुखी, मुख घूँघट पट ढाँकि।
पावक झर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि॥" —बिहारी

तथा—

"उझकि उझकि पद कंजनि कै पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहन छबै लगीं।
हमकों लिख्यौ है कहा हमकों लिख्यौ है कहा
हमकों लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रत्नाकरजी का अनुभाव-विधान अत्यन्त भावोत्कर्ष है। उद्धवशतक में कवि ने मार्मिक भावाभिव्यक्ति के लिए अनुभावों का प्रश्रय ग्रहण किया है और अनुभावों की सफल योजना द्वारा भाव-चित्रों को और अधिक रमणीय बना दिया है। हृदय की अवरुद्धता, किंकर्तव्यविमूढ़ता, भावावेश, विकलता, निराशा, उत्सुकता आदि दशाओं का कवि ने अनुभावों द्वारा सजीव चित्र उपस्थित किया है। उद्धवशतक में सर्वत्र ही अनुभावों की सजीव तथा फड़कती हुई योजना दिखलाई पड़ती है। हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का इसमें अनुभावों द्वारा सजीव चित्रण किया गया है। निःसन्देह रत्नाकर का अनुभाव-विधान अत्यन्त मार्मिक तथा भावाभिव्यक्ति में सफल सिद्ध हुआ है।

प्रश्न १६—"रत्नाकरजी का सौन्दर्य-दर्शन प्रायः सर्वत्र सत्काव्योचित शालीनता से मण्डित है।" उद्धवशतक के आधार पर इस कथन की सत्यता पर विचार कीजिए।

उत्तर—रत्नाकरजी आधुनिक युग में जन्म लेकर भी रीतिकालीन भावनाओं से अनुप्राणित थे। यही कारण है कि उनके काव्य में सौन्दर्य-चेतना सर्वत्र मुखरित हुई है। सौन्दर्य-दर्शन के प्रति रीतिकाल के कवियों का असीम आग्रह था। न केवल काव्य में अपितु उस युग की अन्यान्य कलाओं में भी सौन्दर्य के प्रति अनन्य आसक्ति विद्यमान है। सौन्दर्य के प्याले में यौवन की मदिरा को पीकर उस युग के कवि उन्मत्त हो रहे थे किन्तु तब भी उनकी सौन्दर्य-तृषा अतृप्त ही रहती थी। सौन्दर्य के प्रति ऐसा ही आकर्षण रत्नाकर जी में भी था। किन्तु उनकी सौन्दर्य दृष्टि वासनामयी न होकर सत्काव्योचित शालीनता से युक्त है। जैसा कि डा० विश्वम्भरनाथ भट्ट ने लिखा है, **"रत्नाकरजी का सौन्दर्य-दर्शन प्रायः सर्वत्र सत्काव्योचित शालीनता से मण्डित है।"**[1]

सौन्दर्य के दो प्रधान तत्व रमणीयता और प्रियता हैं। जो रमणीय है, जो प्रिय है वही सुन्दर है। उद्धवशतक के कृष्ण इन दोनों गुणों से समन्वित हैं। उनकी रूप-माधुरी जितनी आकर्षक है, उनके कार्यकलाप भी उतने ही मोहक हैं। कृष्ण की रमणीयता और प्रियता को आधार मानकर रत्नाकरजी ने उद्धवशतक की रचना की है। यही उद्धवशतक की सौन्दर्य भावना का आधार स्तम्भ है।

उद्धवशतक का प्रारम्भ कृष्ण के यमुना-जल में मुरझाये कमल को देखकर ब्रज की स्मृति में व्याकुल हो जाने से होता है। कृष्ण ब्रज-जीवन की मधुर मंजुल मादक स्मृतियों में खो जाते हैं। माता यशोदा और नन्दबाबा का लाड़-प्यार, चन्द्रमुखी राधा का अनन्य लावण्य, ब्रजाङ्गनाओं का अभिनव सौन्दर्य, कुञ्जों में की गई केलि-क्रीड़ाएँ, वंशी-वादन सभी कुछ कृष्ण को स्मरण आता है और इस प्रकार कवि ने कृष्ण के हृदय का चित्रण किया है। अनुराग, प्रेम और आकर्षण ही वे दिव्य विभूतियाँ हैं जो मानव-जीवन को उज्ज्वल और

---

१. **रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला**—डा० विश्वम्भरनाथ भट्ट, पृ० ३७६।

महान बनाती हैं। कृष्ण इन वृत्तियों से आपूर्ण हैं। यही बात गोपियों के साथ है। उनके हृदय में कृष्ण के प्रति ऐसा गहन, एकनिष्ठ और अनन्य अनुराग है कि ज्ञानी उद्धव का ज्ञान चूर-चूर हो जाता है। दर्शन की दृष्टि से यहाँ सगुण की विजय और निर्गुण की पराजय होती है किन्तु सौन्दर्य की दृष्टि से सत्य और शिव की विजय और असत्य तथा अशिव की पराजय वर्णित है।

सौन्दर्य एक ऐसी मानसिक अनुभूति है जिसमें आनन्दमयी तन्मयता का प्राधान्य होता है। उद्धवशतक के कृष्ण, राधा, गोपी और उद्धव में यह आनन्दमयी तन्मयता पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। कृष्ण का यमुना जल में मुरझाये कमल को देख मूर्छित हो जाना यही तन्मयता है क्योंकि उन्हें विरह-विधुरा राधा की श्रीहत अवस्था का स्मरण हो आता है और वे अपनी सुध-बुध गँवा बैठते हैं। कृष्ण का उद्धव से निम्न कथन भी इसी अनुरागमयी अनन्यता का परिचायक है—

"गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
सम्पत्ति त्रिलोक की विलोकन में आवै ना ॥"

उद्धवशतक की गोपियाँ तो इस अनन्य अनुराग भावना की ज्वलन्त उदाहरण हैं। वे कृष्ण के दर्शनों की अभिलाषिणी हैं, मोक्ष-प्राप्ति की उन्हें कामना नहीं। कृष्ण के दर्शनों के समक्ष मुक्ति की तुच्छता सिद्ध करते हुए वे कहती हैं कि—

"मुक्ति-मुकता कौ मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकीं।"

गोपियाँ उद्धव के योगोपदेश को स्वीकार करने के लिए भी प्रस्तुत हैं, वे प्राणायाम करने को तैयार हैं, पञ्चाग्नि की ज्वाला झेलने को उद्यत हैं, किन्तु तभी जब इन सभी कष्टों को सहन करने पर नन्दलाला की प्राप्ति हो जाए—

"सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ ॥"

राधा के हृदय में इस अनन्य और एकनिष्ठ प्रेम की मात्रा इतनी अधिक है कि गोपियाँ उद्धव से अनुरोध करती हैं कि अपने योग और ज्ञान के उपदेश को उसके पास पहुँचने भी न देना। यदि राधा ने इस कहानी को सुन लिया तो उसके नेत्रों से ऐसी अश्रु-धार उमड़ेगी कि प्रलय ही आ जायेगी—

"फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना।"

गोपियों की प्रेम भावना उद्धव के शुष्क ज्ञान-पूरित हृदय में भी सरसता की वारि-धारा बहा देती है और उद्धव ज्ञानी से प्रेमी बन जाते हैं। ब्रज से वापिस लौटे हुए उद्धव का यह प्रेमी रूप द्रष्टव्य है—

"प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानो सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि उद्धवशतक में कृष्ण, गोपिकाओं, राधा और उद्धव के प्रसंग में आनन्दमयी तन्मयता विद्यमान है। निःसंदेह उद्धवशतक का सौन्दर्य पक्ष अत्यन्त स्पष्ट है। यही नहीं, सौन्दर्य-भावना के प्रसंग भी अन्य पक्षों की दृष्टि से भी उद्धवशतक अत्यन्त सफल काव्य है। धार्मिक प्रसंग, हृदयानुरूप भावना, अभीष्ट परिणाम की उपलब्धि, लोकातीत सत्ता का मानवी भावना से अंकन आदि सौन्दर्य-चेतना के अन्य पक्ष हैं। उद्धवशतक में ये सभी पक्ष अत्यन्त सुन्दरता से मुखरित हुए हैं। इस काव्य में निर्गुण सगुण की चर्चा आदि से अन्त तक परिव्याप्त है। कृष्ण और गोपियों की हृदयानुरूप भावना प्रेम है। उद्धव इस भावना की आलोचना करते हैं किन्तु अन्त में वे भी इसी रंग में रंग जाते हैं। कृष्ण और गोपियों की हृदयानुरूप भावना—प्रेम भावना—उद्धव के शुष्क हृदय को भी रससिक्त बना देती हैं। उद्धवशतक में कवि ने लोकातीत सत्ता का मानवी भावना से अंकन भी किया है। उद्धवशतक के नायक कृष्ण अवतारी पुरुष हैं किन्तु उन्हें आदि से अन्त तक मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। राधा और गोपियाँ दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म की शक्ति मानी गई हैं किन्तु इसमें उन्हें भी मानवीय विशेषताओं से आपूरित दिखाया गया है।

उद्धवशतक में अभिव्यंजना का सौन्दर्य भी विद्यमान है। क्रोचे अभिव्यंजना को सौन्दर्य मानता है। उद्धवशतक में प्रेम-विरह, विषाद, उपालम्भ, असूया भाव, मिलनोत्कण्ठा, आत्म-समर्पण आदि भावों की सफल अभिव्यक्ति है। अलंकारों का सुन्दर काव्योचित प्रयोग, रसानुकूल छन्द योजना मुहावरों

का प्रयोग, लोकोक्तियों का सन्निवेश, भाषा-सौन्दर्य आदि के माध्यम से इस कृति में अभिव्यंजना का सौन्दर्य भी आया है। वीप्सा अलंकार की सहायता से भावोत्कर्ष निम्न कवित्त में देखिए—

"भेजे मन भावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गावनि में पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नन्द-पौरि आवन तबै खगीं॥
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥"

सौन्दर्य में शिवत्व का भी स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से उद्धव-शतक शिवत्वपूर्ण कृति है। कृष्ण, गोपी, उद्धव सभी अभीष्ट फल की प्राप्ति करते हैं। अन्त मंगलदायक है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्धवशतक में रत्नाकरजी की सौन्दर्य-दृष्टि का अत्यन्त भव्य उद्‌घाटन हुआ है। रत्नाकरजी की सौन्दर्य-भावना सत्काव्योचित शालीनता से मण्डित है। प्रत्येक युग की भावनाओं के अनुरूप कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि भी परिवर्तित होती रहती है। वीर-गाथा काल में कवियों को तलवारों की झनझनाहट में तथा रूप-लावण्य समन्वित कोमालांगी नारियों के जौहर में सौन्दर्य दिखाई देता था। सूफी कवियों की सौन्दर्य-दृष्टि अवश्य कुछ विकसित रही किन्तु संत कवियों ने अरूप प्रियतम के संयोग अथवा वियोग की अनुभूति में सौन्दर्य अनुभव किया। अव्यक्त सत्ता के सौन्दर्य चित्रण में ही उनकी सौन्दर्य-भावना लीन रही और स्थूल सौन्दर्य का चित्रण वे न कर सके। वैष्णव कवियों ने अवतारवाद की भावना को अपनाया तथा अवतारी पुरुषों में रूप और कर्म-सौन्दर्य का समन्वय प्रदर्शित किया। फलस्वरूप सूर और तुलसी ने कृष्ण और राम को लोक के आकर्षण का केन्द्र बना दिया। रीतियुग में सौन्दर्य दृष्टि कायिक सौन्दर्य तक सीमित रह गई। शारीरिक लावण्य अंगों की सुकुमारता, कोमलता, दीप्ति आदि में कविगणों की सौन्दर्य-दृष्टि आबद्ध रही। भारतेन्दु युग

में कवियों की सौन्दर्य दृष्टि भक्ति और रीतिकाल के कवियों की भावना से भी प्रभावित रही और युग की नवीनताओं से भी समन्वित रही। रत्नाकरजी की सौन्दर्य-चेतना भी अपने अभिनव स्वरूप को लेकर उपस्थित हुई है। डा० नत्थनसिंह के शब्दों में **"इनकी (रत्नाकर की) सौन्दर्य दृष्टि वैष्णव भक्त-कवि और रीतिकालीन श्रृङ्गारी कवि की गंगा-जमुनी सौन्दर्य-भावना है जिसमें एक ओर तो लोकातीत सत्ता की रूप-माधुरी वर्तमान है और दूसरी ओर नटवर नागर, गोपी-वल्लभ और रसिक शिरोमणि कृष्ण का रूप-माधुर्य।"**[1] उद्धवशतक के आधार पर रत्नाकरजी की सौन्दर्य-भावना का एक अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रत्नाकरजी की सौन्दर्य दृष्टि प्रायः सर्वत्र सत्काव्योचित शालीनता से मण्डित है। सौन्दर्य के विविध पक्षों की दृष्टि से यह रचना सफल है और इसमें कवि की सौन्दर्य-चेतना अत्यन्त उत्तम रूप में मुखरित हुई है।

प्रश्न १७—'सूरसागर में ब्रज-वल्लभियों के प्रेमोद्‌गारों के सामने कृष्ण का भाव कुछ दब-सा जाता है। रत्नाकरजी ने दोनों को समान भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। इस दृष्टि से उद्धवशतक के वर्ण्य-विषय के प्रतिपादन में कवि की नवीन शैली की समीक्षा कीजिये।"

उत्तर—भक्तिकालीन भावुकता एवं रीतिकालीन चमत्कार-प्रियता से समन्वित 'रत्नाकर' का उद्धवशतक हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। उद्धवशतक का वर्ण्य-विषय भ्रमरगीत की चिर प्रचलित कथा है। श्रीमद्‌भागवत में यह कथा इस प्रकार वर्णित है कि विरह-विह्वल ब्रज को सान्त्वना प्रदान करने के लिए कृष्ण उद्धव को वहाँ भेजते हैं। किन्तु उद्धव ब्रजाङ्गनाओं के प्रणय-पूरित हृदय में समाविष्ट कृष्ण प्रतिमा का उच्छेदन नहीं कर पाते और गोपियों की भक्ति भावना के समक्ष उनका ज्ञान और योग का अभिमान नष्ट हो जाता है। इस कथा को सूर, नन्ददास आदि भक्त कवियों ने भी अपनाया तथा रीतियुग के कवि भी इस पर अपनी लेखनी चलाने का लोभ संवरण न कर सके। आधुनिक युग के कवियों ने भी इस कथा को अपनाया है। इस परम्परा की एक कड़ी के रूप में 'रत्नाकर' का उद्धवशतक भी है।

---

१. साहित्य-सन्देश—फरवरी-मार्च १९६७, पृ० ३२८।

यद्यपि रत्नाकरजी के उद्धवशतक का वर्ण्य विषय अत्यन्त प्राचीन है तथापि कवि ने उसमें अनेक मौलिक उद्भावनाएँ भी भरी हैं। उद्धवशतक की कथा-वस्तु की सर्वप्रधान विशेषता है—तुल्यानुराग। सूर आदि भक्त कवियों ने कृष्ण के विरह में ब्रज-वल्लभियों को जितना अधिक सन्तप्त दिखाया है उतना अधिक कृष्ण को गोपियों के विरह में दुःखी नहीं दिखाया। ब्रह्म के अवतार होने के कारण उनके कृष्ण इन मानव-सुलभ दुर्बलताओं से ऊपर उठे हुए हैं। किन्तु प्रेम का सहज, स्वाभाविक और नैसर्गिक रूप वही है जिसमें प्रेमी और प्रेमिका दोनों ही एक दूसरे के लिए समान रूप से विह्वल हों। अन्तर्वृत्तियों के चतुर चितेरे रत्नाकर ने अपने उद्धवशतक में इसी उभयपक्षीय प्रेम को चित्रित किया है। उद्धवशतक का प्रारम्भ ही कवि ने अत्यन्त प्रभावशाली नाटकीय ढंग से करके कृष्ण के अन्तर के ब्रजानुराग को अभिव्यंजित किया है। कृष्ण मथुरा के राज्य-कार्यों में इतने अधिक व्यस्त हो जाते हैं कि ब्रज के संबंध में सोचने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। कृष्ण के हृदय में अब भी ब्रज के प्रति अनन्य प्रेम है और ब्रज का कण-कण उन्हें स्वर्गिक सुषमा से आप्लावित प्रतीत होता है। किन्तु जटिल राजनैतिक परिस्थितियाँ उस प्रेम को उभरने नहीं देतीं। कृष्ण के अन्तरतम में अवस्थित रति भाव को जाग्रत करने के लिए कवि ने मुरझाये हुए कमल की योजना की है। एक दिन यमुना के जल में स्नान करते समय कृष्ण को मुरझाया हुआ कमल दिखाई देता है और उन्हें विरह-विधुरा राधिका की श्रीहत अवस्था का स्मरण हो आता है। राधा के साथ ही सम्पूर्ण ब्रज जीवन उनके मानस-पटल पर घूमने लगता है। हृदय की विकलता इतनी बढ़ती है कि कृष्ण मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। उन्हें होश तभी आता है जब तोते के मुख से 'राधा' नाम उच्चरित सुनाई देता है। इस प्रकार कवि ने कथा का प्रारम्भ अत्यन्त मौलिक शैली में किया है और इसमें नाटकीय होने के साथ-साथ मर्मस्पर्शिता भी है। कृष्ण यमुना में स्नान करके लौटते समय ब्रज के प्रति अनन्य अनुराग से भरे हुए हैं। कवि ने निम्न पंक्तियों में इस भाव को अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है—

"कान्ह गए जमुना नहान पैं नए सिर सौं
नीकें तहाँ नेह की नदी में न्हाइ आए हैं।"

कृष्ण की यह व्याकुल, अधीर और विह्वल अवस्था उनके अन्तरंग सखा उद्धव को चिंतित बना देती है और वे कृष्ण से उनका कुशल समाचार पूछने

पहुँचते हैं। परन्तु कृष्ण तो इस समय ब्रज की स्मृति से इतने व्याकुल हो रहे हैं कि कुछ कह नहीं पाते। विषय का प्रारम्भ कहाँ से करें, कैसे करें, क्या कहें, आदि प्रश्न उन्हें द्विविधा से डाल देते हैं। वाणी जब भाव-प्रकाशन में असमर्थ हो जाती है तो कृष्ण की अन्तर्व्यथा को नेत्रों की अश्रु धारा व्यक्त कर देती है—

"तौं लौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आई भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अंखियानि तैं।"

सचमुच व्यथा कही नहीं सही जाती है। कृष्ण का हृदय ब्रज की स्मृति में अत्यन्त व्याकुल और संतप्त है परन्तु वाणी उस वेदना को व्यंजित नहीं कर पाती। कृष्ण कहना चाहते हैं, मित्र को अपने हृदय की व्याकुलता से अवगत कराना चाहते हैं परन्तु गला भर आता है और उनकी कथा आँसुओं और हिचकियों के माध्यम से ही प्रकट हो जाती है—

"नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सौं
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।"

रत्नाकर के कृष्ण ब्रज की याद में उसी प्रकार दुःखी हैं जिस प्रकार ब्रजवासी कृष्ण के विरह में दुःखी हो रहे हैं। माता यशोदा और बाबा नंद का लाड़-प्यार, चन्द्रमुखी राधा के गुणों का विपुल समूह तथा यमुना तट पर की गई विविध रास क्रीड़ाएँ कृष्ण को बार-बार स्मरण आती हैं। ब्रज में व्यतीत किए गए दिनों की स्मृति उनके अन्तर में काँटे की तरह कसकती है—

"ऊधौ ब्रज-बास के बिलासनि को ध्यान धँस्यौ
निसि-दिन काँटे लौं करैजें कसकत है।"

परिवर्तन सृष्टि का नियम है। कभी कृष्ण आठों प्रहर कुँजों में घूमा करते थे और अब उनके नेत्रों में वही ब्रज के कुँज घूम रहे हैं। क्षण मात्र के लिए भी वह सुखद अतीत कृष्ण के दृष्टि-पथ से ओझल नहीं होता—

"फिरत हुते जिन कुंजन मैं आठौ जाम
नैननि में अब सोई कुँज फिरिबौ करैं।"

कृष्ण ब्रज में व्यतीत किए गए उन बीते दिनों की मधुर याद में डूब जाते हैं जब वे दूध-दही के लिए गोकुल की गली-गली में ग्वालिनों को घेरते थे। जब वे नवेली ब्रजाङ्गनाओं को रिझाते थे, स्वयं नाचते-गाते थे और उन्हें भी

नाचने-गाने के लिए प्रेरित करते थे। गोप-बालाओं के श्रम को दूर करने के लिए मीठी बाँसुरी बजाते थे। गोपिकाओं द्वारा निर्मित मोर-मुकुट के समक्ष उन्हें मणि जटित राजमुकुट भी तुच्छ प्रतीत होता है। माता-यशोदा के स्नेहिल करों से प्रदत्त माखन के समक्ष षट्‌रस व्यंजन भी सरस नहीं प्रतीत होते। व्रजवासियों के दिये हुए प्यारे नाम 'गोविंद' और 'गोपाल' को छोड़कर त्रिलोक का ठाकुर कहलाने में कृष्ण को सुख नहीं मिलता। वस्तुतः हृदय की सुख-शान्ति वैभव पर अवलंबित नहीं है। जो स्नेह, जो ममत्व, जो अपनत्व, कृष्ण को व्रज में मिला वह उन्हें विस्मृत नहीं हो पाता। गोकुल के रज-कण के समक्ष त्रिलोक का वैभव भी उनके लिए तुच्छ है—

"गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
संपति त्रिलोक की बिलोकन मैं आवै ना।"

कृष्ण की यह प्रेम-कातरता ब्रह्मज्ञानी उद्धव की समझ में नहीं आ पाती। राजनीतिज्ञ कृष्ण को इस भाँति विह्वल होता देख उद्धव चकित हो जाते हैं और उनसे व्रजवासियों का प्रेम भुला देने को कहते हैं। कृष्ण इसके लिए भी तैयार हो जाते हैं किन्तु शर्त यह रखते हैं कि—

"आओ एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर-आँखिनि सौं
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम।"

ज्ञानाभिमान से आपूर्ण उद्धव व्रज पहुँचते हैं किन्तु व्रज की प्रेम-प्लावित धरा के प्रभाव से उनकी ज्ञान-गठरी खुल कर गिर जाती है और फिर व्रजाङ्गनाओं का कृष्ण के प्रति अनन्य और एकनिष्ठ प्रेम देख उनका रहा-सहा ज्ञानाभिमान भी विनष्ट हो जाता है। उद्धव को व्रज में आया देख पहले तो गोपियाँ अत्यन्त आशापूर्ण हृदय से उनका स्वागत करती हैं किन्तु ज्ञान और योग के नीरस उपदेश को सुन स्तब्ध और अवाक् सी खड़ी रह जाती हैं। फिर अपने अन्तर की पीड़ा और व्यथा को धीरे-धीरे शब्दों के माध्यम से वे प्रकट करती हैं। वे जानती हैं कि कृष्ण मथुरा में अधिपति हो गए हैं, षट्‌रस व्यंजन उनके समक्ष उपस्थित रहते होंगे, विभिन्न चारण-भाट उनकी यशोगाथा का बखान करते होंगे किन्तु क्या कोई वैसा स्नेह भी प्रदान करता है जैसा व्रजवासियों ने उन्हें दिया था—

"षटरस व्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं
ऊधौ नवनीत हूँ सप्रीति कहूँ पावै हैं।
कहै रत्नाकर बिरद तौ बखानै सबै
साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावै हैं ॥"

गोपियाँ कृष्ण को छोड़ किसी मुक्ति की आकांक्षिणी नहीं है। उन्हें इस बात का अभिमान है कि वे कृष्ण की हैं और कृष्ण उनके हैं—

"वै तौ हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही और
हम उनही की उनही की उनही की हैं ॥"

यदि कृष्ण उनसे दूर हैं, तो भी क्या हुआ ? वियोग तो प्रेम को और अधिक उद्दीप्त करता है। ज्यों-ज्यों कृष्ण उनसे दूर हो रहे हैं, त्यों-त्यों उनके हृदय में और गहरे बसते जा रहे हैं जैसे दर्पण से दूर हटने वाले व्यक्ति का प्रतिबिम्ब और गहराई से उसमें अंकित होता जाता है—

"ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान भूरि
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नाकरजी ने यदि एक ओर ब्रजाङ्गनाओं को कृष्ण के विरह में दुःखी दिखाया है तो दूसरी ओर कृष्ण को भी उनके विरह में संतप्त प्रदर्शित किया है। यह उभयपक्षीय प्रेम उद्धव-शतक की कथावस्तु की विशेषता है। सूरसागर के प्रणेता ने विरहिणी-गोपिकाओं की अन्तर्व्यथा का अत्यन्त सूक्ष्म उद्‌घाटन तो अवश्य ही किया है किन्तु गोपियों के विरह दुख के सामने कृष्ण के भाव को दबा सा दिया है। उद्धव-शतक में यह बात नहीं है। रत्नाकरजी ने तुल्यानुराग प्रदर्शित करते हुए कृष्ण को भी ब्रज की याद में व्यथित और व्याकुल दिखाया है। इससे एक ओर उद्धव-शतक की कथा में मौलिकता आ गई है तो दूसरी ओर स्वाभाविकता भी बढ़ गई है। वस्तुतः प्रेम की गरिमा इसी में है कि वह दोनों ओर पलता है। वियोग की अग्नि प्रेमी और प्रेमिका दोनों को समान रूप से संतप्त करती है। उद्धवशतक में रत्नाकरजी ने इस शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन किया है। कथारम्भ ही कृष्ण की ब्रज-स्मृति के जाग्रत होने से होता है और फिर ब्रज में व्यतीत किए गए दिनों की मधुर स्मृति में कृष्ण अधिकाधिक लीन होते जाते हैं। यही तन्मयता और अटूट प्रेम का भाव ब्रज की गोपियों में उद्धव को परिलक्षित होता है और तभी वे प्रेम की गरिमा के समक्ष नतमस्तक हो

उठते हैं। कृष्ण और गोपियों के प्रेम को समान भूमि पर प्रतिष्ठित करने में निश्चय ही रत्नाकरजी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

प्रश्न १८—उद्धवशतक के आधार पर रत्नाकर जी के प्रकृति-चित्रण की विशेषताएँ बताइए।

उत्तर—प्रकृति आदि काल से ही मानव की सहचरी रही है। प्रकृति के उन्मुक्त प्राँगण में ही मानव ने नयनोन्मीलन किया और उसके अन्न-जल से अपने शरीर का पोषण किया है। प्रकृति की सौंदर्य सुषमा को देख वह रीझा है और यहीं तक नहीं प्रकृति में उसे अपने जैसा हृदय का स्पन्दन भी सुनाई दिया है। मानव को जितनी प्रेरणा प्रकृति के मनोमुग्धकारी स्वरूप से मिली है उतनी संभवतः किसी अन्य वस्तु से नहीं मिली। अपने काव्य में भी वह प्रकृति का विविध रूपों में अंकन करता रहा है। कभी आलम्बन रूप में, कभी उद्दीपन रूप में, कभी अलंकार विधान के रूप में, कभी मानवीकरण रूप में तो कभी उपदेशात्मक रूप में उसने प्रकृति-चित्रण किया है।

रत्नाकर के उद्धवशतक में प्रकृत्ति का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है। उद्धवशतक एक विरह काव्य है और इसमें प्रकृति भी विरहोद्दीपन के लिए प्रयुक्त हुई है। विरहोद्दीपन के लिए काव्य में प्रकृति-चित्रण के दो स्वरूप प्रचलित हैं—(क) संस्कृत साहित्य की रूढ़िबद्ध षट्ऋतु वर्णन की परम्परा, (ख) अपभ्रंश साहित्य तथा जनगीतों की बारहमासा पद्धति। उद्धवशतक में प्रथम स्वरूप—षटऋतु वर्णन दृष्टिगत होता है। उद्धवशतक के प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में डा० विश्वम्भरनाथ भट्ट ने लिखा है "**उद्धवशतक जैसे छोटे से काव्य में भी रत्नाकरजी ऋतु-वर्णन करना नहीं भूले हैं। यहाँ छः ऋतुओं पर केवल छः कवित्त लिखकर उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट प्रमाण उपस्थित कर दिया है कि जिस प्रकार वे किसी विषय को विस्तार से लिखकर प्रभावपूर्ण बना सकते थे, उसी प्रकार विषय के संक्षिप्त संश्लिष्ट वर्णन में भी कुशल थे। केवल छः कवित्तों में छः ऋतुओं का यह प्रभावशाली वर्णन रत्नाकरजी की प्रतिभा और कला का उत्कृष्ट साक्षी है।**"[1]

उद्धवशतक में प्रकृति वियोग-विदग्ध गोपिकाओं की अन्तर्बाह्य दशा का प्रतिबिम्ब उपस्थित करने के लिए आई है। छः ऋतुओं में परिवर्तित होने

---

१. **रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला, पृष्ठ ३४५।**

वाली दशाएँ विरहिणी ब्रजाङ्गनाओं की दशा पर आरोपित की गई हैं और इस प्रकार गोपियों की विरह-व्यथा की मार्मिक व्यंजना हुई है। उदाहरण के लिए वसन्त ऋतु का निम्न वर्णन देखा जा सकता है—

"विकसित विपिन बसन्तकावली कौ रंग
लखियत गोपिनि के अंग पियराने में।
बौरे वृन्द लसत रसाल-वर बारिनि के
पिक की पुकार है चबाव उमगाने में॥
होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ
बैहरि बतास लै उसास अधिकाने में।
काम-विधि नाम की कला में मीन मेष कहा
ऊधौ नित बसत बसन्त बरसाने में॥"

बसन्त ऋतु में सम्पूर्ण वनस्थली पीली-पीली सरसों से आच्छादित है और इधर गोपियाँ भी कृष्ण के विरह में पीली पड़ गई हैं। आम्र वृक्षों में बौर आ गए हैं तथा कोयल कुहक रही है और इधर श्रेष्ठ तथा रसवन्ती बालाओं के समूह में कृष्ण चर्चा चलती है। वृक्षों के पत्ते झड़ रहे हैं, तरुणियों की लज्जा दूर हो रही है। विधाता की सृष्टि में तो मीन, मेष राशि में ही बसन्त आता है किन्तु कामदेव की सृष्टि में सदैव बसन्त रहता है। श्लेष की पुरिपुष्ट साँगरूपक अलंकार के द्वारा कवि ने गोपियों की विरह दशा का बसन्त ऋतु से सामञ्जस्य प्रदर्शित किया है।

ग्रीष्म ऋतु का भी गोपियों की विरह दशा से यथेष्ट सादृश्य है। प्रकृति का उत्तापकारी रूप देखिए—

"ठाम-ठाम जीवन-विहीन दीन दीसे सबै
चलति चबाई वात तापत घनी रहै।"

× × ×

"जार्‌यौ-अंग अब तौ विधाता है इहाँ कौ भयौ
तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै॥"

संयोग के दिनों में प्रकृति के जो उपादान प्रेमी हृदयों में उल्लास की सृष्टि करते हैं, वियोगावस्था में वे ही कष्टकर हो जाते हैं। वर्षा ऋतु की सौन्दर्य सुषमा भी गोपियों को कष्टदायक प्रतीत होती है—

"रहति सदाई हरियाई हिय-धायनि में
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पीर पूरित पुकारति है
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है ॥
लागी रही नैननि सों नीर की झरी औ
उठै चित में चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनश्याम धाम धाम ब्रजमण्डल में
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है ॥"

वर्षा ऋतु में सर्वत्र हरीतिमा छा जाती है। गोपियों के हृदय के घाव भी सदैव हरे-भरे रहते हैं। वर्षा ऋतु में पुरवाई चलती है, गोपियाँ ऊर्ध्व उच्छ्वास लेती हैं। वर्षाकाल में पपीहा 'पी पी' पुकारता है, गोपियाँ भी उसी की भाँति प्रियतम कृष्ण का नाम रटती हैं। वर्षा-ऋतु में जल की झड़ी लगती है, गोपियों के नेत्रों से भी अविरत अश्रु-वृष्टि होती है। वर्षा काल में बिजली चमकती है और गोपियों का हृदय पीड़ा से कसकता है। वर्षा तभी होती है जब आकाश काले बादलों से आच्छन्न हो जाता है, किन्तु ब्रज में तो घनश्याम अर्थात् कृष्ण के बिना ही सदैव वर्षा ऋतु की बहार बसी रहती है। वर्षा ऋतु के वर्णन से गोपियों की विरह व्यथा की अत्यन्त सुन्दर व्यंजना हुई है। ब्रजाङ्गनाओं के कजरारे नयनों की रिमझिम, अन्तर की पीड़ा और वेदनायुक्त कातर पुकार का कवि ने वर्षा ऋतु के विभिन्न उपादानों में अत्यन्त सुन्दर आरोप किया है।

शरद ऋतु का कष्टकारी स्वरूप भी गोपियों की विरह दशा से पूर्ण साम्य रखता है—

"जात घनश्याम के ललात दृग-कंज पाँति
घेरी दिख-साध-भौंर-भीर की अनी रहै।
कहै रतनाकर विरह-विधु बाम भयौ
चन्द्रहास ताने घात घालत घनी रहै ॥
सीत-घाम-बरषा-विचार बिनु आने ब्रज
पंचबान-बाननि की उमड़ ठनी रहै।
काम बिधना सौं लहि फरद दवामी सदा
दरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहै ॥"

शरदऋतु के विभिन्न उपकरणों को कवि ने अत्यन्त कौशल से गोपियों की विरह-दशा पर घटित किया है। वर्षा ऋतु के जाने पर शरद ऋतु आती है, कमल खिल जाते हैं, कमलों पर भ्रमरों का समूह मँडराने लगता है, चन्द्रमा की चन्द्रिका का प्रसार होता है और कामदेव का प्रभाव बढ़ जाता है। कृष्ण के प्रवास से गोपियों के कमल दृग खुले रहे हैं और उनमें प्रियतम-दर्शनाभिलाषा के भ्रमर मंडराया करते हैं, विरह विधु की कष्टकर चाँदनी फैली रहती है तथा काम पीड़ा विशेषरूप से त्रस्त करती है। इस प्रकार शरद ऋतु के कष्ट गोपियों की विरह-दशा पर अत्यन्त सुन्दरता से घटित होते हैं।

हेमन्त ऋतु पर भी गोपियाँ अपने हृदय की दशा का आरोप करती हैं—

"रीते परे सकल निषंग कुसुमायुध के
दूर दुरे कान्ह पै न ताते चले चारौ है।
कहै रतनाकर विहाइ बर मानस कौ
लीन्यौ है हुलास-हंस वास दूरिवारौ है॥
पाला परै आस पै न भावत बतास बारि
जात कुम्हिलात हियौ कमल हमारौ है।
षट ऋतु ह्वै है कहूँ अनत दिगंतनि में
इत तौ हिमन्त कौ निरन्तर पसारौ है॥"

इस कवित्त में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत का अत्यन्त सुन्दर समन्वय है। हेमन्त ऋतु के सामान्य व्यापार कवि ने गोपियों की विरह-दशा पर घटित होते दिखाए हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में प्रकृति का उद्दीपन रूप में सुन्दर चित्रण किया है। यह वर्णन सेनापति बिहारी, पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों से प्रभावित है। किन्तु रत्नाकरजी ने कहीं भी पूर्ववर्ती कवियों का अन्धानुकरण नहीं किया है। उनकी अपनी सूझ-बूझ और कल्पना विधान की मौलिकता यहाँ भी प्रदर्शित हुई है।

प्रश्न १९—**"भक्तों की अपेक्षा रत्नाकर कम रसमय किन्तु अधिक सूक्ति प्रिय हैं। रीति-कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान, अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं।"** उद्धवशतक को दृष्टि में रखते हुए इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए।

उत्तर—आधुनिक युग में जन्म लेकर भी रत्नाकरजी मुख्य रूप से मध्यकालीन कवि थे। खड़ी बोली के वर्तमान युग में वे ब्रजभाषा की मधुरिमा लेकर अवतरित हुए थे। भावों की दृष्टि से भी वे मध्ययुगीन प्रवृत्तियों से अनुप्राणित थे। भक्तिकालीन भावुकता तथा रीतिकालीन चमत्कारप्रियता उनमें थी। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि वे भक्ति और रीतियुगीन कवियों की अनुकृति मात्र थे। इन भावनाओं को उन्होंने ग्रहण अवश्य किया है किन्तु अपने व्यक्तित्व से संश्लिष्ट करके ही। हम उन्हें भक्तों और श्रृंगारियों के बीच की कड़ी मान सकते हैं किन्तु उनकी कविता अलंकार-भूषिता होते हुए भी भक्ति-भावापन्न है तथा भक्ति-पूरिता होते हुए भी अलंकारमयी है। भक्त कवि केवल भक्त थे और रीति कवि केवल चमत्कारवादी। रत्नाकरजी इन दोनों विशेषताओं से संयुक्त थे। जैसा कि आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने सत्य ही लिखा है, **"भक्तों की अपेक्षा रत्नाकर कम रसमय, किन्तु अधिक सूक्तिप्रिय हैं। रीतिकवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान्, अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं।"**[1] उद्धवशतक का एक सम्यक अवलोकन इस कथन की पुष्टि करेगा।

रत्नाकरजी ने अपने उद्धवशतक में जिस भाव-प्रवणता तथा भावनामयता को अपनाया है वह भक्त कवियों की विशेषता है। परन्तु अन्तर यह है कि भक्तिकाल के अधिकांश कवि पहले भक्त थे तदनन्तर कवि और रत्नाकर जी कवि पहले हैं भक्त बाद में। सूर तुलसी आदि भक्त कवियों में अपने आराध्य के चरण-पंकजों में अनन्य श्रद्धा भाव से भक्ति-नैवेद्य समर्पण करने की भावना दिखाई देती है। हृदय के दैन्य, ग्लानि आदि भावों का मार्मिक स्वरों में उद्घाटन करने की इनकी प्रवृत्ति थी। अपनी भक्ति भावना को सरस रूप में अभिव्यक्त करने के लिए ही उन्होंने काव्य का प्रश्रय ग्रहण किया था किन्तु रत्नाकरजी का उद्देश्य काव्य-सृजन था और कविता द्वारा उन्होंने अपने भक्ति-भावों को भी प्रकट किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, **"रत्नाकरजी ने सूरदास, नन्ददास आदि के भावों और उक्तियों का आधार लिया है। इसका यह आशय नहीं कि रत्नाकरजी और उपर्युक्त कवियों में**

---

१. **हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० ३०।**

कोई अन्तर नहीं है ।"[1] अन्तर बहुत बड़ा है और यह है कि भक्त कवियों की रसमग्नता ही उनका सर्वस्व थी जब कि रत्नाकर उनसे कम रसमय और अधिक सूक्तिप्रिय थे । उक्ति-वैचित्र्य, अलंकार-विधान, भाषा-सौष्ठव, छन्द-योजना तथा पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति ऐसी विशेषताएँ हैं जो रत्नाकर को भक्त कवियों की अपेक्षा रीति कवियों के अधिक निकट पहुँचा देती हैं ।

रत्नाकरजी के उद्धवशतक का वर्ण्य-विषय कोई नया विषय नहीं है। सूर की लेखनी ने इसे हिन्दी-साहित्य में युगों-युगों के लिए अमर कर दिया है । भ्रमरगीत के प्रणेता के रूप में सूर की कीर्ति-कौमुदी का अक्षय आलोक कभी मन्द न होगा । नन्ददास तथा अन्य अष्टछाप के कवियों ने भी इस पर अपनी लेखनी चलाई है । अनन्य रामभक्त तुलसी ने भी इस विषय पर कुछ पदों की रचना की है । निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन—विषय को लेकर चलने वाला भ्रमरगीत प्रसंग भक्त कवियों के लिए गहरी उत्सुकता और रुचि का विषय रहा है । इसी विषय को रत्नाकरजी ने भी उद्धवशतक का वर्ण्य-विषय बनाया है । वैष्णव विचारधारा से युक्त और मध्ययुगीन काव्य-कला की रम्य विभूति में आकण्ठ-मग्न रत्नाकर ने इस काव्य में सूर और नन्ददास आदि के भावों का ही गान किया है । परन्तु भक्ति-भावना के साथ-साथ उक्ति-वैचित्र्य और अलंकार-प्रियता की ओर भी उन्होंने कम ध्यान नहीं दिया । भक्त-कवियों में भक्ति की तन्मयता का प्राचुर्य है । सूर, तुलसी, मीरा, रसखान आदि में जैसी भाव-विभोर होकर भक्ति-भावना को व्यक्त करने की विशेषता मिलती है वह रत्नाकरजी में नहीं है । उदाहरण के लिए मीरा की तन्मयता देखिए—

"बसो मेरे नैननि में नन्दलाल ।
मोहिनी मूरति सांवरि सूरत नैना बने बिसाल ॥"

तथा—

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति सोई ॥"

---

१. **हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी**—पृ० २१ ।

रसखान भी अपने आराध्य के ध्यान में विभोर होते हुए कहते हैं—

"या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवों निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं।
नैननि सों रसखान जबै ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं।
केतिक ही कलधौत के धाम करील के कुँजन ऊपर वारौं॥"

तथा—

"मानुष हौं तौ वही रसखान बसै ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।"

तुलसी अपने दैन्य और प्रभु की गरिमा का उद्‌घाटन इन स्वरों में करते हैं—

"राम सों बड़ो है कौन मोसों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो ?"

सूर को भी अपने आराध्य से क्षण-मात्र का पार्थक्य स्वीकार नहीं। इधर-उधर से भटककर उनका मन पुनः प्रभु के चरणों में ही झुक जाता है—

"मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भक्त कवियों की रसमयता ही उनका सर्वस्व थी। अपने अन्तर के भक्ति-भावों को ही उन्होंने काव्य के परिधान में वर्णित किया था। काव्य-सृजन की ओर उनका ध्यान न था। उद्धवशतक में रत्नाकर जी ने भी भक्ति-भावना का गायन किया है पर भक्त-कवियों जैसी तन्मयता और रसमयता उसमें नहीं है। रत्नाकरजी का ध्यान जितना भावों की ओर रहा है उतना ही उनकी अभिव्यक्ति-शैली पर भी रहा है। उद्धव-शतक का मंगलाचरण ही श्लेष से पुष्ट साँगरूपक का सुन्दर निदर्शक है—

"जासौं जाति विषय-विषाद की बिवाई बेगि
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबौ करै।
कहै रतनाकर कबित्त-बर-व्यंजन मैं
जासौं स्वाद सौगुनों रुचिर रहिबौ करै॥
जासौं जोति जागति अनूप मन-मन्दिर में
जड़ता - विषय - तम-तोम दहिबौ करै।
जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौं सो सनेह लहिबौ करै॥"

कृष्ण ब्रज की याद में विह्वल और व्याकुल हैं। उनकी विह्वलता को कवि ने काँटा निकालने के साँगरूपक द्वारा व्यक्त किया है—

"ऊधौ ब्रज-बास के विलासनि कौ ध्यान धँस्यौ
निसि दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है।"

कृष्ण की विह्वलता देख उद्धव उन्हें समझाते हैं। हाथी पकड़ने की रीति का आश्रय लेकर कवि ने साँगरूपक की योजना की है। यमक, अनुप्रास और परिकर अलंकार भी इसमें विद्यमान हैं। उक्ति-वैचित्य की छटा देखने योग्य है। उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि ब्रजवासी स्वार्थ वश आपको मोहासक्त करना चाहते हैं पर आप इनके प्रपंचों से सावधान रहें—

"वारनि कितेक तुम्हें बारन कितेक करैं
बारन उवारन ह्वै बारन वनौ नहीं।"

उद्धव जब ज्ञान और योग का उपदेश ब्रज पहुँचकर गोपियों को देते हैं उस समय गोपियाँ कहती हैं कि वियोगिनी नारियों को प्रिय-मिलन का समाचार मिलना चाहिए था। यह योगोपदेश विरह को दूर करने का उपाय नहीं है। इस बात को कवि ने श्लेष से पुष्ट सांगरूपक की योजना द्वारा प्रस्तुत किया है। प्रत्येक शब्द कवि के पाण्डित्य का परिचायक है—

"ह्याँ तौ बिषम-ज्वर बियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई है।"

कहकर गोपियाँ अपने वाक्चातुर्य का परिचय देती हैं। गोपियों का अनन्य और अविचल प्रेम उद्धव को भी ज्ञानी से प्रेमी बना देता है और वे प्रेमी बन-कर लौटते हैं। इस बात को रत्नाकर जी ने सूक्तियों के माध्यम से कहा है—

"प्रेम-रस रुचिर विराग-तूमड़ी मैं पूरि
ज्ञान-गूदड़ी में अनुराग सौं रतन लै।"

उद्धव के ज्ञान का खण्डन करते समय गोपियाँ बड़ी ही सुन्दर सूक्तियाँ कहती हैं—

"जैहै बनि बिगरि न वारिधिता वारिधि की
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।"

गोपियों की यह उक्ति कितनी सुन्दर है ? जैसे सागर में अगर एक बूँद जल मिला दिया जाए तो सागर की सागरता में कोई अन्तर न आयेगा, किन्तु

बूँद का अस्तित्व नष्ट हो जायेगा इसी प्रकार आत्मा को परमात्मा में लीन कर देने से आत्मा का अस्तित्व न रहेगा । उक्ति निःसन्देह अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है ।

इसी प्रकार की एक अन्य सुन्दर उक्ति देखिए—

"ज्यों-ज्यों होत जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान पूरि
त्यों-त्यों धंसे जात मन-मुकुर हमारे में ।"

गोपियों के कहने का आशय यह है कि कृष्ण हमसे दूर हो जाने से हमारे हृदय से नहीं निकल गए हैं अपितु हृदय में और समा गए हैं। जैसे दर्पण से दूर हटने वाले व्यक्ति का प्रतिबिम्ब दर्पण में अति गहरा अंकित होता जाता है वैसे ही कृष्ण दूर हटकर हृदय के और निकट आ गए हैं; सच है, वियोग से प्रेम और उद्दीप्त होता है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकर भक्तों की अपेक्षा कम रसमय किन्तु अधिक सूक्तिप्रिय हैं । इसी प्रकार रीति कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान, अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं । रीतियुगीन कवियों का लक्ष्य काव्य-रचना न करके काव्याङ्गों का निरूपण करना था । रस-विवेचन, अलंकार-निरूपण, नायिका-भेद आदि के चित्रण की ओर उनकी रुचि थी । फलस्वरूप कला-पक्ष की ओर तो उनका ध्यान रहता था किन्तु भावों के सौन्दर्य की ओर से वे पूर्ण निर्लिप्त थे । केशवदास ऐसे ही रीतिकालीन कवि थे, जिन्हें **'कठिन काव्य का प्रेत'** कहा जाता है । बिहारी, मतिराम, आदि अन्य रीतियुगीन कवियों का ध्यान भी काव्य के अन्तरंग की अपेक्षा बहिरंग पर ही अधिक रहा था । रीति-कवियों के भाषा-सौष्ठव, अलंकार नियोजन, छन्दों की कारीगरी आदि को रत्नाकरजी ने भी अपनाया परन्तु भावना की अवहेलना करके नहीं । अलंकारों का उन्होंने उसी सीमा तक प्रयोग किया जहाँ तक वे भावोत्कर्ष में सहायक हुए । रत्नाकर का उद्देश्य न तो रीतिग्रन्थ लिखना था और न काव्याङ्गों का निरूपण करना । वे कवि थे और उन्होंने काव्य के बहिरंग पर उतना ही ध्यान दिया जितना उचित था। हृदय के भावों की अवहेलना करने वाले कला-सौन्दर्य की उन्होंने उपेक्षा की ।

रीति-कवियों ने काव्य के बहिरंग को सज्जित करने के लिए उसके आभ्यन्तर पक्ष की उपेक्षा की है उदाहरण के लिए केशव की निम्न पंक्तियाँ

देखी जा सकती है जिनमें पाँडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने भावों का हनन किया है—

"सब जात फटी दुख की दुपटी कपटी न रहैं जहँ एक घटी।
निघटी रुचि मीचु घटी हू घटी जग जीव जतीन की छूटि तटी।
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी, निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुँ ओरनि नाचति मुक्ति नटी, गुण धूरजटी बन पंचवटी॥"

इस पद में यमक, अनुप्रास, अर्थ-श्लेष और रूपक अलंकार प्रयुक्त हैं। अलंकारों की चकाचौंध में अर्थ-सौन्दर्य गौण होकर रह गया है।

बिहारी का पाण्डित्य भी निम्न पंक्तियों में प्रदर्शित हुआ है जो भाव-सौन्दर्य की अपेक्षा कला-वैभव का ही निदर्शक है—

"अंग-अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह
दिया बढ़ाए हूँ रहै बड़ौ उजेरौ गेह।"

बिहारी ने नायिका के शरीर को '**दीप शिखा**' के समान बताया है जिसके आभूषण ऐसे झिलमिलाते हैं कि दिया बढ़ा दिया जाने पर भी घर में प्रकाश बना रहता है। सम्भवतः घर के स्वामी को न तो तेल खरीदना पड़ता होगा और न पड़ोसियों को ही पढ़ने-पढ़ाने के लिए प्रकाश आदि की व्यवस्था में पैसे खर्च करने पड़ते होंगे। चमत्कार-प्रदर्शन ही इस दोहे में है भाव व्यंजना नहीं।

रत्नाकर में कला-प्रियता तो है परन्तु उन्होंने कला-प्रियता का भाव-प्रवणता के साथ मणि-काँचन संयोग उपस्थित किया है। उनके उद्धवशतक में न तो कोरी भावुकता है और न कोरा चमत्कार। उद्धवशतक की कोमलकान्त पदावली और भावों का स्निग्ध सौन्दर्य हमारे अन्तर को अपने आकर्षण-पाश में आबद्ध किए बिना नहीं रहता। उदाहरण के लिए संगीत की मधुरिमा और भावों की आभ्यन्तरीण सुषमा से परिप्लावित निम्न पंक्तियाँ देखिए—

(क) "फिरत हुते जु जिन कुंजन में आठौ जाम
नैननि में अब सोई कुंज फिरिबौ करैं।

(ख) उझकि-उझकि पद कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकौ लिख्यौ है कहा हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं॥"

(ग) सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ ।"

इस प्रकार के उदाहरण उद्धवशतक में भरे पड़े हैं जिनमें भावों का मार्मिक सौंदर्य और संगीत का अक्षय स्रोत समाहित है । रीति कवियों की अपेक्षा रत्नाकर में भाव-प्रवणता तथा शुद्ध तथा गहन संगीत का अभ्यासी होने की सामर्थ्य कहीं अधिक थी ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकरजी ने अपनी काव्य-कला का शृङ्गार भक्ति और रीति युग के श्रेष्ठ उपकरणों का चयन कर किया था । भक्त कवियों से वे कम भावुक थे और रीति कवियों से कम चमत्कारप्रिय । परन्तु भावुकता और चमत्कार दोनों का मणिकाँचन संयोग उनके उद्धवशतक में विद्यमान है । निःसन्देह वे **भक्तों की अपेक्षा कम रसमय पर अधिक सूक्तिप्रिय और रीति कवियों की अपेक्षा अधिक भावनावान तथा शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं ।**

प्रश्न २०—"रत्नाकरजी के जीवन व्यापी शृङ्गार में छिपी हुई दुःख की छाया ही मानों 'उद्धवशतक' का केन्द्र पाकर साकार हो गई है ।" इस कथन की विवेचना कीजिये ।

उत्तर—'उद्धवशतक' रत्नाकरजी की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें विप्रलम्भ शृङ्गार का सुन्दर नियोजन हुआ है। शृङ्गार रस अपनी व्यापकता और सरसता के कारण साहित्य में रसराज की उपाधि से विभूषित हुआ है। इसके संयोग और वियोग पक्षों में मार्मिकता, कोमलता और अनुभूतियों की गंभीरता की दृष्टि से वियोग पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी विप्रलंभ शृङ्गार का सुन्दर प्रस्फुटन उद्धवशतक में हुआ है । डा० श्यामसुन्दर दास ने ठीक ही लिखा है, "**रत्नाकरजी की इससे अधिक तन्मयी काव्य-साधना दूसरी नहीं मिलती है ।**" कवि ने अत्यन्त तन्मय भाव से इस काव्य-ग्रन्थ का सृजन किया है। इस सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि, "**रत्नाकरजी के जीवन-व्यापी शृङ्गार में छिपी हुई दुःख की छाया ही मानों उद्धवशतक का केन्द्र पाकर साकार हो गई है ।**"

रत्नाकरजी का जन्म काशी के एक संपन्न परिवार में हुआ था । उनके परदादा सेठ तुलाराम अतुल सम्पत्ति के स्वामी थे और राजसी ठाठ-वाट से

जीवन व्यतीत करते थे। इसी प्रवृत्ति का प्रभाव रत्नाकरजी पर भी पड़ा था। रत्नाकरजी का रहन-सहन पुराने रईसों की भाँति था। सिर में चमेली का तेल लगाना, नेत्रों में सुरमे की लकीर डालना और वस्त्रों को इत्र की सुरभि से सुवासित रखना उनका शौक था। अयोध्या के राजदरवार में उन्होंने पर्याप्त काल तक महाराजा और उनकी मृत्यु के उपरान्त महारानी के प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर कार्य किया था। रत्नाकरजी का जीवन लक्ष्मी की गोद में व्यतीत हुआ था। किन्तु इस वैभव के बीच एक दुःख की छाया भी छिपी हुई थी और वह थी गार्हस्थ्य जीवन का वेदना जनित होना। रत्नाकरजी को अपने जीवन में प्रणय सुख न मिल सका था। दो बार विवाह हुआ परन्तु दोनों ही बार पत्नी काल का ग्रास हो गई। अपनी जीवन संगिनियों के इस विछोह से कवि का हृदय पीड़ा से चीत्कार कर उठा। अन्तरतम प्रिय-वियोग-जनित अन्तर्व्यथा से पूर्ण हो उठा। हृदय की यह पीड़ा और वेदना यत्र-तत्र उनके काव्य में मुखरित हुए बिना न रह सकी। एक कसक, एक पीड़ा, एक टीस उनके हृदय में निरन्तर विद्यमान रही और जब वह हृदय में न समा सकी तो स्वर-लहरियों में मुखर हो उठी। कवि की सर्वश्रेष्ठ कृति उद्धवशतक इसका प्रमाण है। इस विप्रलम्भ श्रृङ्गार-प्रधान रचना में दुःख की एक छाया आदि से अन्त तक समाई हुई है और पाठकों के हृदय को स्पर्श किये बिना नहीं रहती है।

व्यक्तिगत जीवन में प्रिय-वियोग-जनित सन्ताप का अनुभव करने के कारण रत्नाकरजी यह भली-भाँति जानते थे कि वियोग क्या वस्तु है? उसमें प्रेमी हृदय की क्या दशा होती है? यही कारण है कि उद्धवशतक में व्यक्त अनुभूतियों में सच्चाई निहित है और वे हमारे हृदय को प्रभावित कर देती है। स्वाभाविकता, मार्मिकता, प्रभविष्णुता और संवेदनीयता की दृष्टि से उद्धवशतक में व्यक्त भावनाएँ अभूतपूर्व एवं अनूठी हैं। गम्भीर भावों की मर्मस्पर्शी व्यंजना अत्यन्त प्रभावशाली है। प्रेम-पात्र की विलगता प्रेमी हृदय को वेदना के जिस अगाध पारावार में डुबो देती है, उसका अत्यन्त मार्मिक अभिव्यंजन इस काव्य में हुआ है।

उद्धवशतक के विप्रलम्भ श्रृङ्गार की विशेषता **तुल्यानुराग** है। तुल्यानुराग की समतल भाव-भूमि पर कृष्ण तथा गोपियों की विरह-कालिन्दी कल-कल निनाद करती हुई प्रवाहित हुई है। कृष्ण के वियोग में जितनी अधिक विदग्ध

एवं व्याकुल ब्रज की गोपियाँ हैं। उतना ही ब्रजवासियों के विरह में कृष्ण भी संतप्त है। यमुना में स्नान करते समय मुरझाये हुए कमल को देख कृष्ण को अपनी कमलमुखी प्रेयसी राधा याद आती है और वह गये थे यमुना स्नान करने पर लौटते हैं नेह की नदी में नहाकर। उनकी विरह वेदना शत- सहस्त्र-मुखी होकर प्रवाहित होने लगती है और वे अपने उमड़ते हुए आँसुओं को न रोकने की बात अपने अनन्य सखा उद्धव से कहते हैं—

"हा ! हा ! इन्हें रौकन कौं टोक न लगावौ तुम।"

कृष्ण के आँसू और हिचकियाँ ही उद्धव को उनके हृदय के ब्रज वियोग से उत्पन्न संताप से अवगत कराते हैं—

"नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सों
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।"

जो व्यथा और वेदना कृष्ण के हृदय में है वही ब्रज की गोपिकाओं के हृदय में है। उन्होंने अपने मन-मन्दिर में कृष्ण को आराध्य बनाकर अधीष्ठित किया है परन्तु कृष्ण उन्हें वियोग ज्वाला में दग्ध होने के लिए छोड़कर मथुरा चले गये। एक-एक पल कृष्ण की राह में पलक-पांवड़े बिछाकर व्यतीत कर रही थीं ब्रजाङ्गनाएँ, तभी कृष्ण के संदेशवाहक बनकर उद्धव आते हैं। गोपियों के मन में यह सोचकर आशा के सुनहरे स्वप्न उदित होते हैं कि कृष्ण ने प्रेम संदेश भेजा होगा परन्तु उद्धव ज्ञान और योग का उपदेश देकर उनकी आशाओं पर तुषारापात कर देते हैं। कभी तो वे अपना हृदय थामकर कृष्ण के वापिस आने के विषय में पूछती हैं—

"ऊधौ कहौ सूधौ सो सनेस पहिलैं तौ यह
प्यारे परदेश तैं कबै धौं पग पारिहैं।"

तो कभी उद्धव की योग-गाथा सुनते-सुनते उन पर बरस पड़ती है—

"चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ
कहौ न कहानी जौ बिबिध कहि आए हौ।"

और कभी अपनी वियोग-पीड़ा को योग से भी अधिक कष्टकर बताते हुए कहती है—

"करिकै विचार ऊधी सूधौ मन माँहि लखौ
जोगी सौं वियोग-भोग-भोगी कहा कम हैं।"

कृष्ण के विरह में व्यतीत किया गया एक पल तक उन्हें नरक-यातना से अधिक प्रतीत होता है—

"छिन जिन झेली कान्ह-विरह-बलाय तिन्हें
नरक निकाय की धरक धरिबौ कहा।"

उद्धव से गोपियाँ अनुरोध करती हैं कि यह योग-चर्चा राधा के पास तक न पहुँचाना, नहीं तो उसके नेत्रों से ऐसी अश्रु-वृष्टि होगी कि प्रलय हो जायेगी—

"फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना।"

सचमुच रत्नाकर का विरही हृदय ही 'उद्धवशतक' में कृष्ण और गोपियों के विरहोद्गारों के माध्यम से फूट निकला है। विरह का ऐसा मार्मिक चित्र वही कर सकता था जिसने इस वेदना को भोगा हो। उद्धवशतक का विरह वर्णन इस बात की पुष्टि करता है कि ग्रन्थकार की अनुभूतियों में सत्यता है। कवि का हृदय जब भावों के उद्दाम ज्वार से घुमड़ने लगता है तभी श्रेष्ठ काव्य की सृष्टि होती है। ऐसा ही काव्य सहृदयों को आनन्द प्रदान करने में समर्थ होता है। जिस काव्य की सर्जना हृदय से न होकर बुद्धि से होती है उसके उक्ति-चमत्कार पर हम 'वाह ! वाह !' भले ही कर उठें पर हृदय पर स्थायी प्रभाव न पड़ेगा। उद्धवशतक की मार्मिक अनुभूतियाँ हृदय की अतल गहराइयों से निःसृत हुई हैं अतएव स्वाभाविकता एवं सजीवता से ओतप्रोत हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि रत्नाकरजी की भावनाएँ जब अत्यन्त गहन हुईं तभी 'उद्धवशतक' के माध्यम से उमड़-घुमड़ कर बरस उठीं। सजल अनुभूतियों की यह वारि धारा सहृदयों के अन्तःकरण को सिंचित किये बिना नहीं रहती। उद्धवशतक की वियोग-जनित उक्तियाँ अपनी मार्मिकता में बेजोड़ हैं। इनकी मार्मिकता, सजीवता और स्वाभाविकता को देखते हुए हम इस कथन से पूरी तरह सहमत हैं कि रत्नाकरजी के जीवन व्यापी शृङ्गार में छिपी हुई दुःख की छाया ही मानों उद्धवशतक का कलेवर पाकर साकार हो गई है।

प्रश्न २१—"एक पथ विशेष पर परिश्रमपूर्वक चलते-चलते रत्नाकर साहित्य में अपनी एक अलग लीक बना गए हैं।" इस कथन पर उद्धवशतक से उदाहरण देते हुए अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—रत्नाकरजी का आविर्भाव यद्यपि आधुनिक युग में हुआ किन्तु उनकी मनोवृत्ति मध्ययुगीन थी। अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने मध्ययुगीन वेश-भूषा और रहन-सहन को अपनाया था तथा कविता के क्षेत्र में मध्ययुगीन प्रवृत्तियाँ ग्रहण की थीं। अंग्रेजी में ऐसे लेखकों और कवियों को 'क्लेसिक' कवि कहा जाता है जो प्राचीन वातावरण को पसंद करते तथा प्राचीन शैली को अपनाते हैं। खड़ी बोली के इस आधुनिक युग में तथा विज्ञान और बौद्धिकता के इस युग में रत्नाकरजी ऐसे कवि हुए हैं जो काव्य के भाव पक्ष की दृष्टि से भक्तिकालीन और कलापक्ष की दृष्टि से रीतिकालीन थे। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने इस संबंध में लिखा है "यदि आधुनिक हिन्दी का कोई कवि प्राचीन पंथ पर चलने का साहस कर सफल मनोरथ हो सका है तो वह रत्नाकरजी थे। रत्नाकरजी की विशेषता लीक पर ही चलने की थी। यदि अंग्रेजी के इस अर्थ पूर्ण शब्द को उधार लेना अनुचित न हो तो हम कह सकते हैं कि रत्नाकरजी 'मेथ्यू आर्नल्ड' की भाँति हिन्दी के अन्तिम 'क्लेसिक' कवि थे।"[1]

रत्नाकरजी आज के नवीनतावादी युग में प्राचीनता की तानें छेड़ते रहे। उन्होंने सूर और नंददास के वर्णित भाव ही पुनः हमारे सामने रखे। साहित्य के एक विगत किन्तु वैभवपूर्ण युग को पुनः हमारे नेत्रों के समक्ष मूर्तिमान किया। रत्नाकर जी ने उसी भावुकता को प्रदर्शित किया है जो सूर आदि भक्त कवियों में विद्यमान थी। इसके साथ ही उस कला निपुणता का परिचय दिया है जो रीतिकालीन कवियों की विशेषता थी। भक्तिकालीन भावुकता और रीति-कालीन चमत्कारप्रियता से उन्होंने अपनी कला का शृङ्गार किया था। खड़ी बोली के इस युग में उन्होंने ब्रजभाषा का प्राचीन माधुर्य प्रस्तुत कर काव्य-रसिकों को ब्रजभाषा की ओर आकृष्ट किया था। आधुनिक युग में जन्म लेकर भी उन्होंने आधुनिक कवियों के पथ का अवलम्बन ग्रहण किया। अपने लिए भक्ति-काल और रीति काल से उपकरणों का चयन कर उन्होंने एक पृथक मार्ग बनाया और अन्त तक उसी लीक पर चलते रहे। अपनी एक निश्चित लीक पर चलते-चलते वे साहित्य के इतिहास में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना गए हैं। अपने समकालीन साहित्यकारों में, जिन्होंने ब्रजभाषा को अपनाया था

---

१. **हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी**, पृ० २३।

रत्नाकर का स्थान सर्वोपरि है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रतिभा सम्पन्न कवि परन्तु उनकी प्रतिभा केवल कविता के क्षेत्र में ही सीमित न रहकर साहित्य विविध क्षेत्रों में वितरित हो गई थी। फलस्वरूप उनकी रचनाओं में विस्ता तो है पर उद्धवशतक जैसा गांभीर्य नहीं दिखाई देता। सत्यनारायण कविर भी प्रतिभा संपन्न थे किन्तु उनका जीवनसूर्य इतनी शीघ्र अस्त हो गया कि साहित्य क्षेत्र में अधिक आलोक न फैला सके। वियोगी हरि की 'वीर सतसई' दुलारेलाल भार्गव की 'दुलारे दोहावली' तथा रामेश्वर 'करुण' की 'कर सतसई' अच्छी रचनाएँ तो हैं पर रत्नाकर काव्य के स्तर की नहीं है। हरदयाल सिंह, 'रसाल', 'सरस' आदि की रचनाएँ भी भाव-गांभीर्य तथा 'कला नैपुण्य' की दृष्टि से उद्धवशतक से कहीं पीछे रह जाती हैं। निःसन्देह अप समकालीन कवियों में रत्नाकर का स्थान मूर्धन्य है। अपने पन्थ पर परिश्र पूर्वक चलते-चलते उन्होंने साहित्य में अपनी एक लीक बना दी है।

नास्तिकता के इस युग में रत्नाकर जी ने भक्ति का शंख फूंका और अप आराध्य की बंदना करते हुए आशा एवं विश्वास की प्राचीन रागिनी का ना किया। 'उद्धवशतक' का मंगलाचरण इसका प्रमाण है—

"जासौं जाति विषय-विषाद की बिवाई बेगि
चोप चिकनाई चित चारु गहिवौ करैं।

× × ×

जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल जन
रावरी कृपा सौं सो सनेह लहिबौ करैं।"

कहने का भाव यह है कि रत्नाकर जी ने आधुनिक काल की साम प्रवृत्तियों के विपरीत भक्तिकालीन विषय को अपनी कविता का वर्ण्य-वि बनाया। जैसी तन्मय और अनन्य भाव की भक्ति रत्नाकर की थी वह भक्त कवियों की याद दिलाती है। यद्यपि सूर आदि भक्त कवियों की अपे रत्नाकर कम रसमय और अधिक सूक्तिप्रिय थे पर उनकी उक्तियों में वही कही गई है जो भक्त कवि कह गए थे। उद्धवशतक की गोपियाँ कृष्ण-भ को किसी अवस्था में छोड़ने के लिए उद्यत नहीं। ज्ञान और योग से यदि मु भी मिलती हो तो वह भी उनके लिए हेय तथा तुच्छ है—

"मुक्ति मुकता को मोल-माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकीं।"

गोपियों की अनन्य और एकनिष्ठ भक्ति ज्ञानी उद्धव का भी हृदय-परिवर्तन कर देती है और वे भी भक्ति-पथ के पथिक बन जाते हैं। उद्धव का यह नवीन रूप देखिए—

"प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥"

रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में काव्य-कला के अन्तरंग के लिए भक्ति-काल की ओर दृष्टिपात किया तो बहिरंग के लिए रीतिकाल का दामन पकड़ा। अलंकार-विधान, छन्द-सौष्ठव, भाषा-माधुर्य, चमत्कारप्रियता आदि रीतियुगीन विशेषताएँ उद्धवशतक में मूर्तिमान हो उठी हैं। रत्नाकरजी का छन्द-विधान भी आधुनिक काल से भिन्न था।

उद्धवशतक का एक सम्यक पर्यावलोकन इस तथ्य की पुष्टि करता है। कि रत्नाकरजी अपनी एक निश्चित लीक पर चलने वाले कवि थे। डा० विश्वम्भरनाथ भट्ट ने सत्य ही लिखा है, कि "रीतिकालीन विशेषताओं के अतिरिक्त उनकी कला-सर्जना में भक्तिकालीन वैष्णव कवियों की भावुकता भी विद्यमान है और वर्तमान युग की बौद्धिकता भी समुपन्यस्त है।......अथक परिश्रम, अक्लान्त चित्त, उर्वर मस्तिष्क, भावुक हृदय और आत्मप्रज्ञा द्वारा अतीत को वर्तमान से सम्पृक्त करके उसे पुनः मूर्तिमान करने का उन्होंने जो प्रयास किया है वह सर्वथा स्तुत्य है और यही उनकी कला का साफल्य है। इस दृष्टि से रत्नाकर जी ब्रजभाषा-काव्य के अंन्तिम 'क्लासिक कवि हैं।"[1]

ब्रजभाषा का माधुर्य उद्धवशतक के इस छन्द में द्रष्टव्य है—

"कान्ह हूँ सौं आन ही विधान करिबै कौं ब्रह्म
मधुपुरियानि की चपल कंखियाँ चहै।
कहै रतनाकर हँसै कै कहौ रोवैं अब
गगन अथाह थाह लेने भखियाँ चहैं॥

---

१. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला, पृ० ३८२।

अगुन सगुन फन्द बन्द निरवारन कौं
धारन कौं न्याय की नुकीली नखियाँ चहैं।
मोर-पंखियाँ कौ मोर वारौ चारु चाहन कौं
ऊधौ अंखियाँ चहैं न मोर-पंखियाँ चहैं ।।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकरजी व्रजभाषा-काव्य के अन्तिम महान कवि थे। एक पथ विशेष पर—मध्ययुगीन पथ पर—परिश्रम पूर्वक चलते-चलते वे साहित्य में अपनी एक अलग लीक बना गए हैं। निःसंदेह वे व्रजभाषा काव्य के अन्तिम 'क्लासिक' कवि हैं। आधुनिक युग में प्राचीनता के अमर गायक।

प्रश्न २२—"रत्नाकरजी को भक्ति और रीतिकाल के बीच कड़ी कहा जाता है।" उद्धवशतक के आधार पर इस मत की सार्थकता सिद्ध कीजिये।

अथवा

प्रश्न २३—रचनाकाल के अतिरिक्त क्या कुछ और भी तत्व रत्नाकर के काव्य में मिलते हैं जिसके स्थान पर उन्हें आधुनिक कवियों की कोटि में स्थान दिया जा सके ? बर्ण्यवस्तु और रचना-शैली की दृष्टि से उन्हें हिन्दी काव्य की किन प्रवृत्तियों से प्रभावित मानना ठीक होगा ?

अथवा

प्रश्न २४—उद्धव-शतक में भक्तिकालीन भाव-प्रवणता तथा रीतिकालीन चमत्कार-निपुणता का मणि-काँचन संयोग दिखायी देता है। उपयुक्त उदाहरण देते हुए इस कथन का समाधान कीजिये।

अथवा

प्रश्न २५—"ऊद्धवशतक में भक्तिकालीन आत्मा रीतिकालीन कलेवर में अवतरित हुई है।" इस कथन की सत्यता को सिद्ध कीजिये।

अथवा

प्रश्न २६—"भक्तिकालीन भावुकता तथा रीतिकालीन कलात्मकता से समन्वित होकर रत्नाकर का उद्धवशतक अतीव हृदयहारी बन गया है। सिद्ध कीजिये।

उत्तर—रत्नाकरजी की सर्वश्रेष्ठ कृति उद्धवशतक में भक्तिकालीन भावुकता एवं रीतिकालीन चमत्कारप्रियता का मणिकाँचन संयोग परिलक्षित होता है। आधुनिक युग की इस कलात्मक रचना में भक्तिकालीन आत्मा रीतिकालीन कलेवर में अवतरित हुई है। काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष तथा कलापक्ष। इन्हीं को अनुभूति पक्ष तथा अभिव्यक्ति पक्ष भी कहा जाता है। रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में जिन अनुभूतियों को अपनाया है वे भक्तिकालीन कवियों की अनुभूतियाँ है तथा उन्हें जिस शैली में अभिव्यक्त किया है वह रीतिकालीन कवियों की अभिव्यक्ति शैली हैं। यद्यपि रत्नाकरजी का जन्म आधुनिक युग में हुआ था परन्तु उनके उद्धवशतक का वर्ण्यविषय भक्तिकालीन और रचना-शैली रीतिकालीन परिलक्षित होती है। आधुनिक युग में जन्म लेकर भी रत्नाकरजी मध्यकालीन भावनाओं से ओत-प्रोत थे और उनका उद्धवशतक इस कथन की सत्यता का साक्षी है।

कवि अपने युग की परिस्थितियों की उपज होता है और तत्कालीन प्रवृत्तियाँ, युगीन आवश्यकताएँ, समय की पुकार आदि उसके काव्य में मुखरित हुए बिना नहीं रहती हैं, फिर रत्नाकरजी आधुनिक युग में जन्म लेकर भी मध्यकालीन भावनाओं से प्रभावित कैसे बने रहें, यह प्रश्न हमें जिज्ञासु बनाता है। उस युग के अन्य कवियों के काव्य में बौद्धिकता, समाज-सुधार, राष्ट्रीय जागरण आदि की भावनाएँ कहीं अधिक तीव्रता से मुखरित हुई हैं, फिर रत्नाकर काव्य में वे क्यों नहीं हुईं? **उत्तर** यह है कि रत्नाकरजी काशी के एक धनी-मानी कुल में जन्मे और उनका अधिकांश समय अयोध्या के राज-दरबार में व्यतीत हुआ। राज-दरबार का वातावरण मध्यकालीन युग से प्रभावित रहता है और इसीलिए रत्नाकरजी के काव्य में रीतिकालीन कला-प्रियता का पर्याप्त समावेश हो गया। फिर वैष्णव धर्म के अनुयायी, हिन्दू संस्कृति के समर्थक और राधा-कृष्ण के उपासक होने के कारण भक्तिकालीन कवियों की अनुभूतिप्रवणता भी उनमें आ गई। आधुनिक युग की बौद्धिकता, विज्ञान, देश-प्रेम आदि ने भी उन्हें प्रभावित किया किन्तु उतना नहीं जितना भक्तिकालीन कवियों की भावुकता तथा रीतिकालीन कवियों की चमत्कार-प्रियता ने किया। यही कारण है कि उनके उद्धवशतक में भी इन्हीं दोनों युगों की प्रवृत्तियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। उद्धवशतक की वर्ण्यवस्तु भक्तिकाल से प्रभावित हैं तो रचना-शैली रीतिकाल से। इस सम्बन्ध में

डा० विश्वम्भर नाथ भट्ट ने सत्य ही लिखा है, **"भक्तिकालीन भावुकता तथा रीतिकालीन कलात्मकता से समन्वित होकर उनका उद्धवशतक अतीव हृदय-हारी बन गया है।"**[1]

उद्धवशतक का प्रतिपाद्य विषय है गोपी-उद्धव संवाद की योजना द्वारा निर्गुण ब्रह्म पर सगुण ब्रह्म की विजय प्रदर्शित करना। हिन्दी में भक्तिकालीन कवियों ने श्रीमद्भागवत के मूलाधार पर भ्रमरगीत काव्य के भव्य भवन का शिलान्यास किया है। 'सूरसागर' में अन्धकवि सूर ने इस प्रसंग को अत्यन्त मर्मस्पर्शी और हृदयहारी रूप में प्रस्तुत किया है तथा अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी बड़ी रुचि से इस पर अपनी लेखनी चलाई है। प्रसंग की रोचकता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अनन्य राम-भक्त तुलसी भी अपनी 'कृष्ण-गीतावली' में इस विषय पर कुछ पद लिखे बिना न रह सके। रीति-युग एवं आधुनिक युग के अनेक कवियों ने भी इस विषय को अपने-अपने ढंग से अपनाया है। यही विषय रत्नाकर के उद्धवशतक का वर्ण्य-विषय भी बना है।

जिस प्रकार सूर, नन्ददास आदि भक्त-कवियों के उद्धव-गोपी संवाद की योजना द्वारा निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन किया है उसी प्रकार रत्नाकर ने भी उद्धवशतक में इन्हीं भावों को व्यक्त किया है। निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म की निस्सारता का जो राग वैष्णव कवियों ने अलापा है वही उद्धवशतक में भी मिलता है। नन्ददास की गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप पर अविश्वास करती हैं—

"जौ मुख नाहिन हुतौ, कहौ किन माखन खायौ ?
पायन बिन गोसंग, कहो को बन बन धायौ ?
आँखिन में अंजन दियौ, गोवर्धन दियौ हाथ।
नन्द-जसोदा पूत ह्वै कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।
सखा सुनि स्याम के॥"

तो रत्नाकर की गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म की अनुपयोगिता इस प्रकार वर्णित करती है—

---

१. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला, पृ० १८३।

"कर-बिनु कैसे गाय दुहिहै हमारी वह
पद-बिनु कैसे नाचि थिरकी रिझाइ है।
कहै रतनाकर बदन बिनु कैसे चाखि
माखन बजाइ बेनु गोधन गवाइ है॥
देखि सुनि कैसे दृग स्रवनि बिना ही हाय
भौंरे ब्रजबासिन की बिपति ऊराइ है।
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारे काम आइहै॥"

भक्तिकालीन कवियों ने योग-साधना तथा नियम, व्रत-संयम, प्राणायाम आदि योग के अङ्गोपाङ्गों का मजाक उड़ाया है। योग-साधनों को दुर्गम एवं कष्टकर बताते हुए प्रेम और भक्ति की महत्ता प्रतिपादित की है। नन्ददास की गोपियाँ कहती हैं—

"प्रेम पियूषै छाँड़ि कै कौन समेटे धूरि।"

सूर की गोपियाँ भी कृष्ण प्राप्ति के समक्ष मुक्ति को भी हेय और तुच्छ ठहराती हैं—

"कोटि स्वर्ग सम सुख अनुमानत हरि समीप समता नहिं पावत।"

इसी प्रकार रत्नाकर की गोपियाँ भी मुक्ति की तुच्छता निरूपित करते हुए कहती हैं—

"मुक्ति-मुकता कौं मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकीं।"

भक्त कवियों ने उपालम्भ का सहारा लेकर कभी कृष्ण पर मीठी चुटकी ली है, तो कभी उद्धव पर चोट की है और कभी मथुरावासियों तथा कभी कुब्जा पर कड़वे-मीठे व्यंग्य-बाण छोड़े हैं। रत्नाकरजी ने भी उद्धवशतक में इन्हीं भावनाओं का मनोरम अंकन किया है। कृष्ण के प्रति गोपियों की मीठी चुटकी देखिए—

"करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौं
भाय क्यों अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं।"

तथा—

"प्रथम भुराइ चाय-नाय पै चढ़ाई नीकै
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं।

"प्रेम रतनाकर की तरल तरंग पारि
पलटि पराने पुनि प्रन पतवारी तें ।।

मथुरावासियों के प्रति गोपियों की व्यंग्योक्ति देखिए—

"कान्ह हूँ सों आन ही बिधान करिबै को ब्रह्म
मधुपुरियानि की चपल कंखियाँ चहैं ।"

रत्नाकर की गोपियाँ उद्धव को भी अपने व्यंग्य-बाणों से बेधती हैं। सूर आदि भक्त कवियों ने भी ज्ञानोपदेशक उद्धव के प्रति गोपियों के अन्तर के आक्रोश का सुन्दर वर्णन किया है। नंददास की गोपियाँ कृष्ण, कुब्जा और उद्धव को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाकर कहती हैं—

"कोउ कहै अहो मधुप, स्याम जोगी तुम चेला ।
कुब्जा तीरथ जाइ करौ इन्द्रिन कौ मेला ।"

सूर की गोपियाँ ज्ञान की गठरी लाद कर लाने वाले व्यापारी उद्धव की हंसी उड़ाती हैं—

(क) जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै ।
(ख) आयो घोष बड़ौ व्यापारी ।
(ग) आये जोग सिखावन पाँड़े ।

इसी प्रकार रत्नाकर की गोपियाँ भी उद्धव की खूब खबर लेती हैं देखिए—

(क) "चुप रहो ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ
कहौ न कहानी जो विविध कहि आए हौ ।
(ख) "कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रज वारी की ।
कहै रतनाकर पै प्रीति रीति जानत ना
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की ।।"
(ग) "जग सपनौ सौ सब परत दिखाइ तुम्हैं
तातैं तुम ऊधौ हमें सोवत लखात हौ ।"
(घ) "चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं ।"

भक्त कवियों ने भ्रमर-गीत प्रसंग में जिस केन्द्रीय भाव को अपनाया है उस मूल भावना में रत्नाकरजी ने तनिक भी परिवर्तन नहीं किया। गोपियों को

यह कौतूहल है कि रंगभवन में कृष्ण कुबड़ी के साथ किस प्रकार संभोग करते होंगे ? सूर की गोपियों ने इस जिज्ञासा को व्यक्त करते हुए कृष्ण और कुब्जा के सम्बन्ध का मजाक उड़ाया है—

"जिहिं छिन करत कलोल संग रति, गिरधर अपनी चाढ।
काटत हैं परजंक ताहि कैधौं खोदत हैं वे खाढ़॥

रत्नाकरजी की गोपियाँ भी इसी भाव को इन पंक्तियों में व्यक्त कर रही हैं—

"सोच है यहै कै संग ताके रंग भौन माँहि
कौन धौं अनोखौ ढंग रचत निराटी हैं।
छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट कोऊ
काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी हैं॥"

गोपियों को उद्धव का निर्गुण ब्रह्म का उपदेश नितान्त अनुचित एवं अनुपयुक्त प्रतीत होता है। कहाँ कोमलाँगी नारियाँ और कहाँ कष्टकर योग साधना ? जिन अंगों को उन्हें चंदन चर्चित करके कोमल और सुगन्धित बनाया उन पर भस्म आदि का आलेपन कैसा ? जिस केशराशि को स्वयं कृष्ण ने अपने हाथों के स्पर्श से सुलझाया उसे जटाजूट बनाने की कल्पना ही अनुचित है। यह भाव भक्त कवि सूर ने भी व्यक्त किया है और रत्नाकर के उद्धव-शतक में भी मिलता है। देखिए—

"जे कच कनक कटोरा भरि भरि मेलत तेल फुलेल,
तिन केसन क्यों भस्म चढ़ावत होरी कैसो खेल।
जिन केसन कबरी गहि सुन्दर अपने हाथ बनाई,
तिनको जटा कहा नीकी कहु कैसे कहि आई॥"—सूर

रत्नाकर ने भी यही भाव इस प्रकार व्यक्त किया है—

"चोप करि चंदन चढ़ायौ जिन अंगनि पै
तिन पै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहा।
रस-रतनाकर स-नेह निखारयौ जाहि
ता कच कौ हाय जटा जूट बरिबौ कहा॥

गोपियों के प्रेम-मार्ग की अविचलता देख ज्ञानी उद्धव का धैर्य डिग जाता है। न जाने कब और कैसे उनके ज्ञान का अन्धकार नष्ट होता जाता है और

वे शनैः शनैः प्रेम के रंग में रंग जाते हैं। ज्ञान पर भक्ति की विजय होती है। भक्त कवियों ने इस प्रसंग का अत्यन्त रुचि पूर्वक चित्रण किया है। रत्नाकर जी ने भी इस प्रसंग का उद्धव-शतक में अत्यन्त मनोरम अंकन किया है। उद्धव अपने अभिमान रूपी गढ़ का पतन लेकर वापिस लौटते हैं। उनकी वैराग्य तूमड़ी में रुचिकर प्रेम-रस भर गया है और ज्ञान गुदड़ी में वे अनुराग-रत्न लिये हुए हैं। उनकी प्रेमी अवस्था का यह चित्र अत्यन्त चित्ताकर्षक है—

"प्रेम मद छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बँहोलिनि जो आँस अधिकाई हैं।
एक कर राजै नवनीत जसुदा को दियौ
एक कर बंसी बर राधिका पठाई है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नाकर का उद्धवशतक भक्तिकालीन भावुकता से आप्लावित कृति है। जिस भावुक हृदय से भक्त कवियों ने भक्ति का महत्व प्रतिपादित किया था और निर्गुण उपासना का खण्डन किया था वही भावुकता उद्धव-शतक के रचयिता के हृदय में है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने सत्य ही लिखा है, रत्नाकर ने सूरदास, नंददास आदि के भावों और उक्तियों का आधार लिया है।"[१] डा० विश्वम्भरनाथ भट्ट ने भी लिखा है, "रत्नाकर जी के उद्धवशतक में भ्रमरगीत प्रसंग पुनः एक बार उसी रूप में उपस्थित हुआ जिस ढंग से मध्यकालीन कवियों ने उसे निरूपित किया था। उनकी गोपियों की भावुकता यदि सूर के समान है तो तर्क प्रणाली नंददास की गोपियों जैसी।"[२] निःसंदेह उद्धव-शतक की आत्मा भक्तिकालीन ही है।

उद्धवशतक में भक्तिकालीन आत्मा रीतिकालीन कलेवर में अवतरित हुई है। भावों का अनूठापन यदि हमें भक्तिकाल की याद दिलाता है तो उक्ति-वैचित्र्य, अलङ्कारों की छटा, बहुज्ञता और सूक्ति-चमत्कार रीतिकाल के

---

१. **हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी**, पृ० २०।
२. **रत्नाकरः उनकी प्रतिभा और कला**, पृ० १८३।

कवियों की स्मृति उत्पन्न करता है। उद्धवशतक के कलेवर में रीतिकालीन कविता की निम्न विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—

(१) भाषा-सौष्ठव—सूर, तुलसी, नंददास, मीरा आदि भक्त कवियों ने ब्रज-भाषा को मधुर और सुकुमार तो अवश्य बनाया था परन्तु उसमें संगीतात्मकता, नाद-सौंदर्य, शब्द-विन्यास की चारुता, लाक्षणिकता आदि गुण रीति-कवियों ने ही उत्पन्न किये थे। बिहारी, पद्माकर, घनानंद आदि ने ब्रजाभाषा को अत्यन्त समृद्ध बना दिया था। भाषा की यही समृद्धता उद्धवशतक में हमें मिलती है। बिहारी की वैभव सम्पन्न भाषा का एक उदाहरण देखिए—

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन।
मानहु सुर-सरिता विमल जल उछलत जुग मीन॥

रत्नाकर के भाषा-सौष्ठव का एक उदाहरण देखिए—

"माँगी बिदा माँगत ज्यौं मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास जौं।
बिथकित साँस-लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौं गिरत पुनि उठत उसाँस लौं॥

(२) अलङ्कार-योजना—रीतिकालीन कवियों ने अपनी कविता-कामिनी को विविध अलङ्कारों से सज्जित कर उपस्थित किया है। यही अलङ्कार-प्रियता उद्धवशतक में हमें मिलती है। इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि रत्नाकर जी के अलंकार सदैव भावोत्कर्ष में सहायक हुये हैं। रीतिकालीन कवि बिहारी तथा रत्नाकर जी का यमक अलंकार का प्रयोग देखिए। बिहारी ने लिखा है—

"कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।"

रत्नाकर जी लिखते हैं—

"बारनि कितेक तुम्हैं बारन कितेक करैं
बारन-उबारन ह्वै बारन बनौ नहीं।"

उद्धवशतक में प्रयुक्त कुछ अन्य अलंकारों के उदाहरण देखिए—

वीप्सा— **"रंचक हमारी सुनौ, रंचक हमारी सुनौ**
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं।"

असंगति— **"नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यो**
धीर बह्यो ऊधौ उर-अंचल रसाने तैं।"

श्लेष— **"रस-रतनाकर स-नेह निर्वारयौ जाहि ।"**
उपमा— **"चंद्र अरबिंद लौं सराह्यौं ब्रजचंद जाहि ।"**

(३) अन्तिम चरण में सौन्दर्य का समावेश—रीतिकालीन कवियों के कवित्त की एक प्रमुख विशेषता है—अंतिम चरण में सौन्दर्य का समावेश। यों तो प्रत्येक चरण ही अपनी विशेषताओं से युक्त रहता है किन्तु अंतिम चरण सबसे अधिक प्रभावोत्पादक परिलक्षित होता है । उदाहरण के लिए हम घनानन्द का यह सवैया देख सकते हैं—

"अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपन पौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरों आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटांक नहीं ॥"

इस सवैये की अंतिम पंक्ति अत्यन्त मार्मिक और सजीव बन पड़ी है कि तुम कौन सी पट्टी पढ़े हो कि मन भर लेकर बदले में छटांक भर भी नहीं देते अथवा मेरा मन चुराकर अपनी शोभा की झलक तक नहीं दिखाते या मन लेकर बदले में सुन्दर कटाक्ष तक नहीं देते । 'मन लेकर छटांक न देना' मुहावरा श्लेष के प्रभाव से विशेष चमत्कारपूर्ण हो उठा है ।

रत्नाकर के 'उद्धवशतक' में भी कवित्तों के अंतिम चरण अत्यन्त सशक्त सजीव तथा प्रभावपूर्ण बने हैं । उदाहरण के लिए निम्न चरण देखे जा सकते हैं—

(क) कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौं
नीकै तहाँ नेह की नदी में न्हाइ आए हैं ।
(ख) ऊधौ ब्रज-बास के विलासनि कौ ध्यान धंस्यौ
निसि दिन काँटे लौ करैजै कसकत है ।
(ग) लौटि-पौटि बात कौ बवण्डर बनावत क्यौ
हिय तें हमारे घनस्याम हटिहैं नहीं ।"

(४) अनुभाव-विधान—रीतिकालीन कवियों ने कविता के भावोत्कर्ष के लिए तथा उसमें चित्रोपमता की सृष्टि के लिए अनुभावों का सुन्दर नियोजन किया है । उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखा जा सकता है—

"कहत नटत रीझत खिजत मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात ॥"

गुरुजनों से भरे भवन में नायक अपने नेत्रों के द्वारा नायिका से संभोग की कामना व्यक्त करता है, नायिका इन्कार करती है, नायक उसकी इस अदा पर रीझता है, यह देख नायिका खीझ उठती है, पर फिर दोनों के नेत्र मिल जाते हैं, इस पर नायक महोदय खिल उठते हैं, और उनको प्रफुल्ल देख नायिका लज्जित हो जाती है। इस प्रकार इस दोहे में अनुभावों की सुन्दर योजना है।

अनुभाव-विधान का यह कौशल रत्नाकर के उद्धवशतक में भी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। उद्धव के ज्ञान और योग के उपदेश को सुनकर गोपियों की अवस्था का सजीव चित्र देखिए—

"सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी है।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी है॥
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रही
कोऊ घूमि घूमि-परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानो कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी है॥"

(५) **लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे**—रीतियुगीन कवियों ने लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा में लाक्षणिकता और अर्थ-गांभीर्य की सृष्टि की है। यही विशेषता 'उद्धवशतक' में भी हमें मिलती है। निम्न पंक्तियों में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का काव्योचित प्रयोग द्रष्टव्य है—

(क) **निसि दिन काँटे लौं करेजै कसकत है।**
(ख) **जाने कौन बहति बयार बरसाने में।**
(ग) **तुम मनमानौ ससा-सिंग गहिबौ करौ।**
(घ) **ताहि तुम्हें बात सौं उड़ावन पठायौ है।**
(ङ) **जैहै तीन तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै।**
(च) **बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै न।**

(६) **प्रकृति का उद्दीपन रूप से चित्रण**—रीतियुग के कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित किया है। बिहारी की नायिका सर्वत्र विकसित

पुष्पों को देखकर कहती है कि मानों ऋतुराज बसन्त ने किसी वियोगिनी को दण्ड देने के लिए शर-पिंजर बनवाया हो--

"दिसि-दिसि कुसुमित देखियत उपवन-विपिन-समाज।
मनहुँ वियोगिनु कौ कियौ सर-पंजर ऋतुराज ।।"

रत्नाकर की गोपियों को वसन्त ऋतु की छटा गोपियों के अंग-अंग में दिखाई पड़ती है—

"विकसित विपिन बसन्तिकावली कौ रंग
लखियत गोपिनि के अंग पियराने में।"

तो कभी ब्रज में सर्वत्र ग्रीष्म ऋतु का अखण्ड साम्राज्य छाया हुआ दिखायी देता है। कभी घनश्याम के बिना भी ब्रज में वर्षा की बहार नित्य बसी दिखाई देती है तो कभी पीड़ादायक शरद ऋतु का अखण्ड प्रसार परिलक्षित होता है। कभी हेमंत और कभी शिशिर ऋतु विद्यमान प्रतीत होती है। इस प्रकार उद्धवशतक में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है जो कि रीतिकालीन परम्परा का प्रभाव है।

(७) **बहुज्ञता**—रीतियुगीन कवियों ने प्रायः अपने काव्य में अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है। कभी इतिहास, कभी पुराण, कभी ज्योतिष, कभी आयुर्वेद तो कभी रसायन शास्त्र आदि का ज्ञान व्यक्त किया है। यही प्रवृत्ति रत्नाकरजी में भी हमें परिलक्षित होती है। उद्धवशतक में उनकी बहुज्ञता अनेक स्थलों पर झलक उठी है। दर्शन शास्त्र का ज्ञान निम्न पंक्तियों में देखिए—

(क) "पंच तत्व माँहि एक तत्व की ही सत्ता सत्य"
(ख) "असत असार या पसार में हमारी जान
जन भरमाए सदा ऐसैं रहिबौं करैं।
जागत औ पागत अनेक परपंचनि में
जैसे सपने में अपने कौं लहिबौ करै।।"

निम्न स्थलों पर रत्नाकर ने अपने पौराणिक ज्ञान का परिचय दिया है—

(क) यह वह सिन्धु नाँहि सोखि जो अगस्त लियौ।
(ख) बेगि ब्रह्मद्रव उपद्रव मचावै न।

(ग) बारन उबारन ह्वै ।

(घ) दौनाचल कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है ।

रत्नाकरजी का आयुर्वेद एवं रसायनशास्त्र विषयक ज्ञान भी उद्धवशतक में प्रकट हुआ है—

(क) गोप की बघूटी प्रेम-बूटी के सहारे मारे
चल-चित-पारे की भसम भुरकाइ कै ।

(ख) गोपी - ताप - तरुन-तरनि-किरनावलि के
ऊधव नितान्त कान्त-मनि बन आए हैं ।

रत्नाकरजी ने हाथी पकड़ने की कला, काँटा निकालने की रीति आदि के संबंध में भी अपना ज्ञान व्यक्त किया है। "नेम व्रत संजम के पींजरे परै कौ जब" छंद में सागर से मोती निकालने की विधि का उल्लेख किया है। "प्रेम अरु जोग में है जोग छठै-आठै पर्‌यौ" लिखकर अपने ज्योतिष ज्ञान का भी परिचय दिया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में जिस बहुज्ञता का परिचय दिया है, वह उनके ऊपर पड़े हुए रीतिकालीन प्रभाव को सूचित करती है।

(८) **विरह ताप का ऊहात्मक वर्णन**—हिन्दी के रीतिकालीन कवियों ने विरह ताप का ऊहात्मक वर्णन किया है। रत्नाकरजी ने विरह-ताप का ऊहात्मक वर्णन नहीं किया है फिर भी उद्धवशतक में एक-आध स्थानों पर यह रीतिकालीन प्रभाव भी मिल जाता है। बिहारी ने विरह-संतप्त नायक-नायिका के पत्र लिखने और पढ़ने का इस प्रकार वर्णन किया है—

"तर झरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाइ ।
पिय-पाती बिनहीं लिखी बाँची विरह-बलाइ ॥"

रत्नाकर की गोपियाँ भी कृष्ण को पत्र लिखने बैठती हैं तो उनके विरह-ताप से कागज जल जाता है, स्याही सूख जाती है—

"सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैंकु डंक लागैं
अंग लागैं कागद बररि बरि जात हैं।"

विरह-ताप का यह ऊहात्मक वर्णन रीतिकालीन परम्परा का प्रभाव है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रत्नाकर का उद्धवशतक भक्तिकालीन भावुकता और रीतिकालीन चमत्कार-

प्रियता से आपूरित काव्य-रत्न है। काव्य का वर्ण्य-विषय उन्हें भक्तिकालीन कवियों के समीप ठहराता है और रचना-शैली रीति-कवियों के निकट खड़ा कर देती है। डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के शब्दों में हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि—**"उद्धवशतक में वे (रत्नाकरजी) जहाँ भाव-निरूपण में सूर, तुलसी, मीरा आदि का अनुगमन करते हुए दिखाई देते हैं वहाँ भावाभिव्यक्ति में केशव, बिहारी, देव, पद्माकर, घनानन्द आदि रीतिकालीन चमत्कारवादी कवियों का अनुसरण करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इसीलिए 'उद्धवशतक' में जहाँ उद्धव-गोपी-संवाद के रूप में निर्गुण की अपेक्षा सगुण भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन होने के कारण भक्तिकालीन आत्मा विद्यमान है वहाँ पद-लालित्य, शब्द-चयन, अलंकारिकता, छन्दों की कारीगरी और नादात्मक सौन्दर्य के साथ संगीतात्मकता में रीतिकालीन कलेवर विद्यमान है।"**[1] निःसंदेह उद्धवशतक में भक्तिकालीन आत्मा रीतिकालीन कलेवर में अवतरित हुई है।

प्रश्न २७—**"रत्नाकरजी में अपनी बहुज्ञता को काव्यानुकूल बनाने की अपूर्व क्षमता थी। उद्धवशतक में उनकी बहुज्ञता का प्रकाशन अत्यन्त चारुता और चतुरता से हुआ है।"** उपयुक्त उद्धरणों के आधार पर इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिये।

उत्तर—संस्कृत साहित्य में आचार्यों ने काव्य के हेतुओं के विषय में पर्याप्त विवेचन किया है। इस विवेचन के विस्तार में न जाते हुए हमें यहाँ पर यही कहना अभीष्ट है कि आचार्यों ने काव्य के तीन हेतु बताये हैं—(क) प्रतिभा, (ख) अभ्यास, और (ग) बहुज्ञता। प्रतिभा कवि की वह जन्मजात शक्ति है जो उसके काव्य-कौशल का शृंगार करती है। प्रतिभा के बल पर कवि किसी वस्तु का ऐसा चित्रण करता है कि पाठकों के हृदय में उसका चित्र उपस्थित हो जाता है। किन्तु श्रेष्ठ काव्य-रचना के मूल में प्रतिभा के साथ-साथ अभ्यास, निपुणता और बहुज्ञता भी वाँछनीय रहती है। डा० विश्वम्भर नाथ भट्ट ने लिखा है, **प्राणवान् कवि का कमनीय काव्य-कौशल और समुल्लास उसकी नैसर्गिक कारयित्री प्रतिभा पर ही नहीं, सतत अभ्यास, निपुणता और बहुज्ञता (व्युत्पत्ति बल) पर भी आधारित रहता है, अतः कवि के लिए जितनी**

---

१. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृ० ९०।

प्रतिभा काम्य है, उतनी ही बहुज्ञता अथवा व्युत्पत्ति भी वरेण्य है, और जहाँ प्रतिभा और व्युत्पत्ति का सम्प्लवन हो जाता है, वहाँ सोने में सुगन्ध आ जाती है।"[1] ऐसे ही कवियों में कविवर रत्नाकर का नाम लिया जा सकता है जिनमें प्रतिभा भी थी और बहुज्ञता भी। उद्धवशतक में उनकी बहुज्ञता का अत्यन्त चारु चातुर्यपूर्ण एवं काव्यानुकूल उद्‌घाटन हुआ है।

कवि को क्रांतदर्शी माना गया है। वेदों में 'कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू' कहा गया है। अन्यत्र 'कवि द्वितीयो ब्रह्मा' उक्ति मिलती है। अग्निपुराणकार ने भी लिखा है—

"अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते।"

आचार्य मम्मट ने तो ब्रह्मा की सृष्टि से भी अधिक कवि सृष्टि को महत्व दिया है। क्षेमेन्द्र कवि ने कवि के बहुज्ञ होने को अनिवार्य माना है। कवि को बहुविषयज्ञ होना चाहिए। परन्तु अपनी बहुज्ञता को उसे काव्यानुकूल चित्रण करना चाहिए। प्रसंग, परिस्थिति और भाव पर ध्यान दिये बिना जो कवि काव्य में यत्र-तत्र अपनी बहुज्ञता का प्रकाशन करता जायेगा, उसका काव्य उच्चकोटि का न बनेगा। परिस्थिति, आवश्यकता और प्रसंग का ध्यान रखते हुए कवि को अपनी बहुज्ञता प्रकाशित करनी चाहिए। रत्नाकर जी ऐसे ही कवियों में गिने जाते हैं। डा० रसाल के शब्दों में "(रत्नाकरजी) ने इस **छोटे से रत्नागार (उद्धवशतक) में भी अपनी बहुज्ञता का प्रकाशन बड़ी चारुता और चतुरता से किया है।"**[2]

रसायनशास्त्र, वैद्यक, विज्ञान, संगीत, मनोविज्ञान, वेदान्त, योगदर्शन और तर्कशास्त्र आदि विविध विषयों का रत्नाकरजी को ज्ञान था। उनकी यह बहुविषयज्ञता उद्धवशतक में यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। विविध विषयों का रत्नाकरजी को ज्ञान था। उनकी यह बहुविषयज्ञता उद्धवशतक में यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। विविध विषयों का ज्ञान काव्योत्कर्ष में सहायक हुआ है। इससे भावों में और अधिक उत्कर्ष मार्मिकता एवं व्यंजकता आ गई है।

---

१. रत्नाकर : **उनकी प्रतिभा और कला**—डा० वी० एन० भट्ट, पृ० ३५६।
२. **उद्धवशतक : भूमिका**—पृ० ४४।

रत्नाकरजी का रसायनशास्त्र का ज्ञान निम्न कवित्त से प्रकट है जिसमेंपारद भस्म बनाने की रासायनिक प्रक्रिया वर्णित है—

"दीन्यौ प्रेम-नेम गुरुवाई गुन ऊधव कौं
हिय सों हमेव-हरुवाई बहिराइ कै।
कहै रतनाकर त्यों कंचन बनाई काय
ज्ञान-अभिमान की तमाई बिनसाइ कै॥
बातनि की धौंक सौं धमाई चहुँ कोदनि सौं
निज बिरहानल तपाइ पघिलाइ कै।
गोप की बधूटी प्रेम-बूटी के सहारे मारे
चल-चित्त-पारे की भसम भुरकाइ कै॥"

यह प्रेम-रसायन साधारण दवा का काम नहीं देता वरन् ऐसी दवा का काम देता है जिससे प्रेमी हृदय को शक्ति प्राप्त होती है। उद्धव इसी प्रेम-रसायन को लेकर मथुरा लौटे थे—

"चल-चित-पारद की दम्भ-कंचुली कै दूरि
ब्रज मग धूरि प्रेम-मूरि सुभ सीली लै।
कहै रतनाकर सु जोगनि विधान भावि
अमित प्रमान ज्ञान-गन्धक गुनीली लै॥
जारि घट-अन्तर ही आह-धूम धारि सबै
गोपी बिरहागिनि निरन्तर जगीली लै।
आए लौटि ऊधव विभूति भव्य भायनि की
कायनि की रुचिर रसायन रसीली लै॥"

वैद्यक में विषम-ज्वर की औषधि सुदर्शनचूर्ण कही गई है। विषम-ज्वर एक ऐसा ज्वर है जो आता तो नित्य है किन्तु उसके आने का समय निश्चित नहीं होता और न उसमें तापक्रम ही सदा एक सा रहता है। सुदर्शन चूर्ण इस विषम-ज्वर की अचूक दवा है। गोपियों की विरह-वेदना की अचूक औषधि भी यही सुदर्शन (प्रियतम कृष्ण का दर्शन) ही है। निम्न कवित्त में इसी भाव को लेकर कवि का वैद्यक ज्ञान प्रकट है—

"रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।

तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत न सुदर्सन हूँ यों सुधि बिराई है ॥
करत उपाय न सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यों अनारिनि कौ भरत कन्हाई है ॥
ह्याँ तौ विषम ज्वर वियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई है ॥"

विज्ञान के प्रकाश तथा **प्रतिबिम्ब** सम्बन्धी सिद्धान्त का भी उद्धदशतक में प्रयोग मिलता है। दर्पण के सामने खड़े होकर यदि कोई अपना प्रतिबिम्ब देखे तो वह दर्पण के ऊपरी धरातल पर ही पड़ा हुआ दिखलाई पड़ता है। व्यक्ति ज्यों-ज्यों दूर हटता जाता है प्रतिबिम्ब त्यों-त्यों दर्पण में और गहरा प्रविष्ट होता जाता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि तुम कृष्ण को हमारे हृदय से दूर करने की जितनी चेष्टा करोगे, वह उतने अधिक हृदय के भीतर समाविष्ट होते जायेंगे। कवि के विज्ञान के प्रकाश एवं प्रतिबिम्ब सम्बन्धी सिद्धान्त के ज्ञान ने भाव को और अधिक मार्मिक तथा व्यंजक बना दिया है--

"ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान-मूरि,
त्यौं-त्यौं धंसे जात मन-मुकुर हमारे मैं ॥"

रत्नाकरजी भारतीय **दर्शन-शास्त्र** के भी ज्ञाता थे। वेदान्त के 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' 'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति' तथा 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' आदि के सिद्धान्तों से वे अवगत थे। उद्धव के मुख से उन्होंने अनेकत्व में एकत्व के सिद्धान्त का इस प्रकार निरूपण करवाया है—

"पंच तत्व में जो सच्चिदानन्द की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमें समान ही समोई है।
कहै रतनाकर विभूति पंच-भूत हू की
एक ही सौ सकल प्रभूतनि में पोंई है।
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है ॥"

रत्नाकर जी को **तर्कशास्त्र** का भी ज्ञान था। उद्धवशतक में उद्धव के ज्ञानोपदेश का खण्डन करते हुए गोपियाँ जो तर्क देती हैं उनमें शास्त्रीयता और रुक्षता नहीं है अपितु वे नारी-हृदय की सरस-सजल मधुरिमा की वारि-धारा से स्नात हैं। ये तर्क सीधे हृदय से निकले हैं और हृदय पर ही सीधा प्रभाव डालते हैं। एक उदाहरण देखिए—

"छेदि-छेदि छाती छलनौ कैं बैन-बाननि सौं
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ।"

सच तो है। पहले तो अपने कटु उपदेश द्वारा उद्धव ने उनके हृदय को छेद-छेद कर छलनी बना दिया और अब उसमें धैर्य रूपी जल को धारण करने के लिए कह रहे हैं। छलनी में जल भला कैसे ठहर सकता है गोपियों के तर्क में नारी हृदय की भावनाएँ अभिव्यंजित हैं।

उद्धवशतक में रत्नाकर जी का **मनोविज्ञान** विषयक ज्ञान भी प्रकट हुआ है। नारियों के हृदय में सपत्नी-डाह विद्यमान रहता है। कुब्जा के प्रति गोपियों की यह कटूक्ति उनके हृदय के सौतिया डाह की ही परिचायक है—

"रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी पठाए हौ।"

रत्नाकरजी को **ज्योतिष शास्त्र** का भी ज्ञान था। ज्योतिष के अनुसार कुण्डली में ग्रहों का छठा-आठवाँ योग हानिकारक होता है। उद्धवशतक में कवि ने इसी बात का उल्लेख किया है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

"प्रेम अरु जोग में है जोग छठै-आठै परयौ
एक ह्वै रहै क्यौं दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाँच तत्व बहकि बतावत सौ
जैहै तीन तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै॥"

आयुर्वेद के अनुसार समान मात्रा में घी तथा शहद मिलाने से विष बन जाता है। इसी आधार पर रत्नाकर की गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

"आइ निरगुन गुन-गाइ ब्रज में जो अब
ताकौ उद्गार ब्रह्म-ज्ञान-रस गारै हैं।
मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमारै नेह
देह में अछेह बिष विषम बगारै हैं।"

रत्नाकरजी को भूगोल का ज्ञान भी था। चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र में ज्वार-भाटा आता ही है। राधा के मुख-चन्द्र के स्मरण मात्र से कृष्ण के हृदय में भी भावों का ऐसा ज्वार उठता है कि मन-रूपी जहाज डूबने को हो जाता है—

"राधा-मुख-मंजुल सुधाकर कै ध्यान ही सौं
प्रेम-रतनाकर हियै यौं उमगत है।"

रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में जिस बहुज्ञता का परिचय दिया है उससे काव्य-सौन्दर्य में अभिवृद्धि हुई है। पांडित्य प्रदर्शन की कामना से कवि ने कहीं भी बहुज्ञता का प्रदर्शन नहीं किया। विविध विषयों का उनका ज्ञान भावों को और अधिक मार्मिक बनाने में सिद्ध हुआ है। कवि की बहुज्ञता ने काव्य को उत्कृष्ट बनाने में अपना योगदान दिया है। उद्धवशतक में रत्नाकर का संगीत ज्ञान भी प्रकट हुआ है। भावानुकूल कण्ठ-स्वर मार्दव के समावेश से काव्य में संगीतात्मकता भी आती है और भावों में हृदय को स्पर्श करने की सामर्थ्य भी बढ़ जाती है। रत्नाकरजी में ऐसे प्रयोगों का कौशल विद्यमान था। निम्न पंक्तियों में गोपियों का झुंझलाहट से भरा कथन उनकी हृदय स्थित भावनाओं का सजीव चित्र उपस्थित कर रहा है—

"चेरी हैं न ऊधौ काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहि देति एक कान्ह की कमेरी हैं॥"

निम्न पंक्तियों में भी गोपियों का कण्ठ स्वर कृष्ण के प्रति उनके अनन्य प्रेम और विश्वास का द्योतन कर रहा है—

"वे तो हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही औ।
हम उनहीं की उनहीं की उनहीं की हैं॥"

उद्धवशतक में रत्नाकरजी ने हाथी पकड़ने की प्रक्रिया, सागर से मोती निकालने की प्रक्रिया, मणि निर्माण की प्रक्रिया, भ्रमर द्वारा मधु निर्माण की प्रक्रिया आदि का भी वर्णन किया है। इससे यह प्रकट होता है कि वे बहु-विषयज्ञ थे। सूर्यकान्त मणि के निर्माण की प्रक्रिया इन पंक्तियों में देखिए—

"भाठी के वियोग जोग-जटिल-लुकाठी लाइ
लाग सौं सुहाग के अदाग पिघलाए है।
कहै रतनाकर सुबृत्त प्रेम-साँचे माँहि
काँचे नेम संजम निबृत्त कै ढराए हैं॥

अब परि बीच खींचि बिरह-मरीचि बिंब
देत लव लाग की गुँबद-उर लाए हैं।
गोपी-ताप - तरुन-तरनि - किरनावलि के
ऊधव नितान्त कान्त-मनि बन आए हैं ।।"

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रकट हो जाता है कि रत्नाकरजी बहुज्ञ थे और उनकी बहुज्ञता उद्धवशतक में यत्र-तत्र स्पष्ट हुई है। कवि का योग विषयक ज्ञान भी इस ग्रन्थ में प्रकट हुआ है और योग के प्राणायाम, समाधि, ध्यान-धारणा आदि अङ्गोपाङ्गों का उल्लेख है। उद्धवशतक में कवि ने विविध विषयों के सम्बन्ध में अपने ज्ञान का परिचय दिया है किन्तु यह बहुज्ञता पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से अनुप्राणित नहीं है। कवि में बहुज्ञता को काव्यानुकूल बनाने की अपूर्व क्षमता थी। उद्धवशतक में अत्यन्त चारुता और चतुरता से उनकी बहुज्ञता का प्रकाशन हुआ है। रत्नाकरजी में शास्त्र-निरीक्षण और लोक-निरीक्षण दोनों विद्यमान था इसी शास्त्र-लोक-निरीक्षण की भाव-भूमि पर रत्नाकरजी के काव्य का वृक्ष फूला-फला है। इस निरीक्षण कौशल ने उद्धवशतक के भाव-पक्ष को समृद्ध बनाया है और उसके काव्योत्कर्ष में सहायता प्रदान की है। कवि के व्युत्पत्ति कौशल ने उद्धवशतक के भाव-वैभव में तो तीव्रता और मार्मिकता भरी ही है, अभिव्यक्ति में भी अनूठापन ला दिया है। इसीलिए रत्नाकरजी को महाकवि होने का गौरव प्राप्त हुआ है।

प्रश्न २८—उद्धवशतक के आधार पर कविवर रत्नाकर की काव्य-शैली की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—रत्नाकरजी एक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार थे। 'रत्नाकर' उनका उपनाम था और उनकी रत्न-राशि से निश्चय ही साहित्य-संसार अत्यन्त समृद्ध हुआ है। वे ब्रज-भाषा के अन्तिम महाकवि थे। उद्धवशतक उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। भाव-सौन्दर्य, अभिव्यंजनाकौशल, सरस कोमल पदावली, मधुर प्रांजल शब्दचयन, चित्रोपमता, गम्भीर विचारों का सन्निवेश, मधुर संगीतात्मक छन्द-विधान उनके उद्धवशतक की सामान्य विशेषताएँ हैं।

उद्धवशतक भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी साहित्य की एक श्रेष्ठ कृति है। इसका सृजन कवि ने प्रबन्धात्मक-मुक्तक शैली में किया है। इसमें एक घटना-विशेष की कथा भी है और साथ ही इसका प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र अस्तित्व भी रखता है। प्रायः सभी भक्त-कवियों ने कृष्ण और

गोपियों से सम्बन्ध रखने वाली इस घटना को अपने काव्य का वर्ण्य-विषय बनाया है। कृष्ण द्वारा अपने ज्ञानी सखा उद्धव को ब्रज भेजना तथा गोपिकाओं की अनन्य और एकनिष्ठ कृष्ण-भक्ति के समक्ष उद्धव के ज्ञान और योग का पराभव, इस काव्य की कथावस्तु है। सम्पूर्ण काव्य अपने घटना-प्रवाह के कारण प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं से परिपूर्ण है और साथ ही प्रत्येक छन्द अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखने के कारण मुक्तक काव्य की विशेषता भी रखता है। इस प्रकार इस काव्य का प्रणयन प्रबन्ध-मुक्तक शैली में हुआ है।

उद्धवशतक में वार्तालाप या कथोपकथन शैली का भी कवि ने समावेश किया है। इस प्रकार यह वार्तात्मक काव्य भी है। कवित्त जैसे बड़े छन्द में भी पारस्परिक संवादों का कवि ने अत्यन्त कौशल से निर्वाह किया है। स्वाभाविकता, सरलता और स्पष्टता इन कथोपकथनों के प्रधान गुण हैं। उदाहरण के लिए कृष्ण का अपने मित्र उद्धव से यह कथन देखिए, जो उनके हृदय के अनन्य ब्रजानुराग का परिचायक है—

"नन्द औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की
लाड़-भरे लालन की लालच लगावतीं।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी
मंजु मृगनैनिनि के गुन-गन गावती।।
जमुना कछारनि की रंग-रस रारनि की
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमुसावती।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती।।"

उद्धवशतक की काव्य-शैली की तीसरी विशेषता उसकी चित्रोपमता है। कवि ने अपनी कल्पना की तूलिका से काव्य के चित्र-पट पर जो चित्र अंकित किए हैं वे अत्यन्त सजीव एवं मनोहारी बन पड़े हैं। पाठक के मस्तिष्क पर भी वे चित्र ज्यों के त्यों अंकित होते जाते हैं। उद्धव के ब्रज में आगमन का समाचार सुनकर गोपिकाएँ कृष्ण का सन्देश जानने की आतुरता से भरकर उनके चतुर्दिक एकत्रित हो जाती हैं। गोपियों की उत्सुकता की चरम सीमा का कविवर रत्नाकर ने सचित्र वर्णन किया है—

"भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गाँवनि मैं पावन जबै लगीं।

कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नन्द-पौरि आवन तवै लगीं ।।
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं ।
हमकौं लिख्यौ है कहा हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ।।"

कृष्ण के द्वारा भेजे गए उनके सखा उद्धव के ब्रजागमन का समाचार सुनते ही झुण्ड की झुण्ड ब्रजाङ्गनाओं का दौड़-दौड़कर नंदजी की ड्योढ़ी में जाना, पंजों के बल उचक-उचक कर कृष्ण के पत्र को देखना तथा उमंग से उनकी छाती का उमड़ना एवं हमें क्या लिखा है यह पूछना दृश्य का सचित्र वर्णन उपस्थित कर रहा है ।

उद्धवशतक का एक अन्य चित्रोपम वर्णन देखिए जब ब्रज में कुछ दिनों तक रहने के बाद उद्धव मथुरा वापिस लौट रहे हैं । नंद, यशोदा, राधा तथा गोपियाँ उद्धव के हाथों अपने प्राणाधिक प्रिय कृष्ण के लिए प्रेमोपहार भेज रही हैं । रत्नाकर जी के प्रतिभा-कौशल एवं कल्पना के जादू ने चित्र को सजीव और स्वाभाविक बना दिया है—

"धाई जित-तित तैं बिदाई हेत ऊधव की,
गोपी भरीं आरति संभारति न साँसुरी ।
कहै रतनाकर मयूर-पुच्छ कोऊ लिये,
कोऊ गुंज-अंजली उमाहे प्रेम-आँसुरी ।।
भाव-भरी कोऊ लिये रुचिर सजाव दही,
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी ।
पीत पट नंद, जसुमति नवनीत नयौ,
कीरति कुमारी सुखारी दई बाँसुरी ।।"

उद्धवशतक की काव्य-शैली अनुभावों के माध्यम से अत्यन्त प्रभावशाली बन गई है : वैवर्ण्य, कम्प, शैथिल्य, अश्रु-प्रवाह, उच्छ्वास, कण्ठावरोध, प्रस्वेद, पुलकावली आदि अनुभाव इस काव्य में यथास्थान प्रदर्शित हुये हैं । कहीं-कहीं तो अनेक अनुभावों का सुन्दर सुगुम्फन है । कृष्ण जब यमुना-जल में मुरझाए कमल पुष्प को देख ब्रज की स्मृतियों में व्याकुल हो उठते हैं तब अपने अन्तरंग

सखा उद्धव के समक्ष भी अपने हृदयोद्गारों को अभिव्यंजित नहीं कर पाते। ऐसी अवस्था में अश्रु सात्विक अनुभाव ही भावाभिव्यक्ति में सहायक होते हैं—

"कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूँ तौ कहाँ लौं कहै,
कैसे कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं।
तौलौं अधिकाई तैं उमगि कण्ठ आइ भिंचि,
नीर ह्वै बहन लागी बात अंखियानि तैं॥"

कृष्ण के अन्त-स्थित भावों का उद्घाटन शब्दों द्वारा कम तथा आँसुओं और हिचकियाँ द्वारा ही अधिक होता है—

"नैंकु कही बैंननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं॥"

कृष्ण के सन्देशवाहक बनकर जब उद्धव ब्रज पहुँचते हैं और गोपियों को ज्ञानोपदेश देते हैं उस समय गोपियों की जो दशा होती है उसका रत्नाकरजी ने अनुभावों के माध्यम से अत्यन्त मर्मस्पर्शी तथा प्रभावपूर्ण अंकन किया है—

"सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी कोऊ थानहिं थिरानी हैं।
कहैं रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी है॥
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं॥"

उद्धवशतक में रत्नाकरजी की काव्य शैली सरल तथा अलंकारमयी दोनों प्रकार की है। निम्न कवित्त में गोपियाँ उद्धव से अपनी विरह-दशा की कृष्ण से उल्लेख करने की विधि बता रही हैं। सरलता, स्वाभाविकता और मार्मिकता की दृष्टि से कवित्त बेजोड़ है। गोपियाँ स्वाभिमानिनी हैं। वे कृष्ण के समक्ष अपनी वियोग संतप्त अवस्था तभी प्रस्तुत करना चाहती हैं जब कृष्ण उनके संबंध में जानने को जिज्ञासु हों। संदेश की प्रणाली भी वे अभिनयात्मक बतलाती हैं—

"हाल कहा बूझत विहाल परीं बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबे के जोग
सूधौ सौ संदेस याहि तू न ठहराइयौ॥
औसर मिले और सर-ताज कछु पूछहिं तौ
कहियौ कछु न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ॥"

रत्नाकरजी ने अलंकारमयी शैली भी प्रयुक्त की है। उनके अलंकार चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं हैं अपितु भावाभिव्यक्ति में सहायक हुए हैं। पाँडित्य प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग रत्नाकरजी ने नहीं किया है। उनकी कविता-कामिनी भूषण भाराक्रान्त रमणी की भाँति मन्थर-मन्थर गति से संचरण करते हुए काव्य-प्रेमियों के हृदय को अनुरंजित करती है। उदाहरण के लिए श्लेष से पुष्ट साँगरूपक देखिए जो कवि-कौशल का निदर्शक है—

"राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम-रतनाकर हियैं यौं उमगत है।
त्यौं ही विरहातप प्रचण्ड सौं उमण्डि अति,
ऊरध उसास को झकोर यौं जगत है॥
केवट विचार कौ विचारौ पचि-हारि जात,
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है।
करत गम्भीर धीर-लंगर न काज कछू,
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है॥"

चंद्रमा के आकर्षण से समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, इस प्राकृतिक घटना को लेकर कवि ने अपने इस साँगरूपक का निर्माण किया है। राधा के मुख रूपी चंद्रमा के ध्यान मात्र से कृष्ण के हृदय में प्रेम-पारावार अगाध वेग से उमड़ने लगता है। विरह-ताप से उत्पन्न ऊर्ध्व उच्छ्वासों के भीषण झकोरों से घबराकर विचार रूपी केवट किंकर्तव्यविमूढ़ होने लगता है। विवेक रूपी गुण का पाल आकाश में उड़ने लगता है। धैर्य रूपी लंगर भी कुछ काम नहीं करता और मन का जहाज डूबने को हो जाता है। श्लेष से परिपुष्ट यह साँगरूपक कवि के उत्कृष्ट काव्य-कौशल का निदर्शक है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्धवशतक रत्नाकरजी की सर्वश्रेष्ठ कृति है और इसमें उनकी काव्य-शैली का अत्यन्त वैभव सम्पन्न स्वरूप प्रदर्शित हुआ है चित्रोपमता, अनुभाव-योजना, अलंकारप्रियता, आदि उनकी काव्य-शैली की सामान्य विशेषताएँ हैं जिन्होंने उद्धवशतक की गरिमा में चार चाँद लगा दिए हैं।

प्रश्न २९—उद्धवशतक की भाषा, उसके पद-लालित्य तथा अर्थ-गौरव पर सोदाहरण प्रकाश डालिये।

उत्तर—भाषा भावों की प्रधान वाहिनी है। कवि के अन्तर में भावों का जो ज्वार उठता है उसे वह भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त करता है। काव्य-स्रष्टा और काव्य-आस्वादकर्त्ता के बीच भाव-विनिमय का एकमात्र साधन भाषा ही है। रस-सिद्ध कवि अपने अन्तस्थल में उठने वाले भावोद्वेगों को ऐसे शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त करता है जो पाठकों की हृदय-वीणा के तारों को झंकृत करने की क्षमता रखते हैं। शब्दों का यही ऐश्वर्य और भावाभिव्यक्ति की यही सामर्थ्य किसी समय ब्रजभाषा को प्राप्त थी और वह हिन्दी की एकमात्र काव्य-भाषा के रूप में स्वीकृत थी। रत्नाकरजी इसी ब्रजभाषा के अन्तिम श्रेष्ठ कलाकार थे। डा० रसाल ने ब्रजभाषा की काव्योचित महत्ता के सम्बन्ध में लिखा है, "**साधारण से साधारण रचना भी ब्रजभाषा की कमनीय कोमलता, मनमोहिनी मधुरता और मंजुलता के प्रभाव से मनोरंजक तथा चारु चोखी लगने लगती है। यदि उसमें अर्थ-गौरव, पद-लालित्य** और चमत्कृत-चातुर्य्य का भी यथोचित समावेश कर दिया जाय तो यह 'सोना और सुगन्ध' की कहावत को भी चरितार्थ करने लगती है।"[1] ब्रजभाषा का यह सौन्दर्य हमें रत्नाकर के उद्धवशतक में मिलता है पद-लालित्य तथा अर्थ-गौरव से समन्वित ब्रजभाषा का साहित्यक रूप इस रचना में प्रदर्शित हुआ है। भाषा की इन विशेषताओं ने उद्धवशतक को अत्यन्त कमनीय और कांतिपूर्ण कलेवर प्रदान कर दिया है।

रत्नाकरजी जिस समय साहित्य-सर्जना कर रहे थे उस समय हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में ब्रजभाषा का आधिपत्य हटता जा रहा था और खड़ी बोली

---

१. **उद्धवशतक—भूमिका**, पृ० ५६।

का साम्राज्य स्थापित हो रहा था। यद्यपि गद्य के लिए खड़ी बोली और पद्य के लिए ब्रजभाषा प्रयुक्त हो रही थी किन्तु इस ब्रजभाषा में पुराना माधुर्य न रह गया था। ऐसे समय में रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा का शुद्ध साहित्यिक रूप प्रस्तुत किया। सुदूर वाराणसी में रहते हुए भी उन्होंने ब्रजभाषा की आत्मा से सम्पर्क स्थापित किया और पूर्ण अधिकार के साथ उसका प्रयोग किया। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है, "ब्रजभाषा पर इनका अधिकार व्यापक और विस्तृत था। आरम्भ की रचनाओं में भी ब्रजभाषा का एक सुष्ठु रूप है; किन्तु प्रौढ़ कृतियों में, विशेषकर उद्धवशतक में रत्नाकर का भाषा-पांडित्य प्रखर रूप में प्रस्फुटित हुआ है।"[1] संस्कृत की पदावली को उन्होंने साधिकार ब्रज के साँचे में ढाला है। काशी की बोली से भी शब्दों को लेकर ब्रज की बोली में गूँथा है। यह एक दुष्कर कार्य था किन्तु प्रातिभ कवि रत्नाकर ने बड़ी योग्यता से इसे किया। **'गमकावत'**, **'धरना'**, **'पराना'** आदि देशी प्रयोग कहीं भी अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होते हैं। यह कौशल रत्नाकर के भाषा पांडित्य का सूचक है।

रत्नाकरजी ने जिस ब्रजभाषा में अपने अन्य ग्रन्थों का सृजन किया उसे भक्त कवियों एवं रीतिकवियों ने माँज-माँज कर मधुर, सुकुमार एवं नाद युक्त बना दिया था। सूर, तुलसी, मीरा तथा रसखान प्रभृति भक्त कवियों ने उसमें मधुरता एवं मृदुलता का समावेश किया था तो देव, बिहारी, पद्माकर आदि रीतिबद्ध कवियों ने उसमें नाद-सौंदर्य एवं घनानन्द, बोधा ठाकुर आदि रीतियुक्त कवियों ने भाव-भीना अभिव्यक्ति-कौशल भर दिया था। उक्ति-वैचित्र्य, अर्थ गम्भीर्य, लाक्षणिकता, सांकेतिकता, सुकुमारता एवं नाद-सौंदर्य आदि गुणों से ब्रजभाषा विभूषित हो उठी थी और भाषा-साम्राज्ञी के महत्व-पूर्ण पद पर आसीन हो गई थी। इसी ब्रजभाषा का विशुद्ध निखरा हुआ स्वरूप रत्नाकर के उद्धवशतक में मिलता है।

रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में भाषा को कमनीय और सुकुमार बनाने के लिए उसमें संगीतात्मकता और नाद-सौन्दर्य का अद्भुत समावेश किया है। उदाहरण के लिए, निम्न कवित्त देखिए जिसमें वर्ण मैत्री एवं अनुप्रास-प्रियता ने भाषा को संगीतात्मक एवं नाद-सौन्दर्य से युक्त बना दिया है—

---

१. **हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी**, पृ० २६।

"भेजे मन भावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज गाँवनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नन्द-पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहन छवै लगीं।
हमकौं लिख्यो है कहा हमकौं लिख्यो है कहा
हमकौं लिख्यौं है कहा कहन सबै लगीं॥"

उद्धवशतक की भाषा की दूसरी विशेषता उसकी प्रवाहमयता है। पदों में ऐसा प्रवाह है कि पाठक उसमें बहता चला जाता है। यह धारा कहीं अवरुद्ध नहीं हुई है। प्रत्येक पदों में गतिशील योजना परिलक्षित होती है। भाषा की इस प्रवाहमयता का उदाहरण देखिए—

"दीन दशा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहैं रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से॥
सूखे से स्त्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।
हौले से हले से हूल-हूले से हिए में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥"

उद्धवशतक की भाषा उक्ति-वैचित्र्य की छटा से सज्जित है। उक्ति-वैचित्र्य की छटा निम्न कवित्त में देखिए—

"आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपे
ऊधो ये वियोग के बचन बतराबौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौं तौ पै अधिक बढ़ावौ ना।
टूक-टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तो बसिकै उजारयौ मोंहि
हिय में अनेक मनमोहन बसावौ ना॥"

उक्ति-वैचित्र्य की छटा से आपूर्ण गोपियों की सरस एवं मार्मिक उक्तियों से 'उद्धवशतक' भरा पड़ा है। उदाहरण के लिए देखिए—

(क) "एते बड़े विस्व माँहि हेरे हूँ न पैये जाहि
ताहि भृकुटी में नैन मूँदि लखिबौ कहौ।"

(ख) "मुक्ति-मुकुता कौ मोल-माल ही कहा है जब
मोहन-लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं।"

(ग) "छेदि छेदि छाती छलनी कै बैन बाननि सौं
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ।"

(घ) "एक ही अनंग साधि साध सब पूरी अब
और अंग रहित अराधि करिहैं कहा॥"

उद्धवशतक की भाषा लोकोक्तियों और मुहावरों से समृद्ध है। उद्धवशतक की भाषा में प्राप्त कुछ मुहावरे देखिए—

(क) निसि-दिन काँटे लौं करेजें कसकत है। (कांटे की तरह कसकना)
(ख) दिननि के फेर सौं भयौ है हेर फेर ऐसौ। (दिन के फेर होना)
(ग) नैननि में अब सोई कुँज फिरिबौ करें। (आँखों से घूमना)
(घ) कहै रतनाकर करत टाँय टाँय वृथा। (टाँय-टाँय करना)
(ङ) लौटि पौटि बात को बवण्डर बनावत क्यों।
(बात का बवण्डर करना)

मुहावरों के सफल प्रयोग में रत्नाकर हरिऔध के समकक्ष दिखाई देते हैं। निम्न कवित्त कवि के मुहावरा-कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण है—

"आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इते
बीस बिसे ऊधौ वीर बावन कलाँच ह्वै।
कहै रतनाकर प्रपंच न प्रसारौ गाढ़े
बाढ़े पै रहोगे साढ़े बाईस ही जाँच ह्वै॥
प्रेम अरु जोग में है जोग छठे आठे पर्यौ
एक ह्वै रहै क्यों दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाँच तत्व बहकि बतावत सौ
जैहै तीन तेरह तिहारी तीन पाँच ह्वै॥"

इस कवित्त में मुहावरों का केवल शाब्दिक चमत्कार ही नहीं है अपितु गोपियों के अन्तःस्थित भावों की भी सफल अभिव्यंजना है। उद्धव के ज्ञान

संदेश के प्रति उनका अविश्वास तथा कृष्ण के प्रति दृढ़ और अविचल प्रेम भी प्रकट हुआ है ।

उद्धवशतक में मुहावरों के साथ-साथ लोकोक्तियों का भी प्रयोग है। एक प्रचलित लोकोक्ति है "जब ओखली में सिर दिया फिर मूसलों का क्या डर।" इसी भाव को रत्नाकरजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"जब ब्रज चंद कौ चकोर चित चारु भयौ
बिरह चिंगारिन सों फेरि डरिबौ कहा।"

एक अन्य प्रचलित लोकोक्ति है—**"सब दिन जात न एक समान।"** इस भाव को रत्नाकरजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"कहै रतनाकर न सुख के रहे जो दिन
तो ये दुख-द्वन्द्व की न रातैं रहि जायँगी।"

उद्धवशतक में सूक्तियों का पर्याप्त प्रयोग है। कुछ सूक्तियाँ देखिए—

(क) **"जैहे बनि बगरि न बारिधिता बारिधि की**
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।"

(ख) **"एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहि**
हिय में अनेक मनमोहन बसावौ ना।"

(ग) **"एते बड़े विश्व-मांहि हेरे हूँ न पैये जाहि**
ताहि त्रिकुटी में नैन मूँदि लखिबौ कहौ।"

उद्धवशतक की भाषा की एक अन्य विशेषता उसकी भावानुकूलता है। डा० रसाल ने लिखा है, **"भाषा यहाँ भाव की पूरी सहगामिनी रही है और उससे यही प्राप्त होता है कि भाषा भाव के अनुसार और भाव भाषा के अनुसार चल रहे हैं।"**[1] प्रत्येक शब्द भाव-व्यंजना में सहायक है। रत्नाकरजी की भाषा में यह शक्ति है कि शब्द-योजना द्वारा वर्ण्य-वस्तु अथवा भाव का चित्र खड़ा हो जाता है और उस चित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रेखाएँ भी स्पष्ट हो जाती हैं। जिस काव्य की भाषा भावानुगामिनी नहीं होती वह उत्कृष्ट कोटि का काव्य नहीं कहला सकता। भावानुकूल भाषा ही रसोत्कर्ष में सहायक होती है। इसीलिए संस्कृत आचार्यों ने काव्य-भाषा में प्रसाद, माधुर्य तथा ओज गुण माने हैं। प्रसाद गुण तब होता है जब पदों को सुनते ही उनके

---

१. **उद्धवशतक : भूमिका, डा० रसाल, पृ० ६१।**

अर्थ का बोध हो जाए। प्रसाद गुण युक्त काव्य आस्वादकर्ता के हृदय में वैसे ही व्याप्त हो जाता है जैसे सूखे काष्ठ में अग्नि या स्वच्छ वस्त्र में जल परिव्याप्त हो जाता है। रत्नाकरजी के उद्धवशतक में भावाभिव्यक्ति, सक्षम प्रसाद गुण युक्त भाषा अधिकांशतः प्रयुक्त हुई है। निम्न उदाहरण देखिए जिसमें प्रसाद गुण युक्त शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग है—

"नैननि के आगे नित नाचत गुपाल रहैं
ख्याल रहैं सोई जो अनन्य-रसवारे हैं।
कहै रत्नाकर सो भावना भरीयै रहै
जाके चाव भाव रचै उर में अखारे हैं॥
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जो रहै
तौ तो सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं।
यह अभिमान तौ गवैहैं ना गए हूँ प्रान
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं।"

सुकुमार भावों की व्यंजना करते समय रत्नाकर जी की भावा कोमलता से स्नात हो गई है। उसमें माधुर्य गुण आ गया है जिसमें मीलित वर्णों, टवर्ग तथा लम्बे-लम्बे समासों का अभाव होता है तथा कोमल कान्त पदावली युक्त सानुनासिक वर्णों का आधिक्य होता है। उद्धव के ज्ञानोपदेश को सुन गोपियों की जो दशा होती है, उसका चित्रण कवि ने इसी माधुर्य गुण युक्त भाषा द्वारा किया है—

"सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी कोऊ थानहिं थिरानी है।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी बिकलानी बिथकानी है।"

रत्नाकरजी ने शब्द-युग्मों का प्रयोग करके भाषा को सौन्दर्यशालिनी बनाया है। कभी-कभी शब्द-युग्म हृदय पर ऐसा प्रभाव डालते हैं जैसा बात को विस्तारपूर्वक कहने पर भी नहीं पड़ता है। उद्धवशतक में कवि ने शब्द-युग्मों द्वारा भाव गांभीर्य की सृष्टि की है—

(क) "हा! हा! इन्हें रोकन की टोक न लगावौ तुम।"
(ख) "हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जान लगे।"

(ग) "कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि दौरि नंद पौरि आवन तबै लगीं।"

(घ) "जोग-जोग कबहूँ न जाने कहा जोहि जकौ
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हो।"

उद्धवशतक की भाषा पूर्णरूपेण व्याकरण सम्मत है। उसमें संज्ञा, सर्वनाम, लिंग, वचन, विशेषण, कारक चिन्ह, अव्यय आदि के रूपों में सर्वत्र एक-रूपता है।' उसमें रीतिकालीन कवियों की भाँति 'जु' 'सू' आदि शब्दों की विपुलता नहीं है और न शब्दों की तोड़-मरोड़ तथा ब्रज-भाषा का विकृत रूप ही है। उद्धवशतक में ऐसा कोई वर्ण नहीं प्रयुक्त है जो गुरु होकर लघु रूप में पढ़ा जाये अथवा लघु होकर गुरु रूप में पढ़ा जाये। व्याकरण की दृष्टि से यदि रत्नाकर की भाषा की तुलना उनके पूर्ववर्ती कवियों की भाषा से की जाए तो विदित होगा कि रत्नाकरजी की भाषा में काव्य रचना अधिक सुव्यवस्थित है। रीतिकाल में यद्यपि बहुसंख्यक प्रतिभा-सम्पन्न कवियों ने इस भाषा में काव्य सर्जना की थी तथापि व्याकरण की दृष्टि से उन्होंने भाषा की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया था। च्युत-संस्कृति-दोष, वाक्य-दोष, शब्दों की तोड़-मरोड़ आदि भाषा के 'सामान्य दोष' बन गये थे। परवर्ती कवियों ने प्राचीन कवियों की भाषा ज्यों की त्यों अपना ली, फलतः ये दोष उसमें भी आ गए। रत्नाकरजी ने इस सम्बन्ध में ध्यान दिया और ब्रजभाषा को उसी प्रकार व्याकरण-सम्मत एवं साहित्यिक रूप प्रदान किया, जिस प्रकार द्विवेदीजी ने खड़ी बोली को प्रदान किया था। ब्रजभाषा का स्वरूप स्थिर करने के लिए उन्होंने कुछ नियम बनाये थे तथा अपनी रचनाओं में दृढ़ता-पूर्वक उनका पालन किया था। यही कारण है कि उनके काव्य में व्याकरणगत भूलें इनी-गिनी ही मिलती हैं।

रत्नाकरजी की भाषा का शब्द-भण्डार विस्तृत था। मध्यकालीन हिन्दी कवियों की रचनाओं के अनुशीलन द्वारा उन्होंने ब्रजभाषा का ज्ञान अर्जित किया था। इस विषय में बिहारी, पद्माकर और घनानन्द उनके आदर्श थे। ब्रज-भाषा के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और फारसी आदि विषयों के वे ज्ञाता थे। उनकी 'भाषा' में संस्कृत, अपभ्रंश, अरबी फारसी आदि के शब्दों के साथ ही काशी की प्रान्तीय बोली के शब्द भी मिलते हैं। किन्तु विभिन्न भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करते समय रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा की प्रकृति

का ध्यान सर्वदा रखा है। अन्य भाषाओं के शब्द ब्रजभाषा के साँचे में आकर इस प्रकार ढल गए हैं कि उनका पृथक् अस्तित्व परिलक्षित ही नहीं होता है। उदाहरण के लिए देखिए—

(क) **गुंजनि की माल की मिसाल छवि छावै ना।**

(ख) **मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है।**

(ग) **गरिगौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।**

(घ) **दृगनि हमारे आइ छूटत फुहारे हैं।**

(ङ) **औसर मिलै औ सरताज कछु पूछिहैं तौं।**

उपर्युक्त पंक्तियों में रेखांकित शब्द अरबी-फारसी भाषा के होते हुए भी ब्रजभाषा की कमनीयता एवं सहज सचिक्कणता में घुल-मिलकर उसकी अपनी संपत्ति बन गए हैं।

उद्धवशतक में कुछ ऐसे पूर्वी प्रयोग भी मिलते हैं जो वाराणसी की ओर प्रचलित हैं। काशीवाणी होने के कारण रत्नाकर के काव्य में इसका प्रयोग स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए देखिए—

"चिन्तामनि मंजुल पंवारि धूरि धारनि में।"

पंक्ति में '**पंवारि**' शब्द प्रयुक्त है जिसका अर्थ 'फेंककर या जल में बहाकर' वाराणसी की ओर बोलचाल में प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार—

"उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध, उसासनि में।"

इसमें '**उधिरानी**' शब्द हवा में उड़कर नष्ट होने के अर्थ में आया है। यह शब्द भी काशी की ओर बोलचाल में प्रयुक्त हुआ करता है। किन्तु ये पूर्वी प्रयोग उद्धवशतक की ब्रजभाषा में पूर्णतः घुल-मिल गए हैं और भाषा की सरसता तथा कोमलता में किसी प्रकार का व्याघात नहीं डालते।

उद्धवशतक की भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। देखिए—

(क) **"जासौं जाति विषय-बिषाद की बिवाई बेगि।"**

(ख) **"संपति त्रिलोक की बिलोकन में आवै ना।"**

(ग) **"षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैं कहा।"**

(घ) **"ताहि त्रिकुटी में नैन मूँदि लखिबौ कहौ।"**

(ङ) **"भीषम-प्रवाह ऋतु ग्रीषम बनी रहै।"**

उपर्युक्त पंक्तियों में रेखांकित शब्द संस्कृत के तत्सम शब्द हैं किन्तु इनका प्रयोग ब्रजभाषा के सौन्दर्य का अभिवर्द्धक ही सिद्ध हुआ है, अपकर्षक नही।

उद्धवशतक में हमें शुद्ध ब्रजभाषा का स्वरूप प्राप्त होता है। निम्न कवित्त में इस प्रकार का उदाहरण देखिए—

"जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हें
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोबत की
जोई मुंह आवत सो बिबस बयात हो॥
सोवत में जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौंही तुम आप ही सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग-जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ
ब्रह्म-ब्रह्म कबहुँ बहकि बररात हौ॥"

उद्धवशतक की भाषा का एक विहंगम पर्यावलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रजभाषा का निखरा हुआ रूप इस काव्य-ग्रन्थ में उपस्थित है। रत्नाकरजी प्रतिभाशाली कवि होने के साथ-साथ भाषा मर्मज्ञ भी थे और उनका भाषा-पांडित्य उद्धवशतक में अपनी भव्यता और गरिमा के साथ प्रस्फुटित हुआ है। उद्धवशतक भाषा-सौन्दर्य की दृष्टि से तो एक महत्त्वपूर्ण रचना है ही, पदलालित्य तथा अर्थ-गौरव की दृष्टि से भी उसका महत्त्व कम नहीं है। ब्रजभाषा की प्रकृति ही सुकुमार तथा ललित होती है अतएव ब्रजभाषा में रचे गए इस काव्य में पद-लालित्य का होना स्वाभाविक है। डा० विशम्भर नाथ भट्ट ने लिखा है, "अर्थ गौरव और पद-लालित्य से उनका (रत्नाकर का) काव्य ओतप्रोत है।"[१] 'उद्धवशतक' में मधुर एवं ललित पदावली सर्वत्र ही परिलक्षित होती है। एक उदाहरण देखिए—

"भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज गाँवनि में पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिन की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नन्द-पौरि आवन तबै लगीं।

१. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला, पृ० २४०।

उझकि-उजकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि जबै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ॥"

उद्धव द्वारा ज्ञानोपदेश सुन ब्रज की गोपिकाएँ मृतवत हो जाती हैं। निर्गुण के खण्डन और सगुण के मण्डन में वे जो उक्तियाँ कहती हैं उनमें नारी-सुलभ सरलता निहित है। गोपियों का निम्न कथन भाव-सौन्दर्य और कला-सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर है। सम्पूर्ण पद अत्यन्त ललित शैली में लिखा गया है जो कि पाठकों को मंत्रमुग्ध किए बिना नहीं रहता है—

"आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपै
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौं तौपै अधिक बढ़ावौ ना॥
टूक टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मन-मोहन तौ बसिकै उजार्‌यो मोहि
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना॥"

न केवल पद-लालित्य, अपितु अर्थ-गौरव की दृष्टि से भी उद्धवशतक एक उत्कृष्ट काव्य-रत्न है। रत्नाकरजी ने भाषा की बिम्बाधायक शक्ति के सहारे वस्तु का विम्ब अथवा मूर्ति उपस्थित कर दी है। उन्होंने इसके लिए लक्षणा शक्ति का प्रश्रय ग्रहण किया है। उद्धवशतक की भाषा ऐसे शब्दों से भरी पड़ी है जो वस्तु का मूर्त रूप पाठकों के समक्ष उपस्थित कर देते हैं। भाषा की लाक्षणिकता को बढ़ाने वाले इस प्रकार के कुछ शब्द देखिए—

(क) "फिरत हुते जू जिन कुँजनि में आठौं जाम
नैननि में अब सोई कुँज <u>फिरिबौ</u> करै।"

(ख) "राधा-मुख-मंजुल सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम-रतनाकर हियैं यौं <u>उमगत</u> है।"

(ग) "कहै रतनाकर अचानक <u>चमक</u> उठी
उर घनस्याम कैं अधीर <u>अकुलाने</u> तैं।"

(घ) "गोकुल की गैल-गैल गैल-गैल ग्वालिनि की
गोरस के काज लाज बस कै बहाइबौ।"

(ङ) "घात में लगे है थे बिसासी ब्रजवासी सबै
इनकै अनोखे छल-छन्दनि छनौ नहीं।"

उपर्युक्त रेखांकित शब्द बिम्ब ग्रहण करा के वस्तु को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं।

उद्धव के ज्ञान, योग एवं मुक्ति विषयक उपदेश पर गोपियों का निम्न परिहासजनक व्यंग्य विपरीत लक्षणा का सुन्दर उदाहरण है—

"ल्याए लादि बादि ही लगावन हमारे गरैं
हम सब जानी कहौ सुजस-कहानी ना।
कहै रतनाकर गुनाकर गुबिन्द हूँ कै
गुननि अनन्त बेधि सिमिट समानी ना॥
हाय बिन मोल हूँ बिकी न मग हूँ मैं कहें
तापै बटपार-टोल लोल हूँ लुभानी ना।
केती मिली मुकति बधू बर के कूबर मैं
ऊबर भई जो मधुपुर मैं समानी ना॥"

जिस समय ब्रज से उद्धव वापिस लौटते हैं उस समय उनकी दशा का चित्रण कवि ने बड़े कौशल से किया है। उद्धव का इस प्रकार बिदा माँगना जैसे कोई व्यक्ति हृदय को मींचकर मृत्यु माँगता है, उद्धव का इस प्रकार गमन करना जिस प्रकार उनके हृदय के उल्लास ने गमन किया है, थकी हुई साँस के समान उनका चलना, आँसुओं के समान गिरना तथा उच्छ्वास के समान उठना आदि एक ओर उद्धव के हृदगत भावों का द्योतक हैं और दूसरी ओर कवि-कौशल का परिचायक भी है—

"माँगी बिदा मांगत ज्यों मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लौं।
बिथकित साँस-लौं चलत रुकि जात फेरि
आँसु लौं गिरत पुनि उठत उसास लौं॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भाषा-सौन्दर्य, पद-लालित्य तथा अर्थ-गौरव की दृष्टि से उद्धवशतक एक उत्कृष्ट कृति है। चित्रोपमता, संगीतात्मकता, नादात्मकता, लाक्षणिकता, मधुरता आदि विशेषताओं द्वारा

रत्नाकरजी ने अपनी काव्य-भाषा का शृङ्गार किया है। प्रसाद और माधुर्य गुण की छटा उसमें यत्र-तत्र प्रदर्शित हुई है। शब्द-चयन कवि के पाँडित्य का द्योतक है। भाषा भावानुकूल है। निःसंदेह रत्नाकरजी भाषा-मर्मज्ञ थे और उद्धवशतक उनके भाषा-पांडित्य का उदाहरण है।

प्रश्न ३०—उद्धवशतक के अलंकार-विधान का विवेचन कीजिए।

उत्तर—अलंकार कविता-कामिनी की शोभा के अभिवर्द्धक होते हैं। शब्दालंकार काव्य के अभिव्यक्ति पक्ष को प्राँजल और प्रभावशाली बनाते हैं तथा अर्थालंकार उसकी अनुभूतियों के उत्कर्ष में सहायक होते हैं। अलंकार का अर्थ है आभूषण अथवा गहना। जिस प्रकार रूपवती नारी अलंकार-धारण करके और अधिक मनोमुग्धकारी प्रतीत होने लगती है उसी प्रकार कविता-कामिनी भी अलंकार धारण कर अभिनव आकर्षण से संयुक्त हो जाती है। किन्तु जिस प्रकार कुरूपा भले ही कितने भी आभूषण धारण करले, कुरूपा ही रहेगी, उसी प्रकार आन्तरिक सुषमा से रहित काव्य भी केवल अलंकारों से आकर्षक नहीं बन सकता। कविता कामिनी अपने सहज स्वाभाविक सौन्दर्य से अनुप्राणित होने पर ही अलंकारों द्वारा और अधिक आकर्षक बनती है। केवल शब्द-क्रीड़ा एवं पाँडित्य प्रदर्शन के लिए अलंकारों का प्रयोग कविता के रसोत्कर्ष में बाधक होता है।

कवि को "**कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः**" कहा गया है। उसकी कारीगरी को विधाता की कारीगरी के समकक्ष ठहराया गया है। ऐसा इसीलिए कहा गया है क्योंकि कवि उन भावनाओं और अनुभूतियों को भी मूर्त रूप देने में समर्थ है जो अपनी सूक्ष्मता के कारण साधारण जनता की अनुभूति के परे हैं। इस कार्य में कवि अलंकारों की सहायता लेता है। कवि का अलंकार-विधान वर्ण्य-विषय को सामान्य पाठक के लिए भी इन्द्रिय-ग्राह्य बना देता है। अलंकारों की सहायता से कवि अपनी अनुभूतियों को पाठक के लिए जितना ग्रहणीय बनाता है, उतना भाषा का कोई अन्य साधन नहीं बना पाता। जो कवि इसी उद्देश्य से अलंकारों का प्रयोग करता है, वही सच्चा कवि है। इसके विपरीत जो कवि पाँडित्य-प्रदर्शन के लिए अलंकार की प्रदर्शनी लगा देता है, उसे रससिद्ध कवीश्वर नहीं कहा जा सकता। निश्चय ही उस कवि ने अलंकारिक पथ का अतिक्रमण किया है। रसोद्रेक और भावोत्कर्ष के लिए अलंकारों का उपयोग करना सच्चे और रससिद्ध कवीश्वर का कार्य है।

उद्धवशतक के आधार पर रत्नाकर जी के अलंकार-विधान पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि इस काव्य में अलंकार भावानुभूति की व्यंजना के सहायक रहे हैं। डा० वी० एन० भट्ट ने लिखा है, "**अलंकार-योजना की दृष्टि से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि शब्द-कला के इस विचक्षण कलाकार को अपने उद्देश्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।**"[1] डा० रसाल ने भी लिखा है, "**हमारा तो यही विचार है कि अलंकारों के सदुपयोग में रत्नाकरजी को इस काव्य में सर्वथा सराहनीय सफलता मिली है।**"[2]

उद्धवशतक में भावों की मार्मिक व्यंजना के लिए रत्नाकरजी ने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है।

शब्दालंकार—शब्दालंकारों में पहला नाम अनुप्रास का है। उद्धवशतक में छेकानुप्रास तथा वृत्यनुप्रास की छटा सर्वत्र ही प्रदर्शित हुई है। देव, घनानन्द और पद्माकर के काव्य का अनुशीलन करने के कारण उनकी भाषा में सानुप्रासिकता स्वतः ही आ गई है। कुछ उदाहरण देखिए—

(क) **जासौं जाति विषय-विषाद की बिवाई वेगि**
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबौ करै।

(ख) "**जैहे बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की**
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।"

यमक अलंकार का प्रयोग रत्नाकरजी ने कम किया है किन्तु निम्न पंक्तियों में 'बारन' शब्द के दो अर्थ—निषेध तथा हाथी—होने के कारण यमक की सुन्दर छटा है—

"**बारनि कितेक तुम्हैं बारन कितेक करैं**
बारन-उबारन ह्वै बारन बनौ नहीं।"

शब्दालंकारों में श्लेष रत्नाकरजी का प्रिय अलंकार है। उद्धवशतक के सभी श्लेष काव्य-सौन्दर्य के अभिवर्द्धक और सार्थक हैं। कवि ने अपने नाम का भी कहीं-कहीं श्लिष्ठ प्रयोग किया है। सांगरूपकों के साथ प्रायः श्लेष की सुन्दर योजना है। कुछ विशेष शब्द भी श्लिष्ट हैं। इस प्रकार इस अलंकार का उद्धवशतक में व्यापक प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण कवित्त में श्लेष द्वारा

---

१. **रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला**, पृ० १८९

२. **उद्धवशतक : भूमिका, डा० रसाल**, पृ० ७९।

आदि से अन्त तक दो अर्थों का निर्वाह करना तथा भाव-सौन्दर्य में किसी प्रकार की कमी न आने देना प्रतिभाशाली कवि का ही कार्य है। निम्न कवित्त को हम उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं—

"रस के प्रयोगनि के सुखद सुजोगनि के
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत न सुदर्सन हूँ यौं सुधि सिराई है॥
करत उपाय न सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यों अनारिनि कौ भरत कन्हाई है।
ह्याँ तौ विषमज्वर-वियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई है॥

इस कवित्त में रस, जोगनि, सुदर्सन, नारिनि, अनारिनि, पाती आदि शब्द श्लिष्ट हैं और इनके कारण सम्पूर्ण कवित्त श्लेषानुप्राणित हो उठा है। श्लेष का कवि ने आदि से अन्त तक बड़ा सुन्दर निर्वाह किया है। षट्-ऋतु-वर्णन के सभी कवित्तों में भी श्लेष की प्रधानता है।

रत्नाकर ने उद्धवशतक में अपने नाम का भी कहीं-कहीं श्लिष्ट प्रयोग किया है—

(क) राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम-रत्नाकर हियैं यौं उमगत है।
(ख) रस-रत्नाकर स-नेह निरवार्‌यौ जाहि
ता कच कौ हाय जटा-जूट बरिबौ कहा।

उक्त दोनों उदाहरणों में 'रत्नाकर' शब्द का एक अर्थ सागर तथा दूसरा कवि का नाम है।

उद्धवशतक में रत्नाकरजी ने श्लिष्ट शब्द भी प्रयुक्त किये हैं, जैसे—

लौटि-पौटि बात कौ बवण्डर बनावत क्यौं
हिय तें हमारे घनस्याम हटिहैं नहीं।

यहाँ पर '**बात**' तथा '**घनश्याम**' शब्द में श्लेष है। बात के दो अर्थ—योगचर्चा तथा वायु हैं तथा घनस्याम के दो अर्थ—कृष्ण तथा बादल हैं।

शब्दालंकारों में श्लेष के बाद पुनरुक्ति तथा वीप्सा रत्नाकरजी के प्रिय अलंकार हैं। पुनरुक्ति में आवृत्ति से वक्तव्य को पुष्ट किया जाता है और

वीप्सा में मन का एक भाव अकस्मात् बार-बार कहा जाता है। उद्धवशतक से इन दोनों अलंकारों के उदाहरण देखिए—

पुनरुक्ति—(क) कहै रत्नाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि दौरि नन्द-पौरि आवन तबै लगीं।
(ख) लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरैहै हाय
धरि-धरि ध्यान नीर कब लगि धारि हैं।
(ग) टूक टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारो हाय
चूकि हूँ कठोर बैन पाहन चलावौ ना।

वीप्सा—(क) हा ! हा ! इन्हैं रोकन कौं टोक न लगावौ तुम।
(ख) कहै रतनाकर कहत सब हा हा खाई।

अर्थालंकार—अर्थालंकारों में रत्नाकरजी का सर्वप्रिय अलंकार साँगरूपक है। कवि का इस अलंकार की योजना पर जैसा असाधारण अधिकार है वैसा बहुत कम कवियों का मिलेगा। साँगरूपक का आदि से अन्त तक सफल निर्वाह और भाव-सौन्दर्य की रक्षा प्रतिभाशाली कवि की लेखनी द्वारा ही सम्भव है। रत्नाकर जी ऐसे ही प्रातिभ कवि थे। 'उद्धवशतक' में उन्होंने निम्न कवित्त में **साँगरूपक** की सुन्दर योजना की है—

"राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम-रतनाकर हियै यौं उमगत है।
त्यौंही बिरहातप प्रचण्ड सौं उमंडि अति
ऊरध उसास की झकोर यौं जगत है॥
केवट विचार कौ विचारौ पचि हारि जात
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है।
करत गम्भीर धरि-लंगर न काज कछू
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है॥"

प्रस्तुत कवित्त में साँगरूपक का अत्यन्त सुन्दर निर्वाह हुआ है। चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, इस प्राकृतिक घटना को लेकर कवि ने साँगरूपक की सुन्दर योजना की है। राधा के मुख रूपी चन्द्रमा के स्मरण मात्र से कृष्ण के हृदय में प्रेम-पारावार उमड़ने लगता है। विरह-ताप के प्रचण्ड वेग के कारण उच्छ्वासों के झंझावात उठने लगते हैं। फलस्वरूप विचार रूपी केवट किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है और विवेक रूपी गुण का

पाल आकाशगामी हो जाता है। धैर्य रूपी लंगर भी कुछ काम नहीं करता और मन रूपी जहाज डूबने लगता है।

साँगरूपक के अतिरिक्त उद्धवशतक में रूपक अलंकार के अन्य भेद भी मिलते हैं। **निरवयव रूपक** का चमत्कार निम्न उदाहरणों में देखिए—

(क) **"ऊधौ मुक्ति माल वृथा मढ़त हमारैं गरैं**
कान्ह बिना तासौं कहौं काकौ मन मोहैगी।"

(ख) **"ज्ञान-मार्तण्ड के सुखाए मनु मानस कौ**
सरस सुहाए घनस्याम करिबै लगे।"

(ग) **"आनि हिचकी ह्वै गरैं बीच सकस्यौंई परैं**
स्वेद ह्वै रस्यौई परैं रोम-झंझरीन सौं
आनन-दुवार तैं उसाँस ह्वै बढ़्योई परैं
आँस ह्वै कढ़्योई परैं नैन खिरकीन सौं।"

परम्परित रूपक का उदाहरण निम्न पंक्तियों में देखिए—

"टूक-टूक ह्वै है मन मुकुर हमारौ हाय
चूकि हू कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोंहि
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना॥"

दर्पण के खण्ड-खण्ड हो जाने पर प्रत्येक टुकड़े में प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगता है तथा एक ही विम्ब के अनेक प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होने लगते हैं, इस सामान्य तथ्य को लेकर कवि रत्नाकर ने उपर्युक्त परम्परित रूपक की योजना की है। उद्धव के योग के कठोर वचन रूपी पाहन से गोपियों का हृदय रूपी दर्पण चूर-चूर हो गया है। वे सोचती हैं कि एक मनमोहन ने हृदय में बसकर तो हमारी यह दशा कर दी है, हृदय-मुकुर के चूर-चूर हो जाने पर कृष्ण का बिम्ब जब प्रत्येक टुकड़े में प्रतिबिम्बित होने लगेगा तो हमारी न जाने क्या दशा होगी ? यहाँ प्रथम आरोप दूसरे आरोप का कारण है, अतएव परम्परित रूपक है।

'उद्धवशतक' में हमें उपमा, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, स्मरण, परिकरांकुर, विनोक्ति आदि अलंकार भी मिलते हैं। **'उपमा'** अलंकार के कुछ उदाहरण देखिए—

(क) "पाइ बहे कंज में सुगन्ध राधिका को मंजु
ध्यान कदली-बन मतंग लौं मताए हैं।"

(ख) "ऊधौं ब्रज-वास के बिलासनि कौ ध्यान धस्यो
निसि-दिन कांटे लौं करेजैं कसकत है।"

(ग) "बिथकित साँस लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौ गिरत पुनि उठत उसाँस लौं।"

निम्न कवित्त अतिशयोक्ति अलंकार का एक सुन्दर उदाहरण है जिसमें राधा के आँसुओं का बढ़ा-चढ़ा वर्णन अभिप्रेत है—

"हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैं
उमगि तपन तैं तपाक करि धावै ना।
कहे रतनाकर त्रिलोक-ओक-मंडल में
बेगि ब्रह्म द्रव उपद्रव मचावै ना॥
हर कौं समेत हर-गिरि के गुमान गरि
पल में पतालपुर पैठन पठावै ना।
फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना।"

'स्मरण' अलंकार की छटा अधोलिखित कवित्त में देखिए—

"न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सौं नेकु नासिक लगायौ है॥
त्यौं ही कुछ धूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाए परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए धरी द्वैक में जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा नाम कीर जब औचक सुनायौ है॥"

यमुना में स्नान करते समय मुरझाए हुए कमल को देख कृष्ण को कमल-मुखी राधिका का मुरझाया मुखर कमल स्मरण हो आता है। उस कमल की गंध में उन्हें पद्मिनी नायिका राधा के शरीर की सुवास का साम्य मिलता है। निःसन्देह स्मरण अलंकार की बड़ी सुन्दर योजना है।

भ्रांतापह्नुति का उदाहरण गोपियों के इस कथन में है—

''अण्डे लौं टिटेहरी के जैहै जू बिबेक बहि,
फेरि लहिबे की वाके तनक न राह है।
यह वह सिन्धु नाहिं सोखि जो अगस्त्य लियौ,
ऊधो यह गोपिन के प्रेम को प्रवाह है।।''

''दृष्टांत'' अलंकार में उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव दिखाया जाता है। निम्न पंक्तियों में इस अलंकार की योजना है—

''असत असार या पसार मैं हमारी जान
जन भरमाए सदा ऐसे रहिबौ करैं।
जागत औ पागत अनेक परपंचनि मैं
जैसे सपने में अपने को लहिबौ करैं।।''

इन पंक्तियों में 'असत असार पसार' उपमेय है, 'सपने' उपमान हैं और 'भरमाए रहना' व 'अनेक परपंचों में पगना' साधारण धर्म है जिसमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव विद्यमान है।

निम्न पंक्तियों में **'परिकरांकुर'** अलंकार है—

''जयति जसोमति के लाडिले गुपाल जन
रावरीं कृपा सौं सो सनेह लहिबौ करै।''

'गुपाल' शब्द साभिप्राय विशेष्य होने के कारण परिकरांकुर है।

'विरोधाभास' अलंकार की छटा निम्न पक्तियों में देखिए—

''ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान मूरि
त्यौं-त्यौं धंसे जात मन-मुकुर हमारे में।''

'विभावना' अलंकार वहाँ होता है जहाँ बिना कारण के कार्य का उल्लेख हो। निम्न पंक्तियों में विभावना अलंकार है—

''बिनु घनस्याम धाम धाम ब्रज-मंडल मैं
ऊधो नित बसति बहार बरसा की है।''

'असंगति' अलंकार में कारण कहीं तथा कार्य कहीं होता है। 'उद्धवशतक' में इसे निम्न पंक्तियों में देखिए—

''नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कै तीर बह्यो
धरि बह्यो ऊधो उर-अंचल रसाने तैं।''

'**विषम**' अलंकार की योजना निम्न पंक्तियों में है—

"कर बिनु कैसे गाय दुहिहै हमारी वह
पद बिनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइ है।
कहै रतनाकर बदन-बिनु कैसे चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइ है।।"

'**देहरी दीपक**' अलंकार की योजना इन पंक्तियों में देखिए—

"ले गयौ अक्रूर क्रूर तब सुखमूर कान्ह
आए तुम आज प्रान-ब्याज उगहन कौ।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्धवशतक में कविवर रत्नाकर ने अलंकारों की सुन्दर योजना की है। ये अलंकार भावों का साकार चित्र उपस्थित करने में सहायक हुए हैं। केवल एक स्थल पर उन्होंने रीतिकालीन मनोवृत्ति से प्रभावित होकर **अतिशयोक्ति** अलंकार द्वारा भाव पक्ष को दुर्बल तथा चमत्कार पक्ष को सबल बनाया है—

"सूखि जाति स्याही लेखनी कै नैंकु डंक लागै
अंक लागै कागद बररि बरि जात है।"

अन्यत्र सभी स्थलों पर अलंकार भाव-सौन्दर्य के अभिवर्द्धक सिद्ध हुए हैं। अलंकारों का प्रयोग कवि ने काव्य के लिए किया है, काव्य को अलंकारों के लिए नहीं लिखा। निःसंदेह रत्नाकरजी को अलंकार योजना की दिशा में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

प्रश्न ३१—"उद्धवशतक में प्रयुक्त साँगरूपक अत्यन्त मार्मिक हैं। उनमें प्रस्तुत अप्रस्तुत का अत्यन्त सुन्दर सामञ्जस्य है। भावाभिव्यंजन की दृष्टि से वे उच्चकोटि के हैं और रत्नाकर के सूक्ष्म निरीक्षण और उनकी कला विषयक सुरुचि के पूर्ण परिचायक हैं।" उपयुक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की यथार्थता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—अलंकार कविता-कामिनी की शोभा के अभिवर्द्धक हैं। परन्तु यदि कवि अलंकारों के मोह में पड़कर भाव-सौन्दर्य की अवहेलना करने लगता है तो वह काव्य को अपकर्ष प्रदान करता है। रस-सिद्ध कवि अपने काव्य में अलंकारों का औचित्यपूर्ण प्रयोग करते हैं और तभी उनका काव्य जन-जन के गले का हार बन जाता है। रत्नाकरजी ने अपने 'उद्धवशतक' में

अलंकारों का काव्योचित प्रयोग किया है। उनका सर्वप्रिय अलंकार साँगरूपक है। प्रस्तुत अप्रस्तुत का मणि-काँचन संयोग इन साँगरूपकों में परिलक्षित होता है। ये साँगरूपक भाव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में सहायक हैं और कवि के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उत्कृष्ट कलाभिरुचि के परिचायक हैं। उद्धवशतक में प्रयुक्त साँगरूपकों का एक विहंगम पर्यावलोकन इस कथन की सत्यता को सिद्ध कर देगा।

कृष्ण मथुरा में जाकर राज्य-कार्यों में व्यस्त हो गए, किन्तु इससे ब्रज के प्रति उनका अनुराग कम न हुआ। कार्याधिक्य ने उनकी प्रीति भावना को दबा अवश्य दिया था पर वह कम रंचमात्र भी न हुई थी। एक दिन यमुना में स्नान करते समय मुरझाये हुए कमल को देख कृष्ण को विरह में मुरझाई राधा की स्मृति हो आती है और क्षण मात्र में ब्रज का ध्यान उन्हें इतना विह्वल और व्याकुल बना देता है कि वे मूर्च्छित हो जाते हैं। चेतनता प्राप्ति के उपरान्त भी उनकी व्यथा कम नहीं होती। अपने अन्तरंग सखा उद्धव से वे राधा के सम्बन्ध में कहते हैं कि राधा का स्मरण आ जाने पर हृदय को किसी भाँति धैर्य नहीं प्राप्त होता—

"राधा-मुख-मंजुल सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम-रतनाकर हियैं यौं उमगत हैं।
त्यौं ही विरहातप प्रचण्ड सौं उमंडि अति
ऊरध उसास की झकोर यौं जगत है॥
केवट विचार कौ बिचारौ पचि हारि जात
होत गुनपाल ततकाल नभ-गत हैं।
करत गंभीर धीर लंगर न काज कछू
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है।"

उद्धव शतक का यह साँगरूपक एक ओर राधा के प्रति कृष्ण के हृदय की अनुराग भावना का व्यंजक है तो दूसरी ओर कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक भी है। चन्द्रमा के आकर्षण से समुद्र में ज्वार-भाटा आता ही रहता है, इसी प्राकृतिक घटना के आधार पर यह साँगरूपक निर्मित है। राधा का मुख चन्द्रमा है और उसके ध्यान मात्र से कृष्ण का हृदय सागर प्रेम से उमड़ने लगता है। विरह के ऊर्ध्व उच्छ्वासों से विचार रूपी केवट किंकर्तव्यविमूढ़ होने लगता है, धैर्य रूपी लंगर कुछ काम नहीं करता, विवेक रूपी गुण का पाल

आकाश में उड़ने लगता है। और हृदय रूपी जहाज डूबना ही चाहता है। निःसन्देह यह अत्यन्त उत्कृष्ट साँगरूपक है और इसमें कवि ने प्रस्तुत अप्रस्तुत का अत्यन्त सुन्दर समन्वय उपस्थित किया है।

उद्धव-शतक के साँगरूपक एक से एक श्रेष्ठ हैं। साँगरूपक का निर्माण वास्तव में एक कठिन कार्य है और प्रतिभावान् कवि ही इनकी सफल योजना कर सकता है। आदि से अन्त तक इसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का सफल निर्वाह करना पड़ता है। ऐसा करते समय भाव-सौन्दर्य को बनाए रखना कवि के लिए अत्यंत कठिन कर्म हो जाता है। किन्तु रत्नाकरजी के साँगरूपक कुछ को छोड़कर प्रायः सभी भाव-परिपोषक सिद्ध हुए हैं। एक अन्य उदाहरण देखिए—

"हेत खेत माँहि खोदि खाईं सुद्ध स्वारथ की,
प्रेम तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीं।
करनी प्रतीति-काज करनी बनावट की,
राखि ताहि हेरि हियैं हौंसनि सनौ नहीं॥
घाते में लगे हैं ये बिसासी ब्रजबासी सबैं,
इनके अनोखे छल छन्दनि छनौ नहीं।
बारनि कितेक तुम्हैं बारन कितेक करैं
बारन-उबारन ह्वै बारन बनौ नहीं॥"

इस साँगरूपक में उद्धव कृष्ण को समझाते हैं कि ब्रजवासियों के प्रेम के कपट जाल में मत फंसो। हाथी पकड़ने की रीति का आश्रय लेकर इस साँग-रूपक की योजना हुई है। हाथी पकड़ने वाले किसी खेत में खाई खोद देते हैं और उसे तिनकों से ढक देते हैं। हाथी को विश्वास दिलाने के लिए कि यहाँ समतल भूमि है, वे एक बनावटी हथिनी खड़ी कर देते हैं और समीप छिपकर बैठ जाते हैं। जब हाथी वहाँ आकर खाई में फंस जाता है तो वे उसे पकड़ लेते हैं। इस अप्रस्तुत का प्रस्तुत से इस साँगरूपक में कवि ने अत्यन्त सुन्दर समन्वय किया है। ब्रजवासियों ने शुद्ध स्वार्थ भावना की खाई खोद रखी है उसे अनुराग के तृणों से ढक रखा है, बनावटी कार्यों की हथिनी खड़ी कर दी है और कृष्ण को फंसाने के लिए छिपकर बैठे हुए हैं। उद्धव कृष्ण से इस जाल से सावधान रहने का अनुरोध करते हैं। निःसंदेह यह साँगरूपक अत्यन्त उत्कृष्ट

कोटि का है और कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति तथा रचना कौशल का परिचायक है। भावों का सौंदर्य भी इससे द्विगुणित हो उठा है।

उद्धवशतक का निम्न साँगरूपक भी अपनी भाव-प्रवणता और प्रस्तुत-अप्रस्तुत के सामञ्जस्य के कारण उत्कृष्ट बन गया है। गोपियाँ कृष्ण को अपने हृदय-मंदिर से निर्वासित करके ब्रह्म को वहाँ बसाना नहीं चाहतीं। यह विश्वासघात उनसे करते न बनेगा—

"नैननि के नीर औ उसीस सौं पुलकावलि
जाहि करि सीरौ सीरी बातहि बिलासैं हम।
कहै रतनाकर तपाई बिरहातप की
आवन न देतिं जामैं विषम उसासैं हम।।
सोई मन-मन्दिर तपावन के काज आज
रावरे कहे तैं ब्रह्म-जोति लैं प्रकासैं हम।
नंद के कुमार सुकुमार कौ बसाइ यामैं
ऊधौ अब आइ कै बिसास उदबासैं हम।।"

इस साँगरूपक में भी प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सुन्दर समन्वय है! जिस प्रकार खस की टट्टी और जल-सिंचन से किसी कक्ष को शीतल किया जाता है और उसमें गर्म वायु तथा तीव्र प्रकाश को प्रविष्ट नहीं होने देते जिससे वह गर्म न हो जाये उसी प्रकार गोपियों ने अपने मन-मंदिर में अधिष्ठित कृष्ण को सुख पहुँचाने के लिए नयनों के जल और रोम-राजि के खस से उसे शीतल किया है तथा वियोग की तीव्र उच्छ्वासें भी प्रविष्ट नहीं होने दी हैं। अब कृष्ण को वहाँ से निकालकर वे विश्वासघात कैसे करें? गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम इस सांगरूपक में व्यंजित है।

गोपियाँ कृष्ण के विरह में उसी प्रकार दुःखी और असहाय हो उठी हैं जिस प्रकार मंझधार में पड़ा हुआ व्यक्ति होता है। आशा की क्षीण डोर के सहारे ही वे अब तक जीवित हैं पर उद्धव योग की कुठार लेकर उस डोर को भी काटने आए हैं। विरह-व्यथिता ब्रजाङ्गनाओं की अन्तर्बाह्य अवस्था का इस साँगरूपक में अत्यन्त मार्मिक उद्घाटन हुआ है—

"प्रथम भुराई चाय नाव पै चढ़ाई नीकैं
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं।

प्रेम-रतनाकर की तरल तरंग पारि
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी तैं ॥
और न प्रकार अब पार लहिबै कौ कछू
अटकि रही है एक आस गुनवारी तैं ।
सोऊ तुम आइ बात बिषम चलाइ हाय
काटन चहत जोग-कठिन कुठारी तैं ॥"

उद्धव शतक के सांगरूपक उत्कृष्टता की दृष्टि से बेजोड़ हैं । वे भावों के सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं और भाव-लोक की सुन्दरता में चार चाँद लगा देते हैं । कवि ने आदि से अन्त तक उसमें प्रस्तुत अप्रस्तुत का सफल निर्वाह किया है । उदाहरण के लिए निम्न साँगरूपक भी देखा जा सकता है जिसमें वियोगिनी गोपियाँ वर्षा ऋतु से अपनी वियोग दशा का साम्य प्रदर्शित करते हुए उद्धव से कहती हैं कि—

"रहति सदाई हरियाई हिय घायनि मैं
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है ।
पीव-पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति हैं
सोई रत्नाकर पुकार पपिहा की है ॥
लागी रही नैननि सौं नीर की झरी औ ।
उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है ।
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रज-मंडल मैं
ऊधो नित बसति बहार बरसा की है ।"

प्रस्तुत साँगरूपक में गोपियों की विरह दशा का वर्षा ऋतु से अत्यन्त सफल साम्य प्रदर्शित है । वर्षा ऋतु में सर्वत्र हरियाली छाई रहती है, पुरवाई चलती है, पपीहा 'पी-पी' पुकारता है, पानी की झड़ी लगी रहती है और बिजली चमकती है । गोपियों के हृदय के घाव भी सदैव हरे बने रहते हैं । वे ऊर्ध्व उच्छ्वासें लेती रहती हैं पीड़ा से भरकर प्रियतम कृष्ण को याद करती हैं, नेत्र अश्रु-प्लावित रहते हैं हृदय में कसक उठती है । वर्षा तो आकाश में काले बादलों के छा जाने पर ही होती है पर ब्रज में कृष्ण के बिना सदैव वर्षा बनी रहती है । यह साँगरूपक गोपियों की विरह-दशा का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित कर रहा है । प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सफल समन्वय भी इसमें है और कवि का प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण भी प्रकट है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उद्धव-शतक में प्रयुक्त साँगरूपक अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं। डॉ विशम्भर नाथ भट्ट ने सत्य ही लिखा है, **"साँगरूपक के प्रयोग में रत्नाकर जी अद्वितीय हैं।"**[1] साँगरूपक की योजना द्वारा कवि ने एक ओर भावों को और अधिक मर्मस्पर्शी बनाया है तो दूसरी ओर अपनी कला-निपुणता का परिचय भी दिया है। श्री रामप्रकाश दीक्षित के शब्दों में, **"सांगरूपकों के संगठन में रत्नाकर ने जिस अद्‌भुत प्रतिभा और कौशल का सहारा लिया है, उससे यह सहज ही कहा जा सकता है कि रत्नाकर साँगरूपक सम्राट हैं।"**[2]

प्रश्न ३२—"छन्दों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकरजी की अधिकारपूर्ण कलम स्वीकार की गई है; विशेषतः इनके कवित्त बेजोड़ हुए हैं।" उद्धव-शतक से उपयुक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—छन्द कविता में संगीतात्मकता की सृष्टि करके काव्यानंद को द्विगुणित करने का कार्य करते हैं। छन्दोबद्ध कविता अधिक प्रभावोत्पादक, मर्मस्पर्शी तथा मधुर होती है। छंद के अभाव में कविता की सरसता, माधुर्य और मर्मस्पर्शिता कम हो जाती है। रत्नाकरजी एक ऐसे रससिद्ध कवि थे जिन्होंने अपने काव्य में रसानुकूल एवं भावानुकूल छंद योजना करके अपनी रचना-चातुरी का परिचय दिया है। कवित्त, सवैया, रोला और दोहा उनके प्रिय छंद थे। कवित्त अथवा घनाक्षरी छंद का तो उन्होंने जैसा मंजा हुआ रूप प्रदर्शित किया है वैसा इने-गिने कवि ही कर सके हैं। डॉ० रसाल ने लिखा है, **"हम कह सकते हैं कि यदि कवित्त लिखने में 'पदमाकर' के अतिरिक्त और किसी ने ऐसी सफलता प्राप्त की है तो वह रत्नाकर ही हैं।"**[3] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का भी अभिमत है **"छन्दों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकरजी की अधिकारपूर्ण कलम स्वीकार की गई है—विशेषतः इनके कवित्त बेजोड़ हुए हैं।"**[4]

---

१. रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला—पृ० १९२।

२. उद्धव-शतक—रामप्रकाश दीक्षित—पृ० १३८।

३. **उद्धवशतक प्राक्कथन—डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल,** पृ० ६७।

४. **हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी** पृ० २८।

उद्धवशतक की रचना घनाक्षरी या कवित्त छंद में हुई है। प्रश्न यह है कि रत्नाकरजी ने इसी छन्द को उद्धवशतक के लिए क्यों चुना? उत्तर देते समय दो तथ्य हमारे सामने आते हैं—१. मुक्तक काव्य के लिए यह छन्द अत्यन्त उपयुक्त माना जाता है और उद्धवशतक एक मुक्तक काव्य है। २. शृङ्गार तथा वीर रस के लिए यह छन्द अच्छा माना गया है और उद्धवशतक वियोग-शृङ्गार से ओत-प्रोत रचना है। सेनापति, देव, पद्माकर, घनानंद, भूषण आदि मध्यकालीन कवियों ने शृङ्गार तथा वीर रस की भावाभिव्यक्ति के लिए यही छन्द व्यवहृत किया था। रत्नाकरजी ने जिस समय साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय समस्यापूर्तियों का बड़ा जोर था। स्वयं रत्नाकरजी भी बड़े शौक से समस्यापूर्ति किया करते थे। ऐसा करते समय कवित्त छन्द ही सबसे अधिक उपयुक्त रहता है क्योंकि इसमें विषय का सम्पूर्ण सौन्दर्य व चमत्कार अंतिम चरण में केन्द्रीभूत रहता है और यही समस्यापूर्ति की विशेष बात रहती है। इन सब कारणों से कवित्त रचना की ओर आरम्भ से ही रत्नाकरजी उन्मुख हुए। रीतिकालीन कवियों का प्रभाव, आधुनिक युग की समस्यापूर्तियों का प्रभाव आदि उन पर पड़ा और निरन्तर अभ्यास से उनकी कवित्त-रचना परिष्कृत होती चली गई। उद्धवशतक में हमें उसका यही निखरा हुआ रूप देखने को मिलता है।

कवित्त छन्द की रचना के विषय में छंद शास्त्र का नियम यह है कि यह वर्णिक वृत्त है और इसमें ८, ८, ८ तथा ७ के क्रम से १६ और १५ पर विराम देते हुए ३१ वर्ण लिखे जाते हैं तथा गति पर विशेष ध्यान दिया जाता है—

"आठ आठ पै तीन जति, बहुरि सात पै एक।
अन्त माँहि नियमित गुरु कहि घनाक्षरी टेक॥"

छंद-शास्त्र में घनाक्षरी के लिए ३१ वर्णों का नियम सामान्य नियम है, निश्चित नियम नहीं। ३० से लेकर ३३ वर्ण तक के चरण इसमें हो सकते हैं। रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में ३१ और बत्तीस वर्णों के कवित्तों को व्यवहृत किया है। वे लिखते हैं—

"एकतिस बत्तिस वर्ण कौ है घनाक्षरी छन्द।
प्रथम कहावत मनहरण द्वितीय रूप सुखकन्द॥

सोलह पर जति कीजिए, बहुधा भरकर प्रेम।
अन्त माँहि मनहरण के, गुरु राखौ करि नेम ।।"

अर्थात् घनाक्षरी छन्द ३१ और बत्तीस वर्ण का होता है। प्रथम को मनहरण और द्वितीय को रूपघनाक्षरी कहते हैं। मनहरण में १६, १५ के विराम से ३१ वर्ण होते हैं और अन्त में अनिवार्य रूप से गुरु होता है। रूप घनाक्षरी में १६, १६ के विराम से ३२ वर्ण होते हैं और अन्त में गुरु-लघु रहता है। कवित्त के इन दो रूपों के अतिरिक्त उद्धवशतक में 'जलहरण' कवित्त भी कुछ स्थानों पर व्यवहृत हुआ है जिसमें १६, १६ के विराम से ३२ वर्ण हैं और अन्त में दो लघु रहते हैं। संगीतात्मकता, माधुर्य और मार्मिकता से आपूर्ण इन कवित्तों के उद्धवशतक से उदाहरण देखिए—

मनहरण— "जासौं जाति विषय विषाद की बिवाई बेगि
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबौ करै।
कहै रतनाकर कवित्त बर-व्यंजन मैं
जासौं स्वाद सौगुनौ रुचिर रहिबौ करै।।
जासौं जोति जागति अनूप मन-मन्दिर में
जड़ता-विषम-तम-तोम दहिबौ करै।
जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौं सो सनेह लहिबौ करै।।"

रूपघनाक्षरी— "ब्रज-रज रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाए लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत।।
कीरति-कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत।।"

जलहरण— "सुधि बुधि जाति उड़ी जिनकी उसाँसनि सौं
तिनकौं पठायौ कहा धीर धरि पाती पर।
कहै रतनाकर त्यौं बिरह-बलाय ठाइ
मुहर लगाइ गए सुख-थिर-थाती पर।।

और जो कियौ सौ कियौ ऊधौ पै न कोऊ बियौ
ऐसी घात घूनी करै जनम-संघाती पर ।
कूबरी की पीठ तें उतारि भार-भारी तुम्हैं
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर ॥"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उद्धवशतक के कवित्त बेजोड़ हैं। संगीतात्मकता और माधुर्य का इनमें अनुपम सन्निवेश है। छन्द-सौष्ठव की दृष्टि से उद्धवशतक रत्नाकरजी की एक सफल कृति है। वियोग श्रृङ्गार की सफल अभिव्यक्ति कवि ने कवित्तों के माध्यम से की है। उद्धवशतक का प्रत्येक कवित्त एक जगमगाता हुआ रत्न है जिसका आलोक हमें चमत्कृत और मुग्ध करता है। निम्नलिखित कवित्त में उद्धव के ब्रजागमन पर गोपिकाओं की उत्सुकता भरी दशा वर्णित है जो कि अत्यन्त चित्रात्मक और प्रभावपूर्ण बन गई है—

"भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गावँनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नंद पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रत्नाकरजी को अपने कवित्तों में असाधारण सफलता मिली है। संगीतात्मकता और कारीगरी की दृष्टि से ये कवित्त बेजोड़ हैं। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने सत्य ही लिखा है, "आधुनिक खड़ी बोली में कवित्त छन्द बने हैं और बन रहे हैं परन्तु उन्हें रत्नाकरजी के कवित्तों से मिलाते ही दोनों का भेद स्पष्ट हो जाता है। नवीन हिन्दी के कवियों को 'रत्नाकर' की यह कला वर्षों सीखने पर भी आ सकेगी या नहीं इसमें सन्देह ही है।"[1]

---

१. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—पृ० २८।

प्रश्न ३३—उद्धवशतक की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

प्रश्न ३४—रत्नाकरजी कृत उद्धवशतक को ध्यान में रखते हुए उनके काव्य-कौशल पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ३५—"उद्धवशतक में काव्य-कला के आभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों पक्षों का पूर्ण सामंजस्य दिखलाई पड़ता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

उत्तर—रत्नाकरजी काव्याकाश के उन देदीप्यमान नक्षत्रों में से हैं जिनकी आलोक रश्मियाँ अखिल ब्रजभाषा-प्रांगण को उद्‌भासित कर रही हैं। भक्ति-कालीन भावुकता और रीतिकालीन चमत्कार-प्रियता से उन्होंने अपनी कला का शृंगार किया था। आधुनिक युग में जन्म धारण करके भी उन्होंने मध्ययुगीन प्रवृत्तियों को अपनाया था। उन्होंने अनेक काव्य ग्रन्थों का सृजन किया जिनमें 'गंगावतरण' एवं 'उद्धवशतक' ने विशेष लोकप्रियता प्राप्त की। वस्तुतः 'उद्धवशतक' रत्नाकरजी की कीर्ति कौमुदी का अमर आधार-स्तम्भ तथा ब्रज-भाषा काव्य की अक्षय विभूति है। रत्नाकरजी की काव्य-कला अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं के साथ उद्धवशतक की रंगस्थली पर थिरकती हुई दिखाई देती है। काव्य-कला के आभ्यन्तर तथा बाह्य दोनों पक्षों का मणि-काँचन संयोग इस रचना की विशेषता है। उद्धवशतक का कलात्मक सौंदर्य दर्शनीय है, भाषा, अलंकार, छन्द-विधान आदि का निखरा हुआ रूप मनोमुग्धकारी है परन्तु कहीं भी कला-सौन्दर्य ने भाव-सौन्दर्य की उपेक्षा नहीं की है। यहाँ अलंकार भावो-त्कर्ष में सहायक सिद्ध हुए हैं भाषा की शक्तियों एवं गुणों ने भाव-व्यंजना को और अधिक रमणीय बनाने में योगदान दिया है तथा कवित्त-छन्द में गोपियों की मूक विरह-व्यथा मुखर और सवाक् हो उठी है।

उद्धवशतक की काव्यगत विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. **भाव-सौन्दर्य**—उद्धवशतक में भावों का विश्लेषण तथा उनकी सजीव चित्रमयी अभिव्यक्ति मिलती है। वियोग शृंगार का कवि ने बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। कृष्ण के मथुरा गमन के अनन्तर सभी ब्रजवासी उनके विरह में संतप्त हो उठते हैं। यही दशा ब्रज-विरह में कृष्ण की भी है। कृष्ण और ब्रजवासियों की इसी वियोग-जनित अन्तर्व्यथा का उद्धवशतक में मार्मिक अंकन हुआ है। यह **उभयपक्षीय प्रेम** उद्धवशतक के विरह-वर्णन की

विशेषता है। कथानक का पटोद्घाटन अत्यन्त रमणीय, मौलिक और नाटकीय ढंग से हुआ है। यमुना में स्नान करते समय कृष्ण एक मुरझाए कमल पुष्प को देखते हैं और कमल-वदिनी राधा की विरह-विधुरा श्रीहत अवस्था उनके नेत्रों में साकार हो उठती है। राधा की स्मृति कृष्ण को अचेत बना देती है और तोते के मुख से 'राधा' नाम सुनकर ही उनकी मूर्च्छा भंग होती है। डगमगाते कदमों से वे अपने सखा उद्धव के साथ राजभवन लौट आते हैं परन्तु उनका हृदय ब्रज की स्मृतियों से व्याकुल है। उद्धव कृष्ण की इस व्याकुलता को देख कारण जानने के लिए जिज्ञासु हो उठते हैं। कृष्ण भी हृदयस्थ वेदना से सखा को अवगत कराना चाहते हैं, परन्तु कुछ कह नहीं पाते। विवशता की इस दशा में हृदय की अन्तर्व्यथा नेत्रों की अश्रु-धारा के माध्यम से व्यक्त हो उठती है—

"तौ लौं अधिकाई तैं उमंगि कंठ आइ भिचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अंखियानि तैं।"

कृष्ण की ब्रज-व्याकुलता का रत्नाकरजी ने बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। यह स्थल उद्धवशतक का अत्यन्त मार्मिक स्थल है।

उद्धवशतक का दूसरा भावपूर्ण स्थल उद्धव के ब्रज पहुँचने पर गोपियों की आतुर दशा के चित्रण का है। प्रियतम कृष्ण का संदेश जानने को उत्कंठित गोपियों का यह चित्र कितना सजीव और हृदयग्राही बन पड़ा है—

"भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गाँवनि में पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पातीं छाती छोहन छबै लगीं।
हमकौ लिख्यौ है कहा, हमकौ लिख्यौ है कहा
हमकौ लिख्यौ है कहा, कहन सबै लगीं।"

गोपियों की अभिलाषाओं पर तुषारापात होता है जब उद्धव उन्हें कृष्ण का प्रेम-संदेश देने के स्थान पर ज्ञान और योग का उपदेश देते हैं। गोपियों की इस उपदेश को सुनकर जो दशा हुई, उसका कवि ने सात्विकों तथा अनुभावों के माध्यम से चित्र अंकित किया है—

"सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहनानी, कोऊ थानहिं थिरानी है।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी है।।
कोऊ सेदसानी, कोऊ भरि दृग-पानी रही,
कोऊ घूमि घूमि परी भूमि मुरझानी है।
कोऊ स्याम स्याम कै बहकि बिललानी, कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी है।।"

निर्गुण ब्रह्म के खण्डन और सगुण ब्रह्म के मण्डन में उद्धवशतक की गोपियाँ जो उक्तियाँ कहती हैं उनमें नारी हृदय की सरलता, सरसता और सजलता अन्तर्निहित है। गोपियों को कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम पर अभिमान है। इस कृष्ण-प्रेम के समक्ष वे मुक्ति को भी हेय और तुच्छ सिद्ध करती हैं—

"मुक्ति-मुकुता कौ मोल-माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं।"

गोपियों के हृदय में नारी सुलभ सौतियाडाह भी विद्यमान है। प्रियतम कृष्ण ने उनके लिए ज्ञान और योग का नीरस उपदेश भेजा होगा, इस बात को उनका हृदय स्वीकार नहीं करता। उद्धव के आगमन के मूल में वे कुब्जा की ही कोई चाल सोचती हैं—

"रसिक सिरोमनि कौ नाम बदनाम करो
मेरी जान ऊधौ कूर कूबरी पठाए हौ।"

कृष्ण की निष्ठुरता पर गोपियाँ दुखी हैं, कृष्ण के कुब्जा के आकर्षण-पाश में आबद्ध हो जाने के कारण खिन्न भी हैं किन्तु फिर भी कृष्ण पर वे अविश्वास नहीं कर पातीं। उद्धव उनसे झूठ बोल रहे हैं, यह आशंका उनके हृदय में बलवती हो जाती है और वे इसे उद्धव के समक्ष व्यक्त कर ही देती हैं—

"प्रेम प्रन धारी गिरिधारी को सनेसौ नाहिं
होत है अन्देशो झूठ बोलत बनाए हो।
ज्ञान-गुन-गौरव-गुमान भरे फूले फिरौ
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ।"

गोपियाँ प्रेम-गर्विता हैं। वे कृष्ण की हैं और कृष्ण उनके हैं, यह अभिमान उनके रोम-रोम में समाया हुआ है—

"यह अभिमान तौ गवै हैं ना गए हू प्रान
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं।"

२. **अनुभाव विधान**—उद्धवशतक में भाव-व्यंजना का सौन्दर्य अनुभावों के माध्यम से व्यक्त हुआ है। कृष्ण का हृदय ब्रज की स्मृतियों के कारण जब वेदना-संकुल हो उठता है तब आँसू और हिचकियाँ ही उनकी वेदना का प्रकाशन करते हैं। उद्धव के ब्रज जाते समय भी उनके मुख से ब्रजवासियों के लिए कोई संदेश नहीं बाहर निकलता। कण्ठावरोध के कारण वाणी प्रकट नहीं होती और सात्विक अनुभाव अश्रु ही उनके हृदय स्थित भावों का उद्घाटन करते हैं—

"गहवर कंठ ह्वै न कढ़न संदेस पायौ
नैन मग तौ लौ आनि बैन अगवानी ह्वै।
प्राकृत प्रभाव सौं पलट मनमानी पाइ
पानी आज सकल संवार्‌यौ काज बानी ह्वै॥"

उद्धव के जाते समय कृष्ण की जो दशा हो रही है, उसका कवि ने अनुभावों के माध्यम से सफल अंकन किया है। पुरुष का नियंत्रित उच्छ्‌वास इन पंक्तियों में मानों सजीव और जीवन्त हो उठा है—

"आनि हिचकी ह्वै गरैं बीच सकस्यौई परै
स्वेद रस्यौई परै रोम-झंझरीनि सौं।
आनन-दुवार तैं उसाँस ह्वै बढ़्यौई परै
आँस ह्वै कढ़्यौई परै नैन-खिरकीनि सौं॥"

उद्धव के ब्रज पहुँचने पर कृष्ण संदेश जानने के लिए आतुर गोपियाँ उनके चतुर्दिक एकत्रित हो जाती हैं। आशा-निराशा के झूले में झूलती हुई गोपियाँ उत्सुकता की इस चरमावस्था में अपनी साँस तक रोके हुए हैं—

"आँस रोकि साँस रोकि पूछन हुलास रोकि
मूरति निरास की सी आस-भरी ज्वै रहीं।"

गोपियों की यह उत्सुकता और आतुरता उद्धव के हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहती, उद्धव की इस समय जो अवस्था हुई, उसे कवि ने अनेक अनुभावों के सुष्ठु सुगुंफन के द्वारा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है—

"दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ
गरिगौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रत्नाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से॥
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।
हौले से हले से हूल हूले से हियै में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥"

३. **चित्रोपमता**—उद्धवशतक की एक अन्य विशेषता उसकी चित्रोपमता है। कवि ने अपनी कल्पना की तूलिका में सजीवता के रंग भरकर काव्य की चित्रपटी पर जिन अनुपम चित्रों को अंकित किया है वे पाठकों के अन्त:करण को मुग्ध बनाये बिना नहीं रहते। उद्धव के छन्द अपने चित्रोपम वर्णनों के कारण पाठकों के हृदय का हार बन जाते हैं। एक उदाहरण देखिए—उद्धव ब्रज से विदा हो रहे हैं। उनके हृदय की इस समय बड़ी विचित्र स्थिति है। हृदय चाहता है कि इस पुण्य-भूमि को छोड़कर न जाऊँ किन्तु कर्तव्य-बोध आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहा है। उनकी इस अवस्था को कवि ने अमूर्त उपमानों द्वारा कुशलता से चित्रित किया है—

"माँगी बिदा माँगत ज्यौं मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लौं।
बिथकित साँस-लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौं गिरत पुनि उठत उसाँस लौं॥"

जिस प्रकार कोई हृदय को मसोसकर मृत्यु मांगता है, उसी प्रकार उद्धव ने ब्रजवासियों से विदा माँगी और अपने हृदय के उल्लास की तरह चुपचाप गमन किया। भाव यह है कि ब्रज से विदा लेते समय उद्धव को मृत्यु सदृश यंत्रणा हुई और बिदा माँगते ही जैसे अनजाने ही उनका उल्लास जाता रहा था, वे भी चुपचाप चल दिये। थकित श्वास के समान वे चलते हैं, आँसुओं के समान वे गिरते हैं, फिर उच्छ्वास के समान उठ बैठते हैं। उद्धव का यह चित्रांकन रत्नाकर जैसे कुशल भावना-चितेरे का ही काम है।

ब्रज से लौटे हुए उद्धव के साथ कृष्ण के मिलन का रत्नाकरजी ने जैसा सजीव चित्र खींचा है वह सम्पूर्ण ब्रजभाषा साहित्य में अनूठा है। तरल एवं अधीर भावुकता का ऐसा दृश्य अनुपमेय है—

"ब्रज-रज रंजित सरीर सुभ ऊधव को—
धाइ बलवीर ह्वै अधीर लपटाए लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत॥
कीरति कुमारी के दरस रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाये लेत॥"

उद्धवशतक एक से एक उत्तम स्थिर एवं गत्यात्मक चित्रों से भरा पड़ा है जो अपनी सजीवता तथा मार्मिकता में बेजोड़ बन पड़े हैं।

४. **भाषा-सौष्टव**—उद्धवशतक में रत्नाकरजी का ब्रजभाषा पांडित्य प्रकट हुआ है। ब्रजभाषा को शुद्ध साहित्यिक रूप प्रदान करने का उनका प्रयास स्तुत्य है। सुदूर वाराणसी में रहते हुए भी उन्होंने ब्रजभाषा की आत्मा से सम्पर्क स्थापित किया और पूर्व अधिकार के साथ उसका प्रयोग किया। संगीतात्मक प्रवाह-मयता, नाद-सौन्दर्य, उक्ति-वैचित्र्य आदि की छटा से उद्धवशतक की भाषा सुसज्जित है। "भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की..." नामक कवित्त संगीतात्मकता से आप्लावित है। संगीतात्मकता और नादात्मकता इससे उसी प्रकार छलक रही है जैसे सेव का रस अपने भीतर न समा सकने पर बाहर से झलक उठता है। प्रवाहमयता उद्धवशतक के सभी छन्दों में विद्यमान है। पाठक उस प्रवाह में बहता जाता है और यह धारा कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती है। भाषा की प्रवाहमयता के लिए निम्न पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं—गोपियों की कृष्ण विषयक आतुरता को देख उद्धव की दशा यहाँ वर्णित है—

"सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे भकुवाने से।
हौले से हले से हूल हूले से हिए में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥"

उक्ति-वैचित्र्य की छटा निम्न पंक्तियों में देखिए—

"टूकि टूकि ह्वै हैं मन-मुकुर हमारो हाय
चूकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तो बसिकै उजार्यौ मोंहि
हिय में अनेक मनमोहन बसावौ ना॥"

गोपियों की उक्ति कितनी सुन्दर और मार्मिक है। उद्धव कृष्ण को उनके हृदय से हटाने आए हैं किन्तु योगोपदेश से गोपियों का हृदय मुकुर शत-शत खण्डों में विदीर्ण हो जायेगा और उसके प्रत्येक टुकड़े में कृष्ण का बिम्ब प्रतिबिम्बित होने लगेगा। कृष्ण को गोपियों के हृदय से निकालने के इस प्रयास से तो कृष्ण और अधिक दृढ़ता से उनके हृदय में अवस्थित हो जायेंगे। फिर जब एक कृष्ण ने ही हृदय में बसकर उनकी यह दुर्दशा कर दी है तो अनेक कृष्ण मिलकर न जाने क्या करेंगे? उक्ति निःसन्देह अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी है।

उद्धवशतक की भाषा लोकोक्तियों और मुहावरों से समृद्ध है। 'निसि दिन काँटे लौं करेजै कसकत है' में 'काँटे की तरह कसकना', 'लौटि पौटि बात को बबण्डर बनावत क्यों', में 'बात का बवण्डर बनाना' एवं 'कहै रतनाकर करत 'टाँय टाँय वृथा' में 'टाँय टाँय' करना मुहावरों का सफल प्रयोग है। लोकोक्तियों का भी इस काव्य में सुन्दर प्रयोग है। एक प्रसिद्ध लोकोक्ति 'सब दिन जात न एक समान' के भाव को कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"कहै रतनाकर न सुख के रहे जो दिन
तौ ये दुख-द्वन्द्व की न रातें रहि जायेंगी।"

उद्धवशतक में लोकोक्तियों और मुहावरों के साथ सुन्दर सूक्तियाँ भी मिलती हैं। एक उदाहरण देखिए—

"एते बड़े बिस्व माँहि हेरे हूँ न पैये जाहि
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूंद लखिबौ कहौ।"

उद्धवशतक की भाषा भावानुकूल है। भाव और भाषा दोनों ही एक दूसरे के अनुकूल चले हैं। प्रत्येक शब्द भाव-व्यंजना में सहायक है। प्रसाद एवं माधुर्य गुण से युक्त उद्धवशतक की भाषा सहज ही पाठकों का हृदय मोह

लेती है। उद्धवशतक में प्रयुक्त शुद्ध ब्रजभाषा का रूप हमें निम्न कवित्त में देखने को मिलता है—

"जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हें
तातैं तुम ऊधौ हमें सोवत लखात हौ।
कहैं रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुख आवत सो बिबस बयात हौ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं ही तुम आप ही सुजानी समुझात हौं।
जोग-जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौं
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥"

५. **पद-लालित्य**—ब्रजभाषा की प्रकृति ही सुकुमार और ललित होती है अतएव ब्रजभाषा में रचे गए इस काव्य में पद-लालित्य का होना स्वाभाविक है। उद्धवशतक में मधुर एवं ललित पदावली सर्वत्र ही परिलक्षित होती है। कोई भी छन्द उठाकर देख लीजिए उसका पद-लालित्य मन्त्रमुग्ध बनाए बिना नहीं रहेगा। उद्धवशतक वियोग श्रृङ्गार का काव्य है। विरह-भावना बड़ी ही कोमल और सुकुमार होती है इस भावना का व्यक्तीकरण भी कवि ने वैसी ही ललित पदावली द्वारा किया है। उदाहरण के लिए ये पंक्तियाँ देखिए—

"मुक्ति मुकता कौ मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकौं।"

× × ×

"वै तौ हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही और
हम उनहीं की उनहीं की उनहीं की हैं।"

६. **अर्थ-गौरव**—अर्थ गौरव की दृष्टि से भी उद्धवशतक एक उत्कृष्ट काव्य-रत्न है। कवि ने लाक्षणिकता बढ़ाने वाले शब्दों का प्रयोग कर वस्तु का मूर्त रूप पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। निम्न उदाहरण में 'चमक' तथा 'अकुलाने' ऐसे ही शब्द हैं—

"कहै रतनाकर अचानक चमक उठी
उर घनस्याम कै अधीर अकुलाने तैं।"

उद्धव के योग एवं मुक्ति विषयक उपदेश पर गोपियाँ का निम्न परिहास जनक व्यंग्य विपरीत लक्षणा का उदाहरण है—

"केती मिली मुकति बधू-वर के कूबर मैं
ऊबर भई जो मधुपुर मैं समानी ना।"

७. **अलंकार विधान**—रत्नाकरजी ने उद्धवशतक में अलंकारों का प्रयोग भावोत्कर्ष के लिए किया है, पांडित्य प्रदर्शन के लिए नहीं। भावों की मार्मिक व्यंजना के लिए उन्होंने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों ही प्रयुक्त किए हैं। भाषा के इस साधन का कवि ने दुरुपयोग नहीं किया। केवल एक स्थल पर अतिशयोक्ति अलंकार द्वारा विरह का ऊहात्मक वर्णन मिलता है जो कि रीतिकालीन कवियों से प्रभावित है—गोपियाँ उद्धव के अनुरोध पर कृष्ण के लिए पत्र लिख रही हैं—

"ऊधौ के निहोरें फेरि नैंकु धीर जोरैं पर
ऐसौ अंग ताप कौ प्रताप भरि जात है।
सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैंकु डंक लागैं
अंक लागैं कागद बररि बरि जात हैं॥"

उद्धवशतक में उपर्युक्त स्थल को छोड़कर सर्वत्र ही अलंकार योजना भावाभिव्यक्ति में सहायक रही है। कृष्ण मथुरा आकर भी ब्रज की मधुर स्मृतियों को भुला नहीं सके। अपने अन्तरंग सखा उद्धव से वे कहते हैं कि ब्रज में प्राप्त सुखोपभोग मेरे हृदय में कांटे के समान कसक रहे हैं। कृष्ण की इस हृदयस्थ वेदना का कवि ने श्लेष परिपुष्ट सांगरूपक अलंकार द्वारा चित्रण किया है। कवि चमत्कार दर्शनीय है, साथ ही भाव-सौन्दर्य को इससे उत्कर्ष प्राप्त हुआ है—

"चलत न चार्‌यौ भाँति कोटिनि विचार्‌यौ तऊ
दावि दाबि हार्‌यौ पै न टार्‌यौ टसकत है।
परम गहीली, वसुदेव-देवकी की मिली
चाह-चिमटी हूँ सौं न खेंचौ खसकत है॥
कढ़त न क्यौं हूँ हाय बिथके उपाय सबै
धीर-आक-छीर हूँ न धारैं धसकत है।
ऊधौ ब्रज-बास के बिलासनि कौ ध्यान धँस्यौ
निसि दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है॥"

यमुना में स्नान करते समय मुरझाए हुए कमल को देख कृष्ण को कमल-मुखी राधा का मुरझाया मुख-कमल स्मरण हो आता है। उस कमल की गंध में उन्हें पद्मिनी नायिका राधा के शरीर की सुवास का साम्य मिलता है। **स्मरण** अलंकार के माध्यम से कवि ने कृष्ण के हृदय के राधा एवं उसके साथ ही संपूर्ण ब्रज के प्रति अनन्य अनुराग का सफल उद्घाटन किया है—

"न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास बासना सौं नैंकु नासिका लगायौ है।।
त्यौं ही कुछ घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाए परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए घरी द्वैक में जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा नाम कीर जब औचक सुनायौ है।।"

गोपियों को कृष्ण के प्रति अपने एकनिष्ठ अनुराग पर अभिमान था। उनके इस अभिमान की सुन्दर व्यंजना कवि ने भ्रान्तापह्नुति अलंकार द्वारा की है—

"अण्डे लौं टिटैहरी के जैहे जू विवेक बहि
फेरि लहिबे की ताके तनक न राह है।
यह वह सिन्धु नाँहि सोखि जो अगस्त्य लियौ
ऊधौ यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है।"

उद्धव के ब्रजागमन पर गोपियाँ कृष्ण संदेश जानने के लिए उत्कंठित होकर उनके चतुर्दिक एकत्र हो गईं। उनकी उत्सुकता चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। कृष्ण ने अपने संदेश में उनके लिए क्या लिखा है यह जिज्ञासा प्रबल वेग से उनके हृदय में उद्वेलित हो रही थी। गोपियों की इस उत्कण्ठा का कवि ने पुनरुक्ति तथा वीप्सा अलंकार के द्वारा सफल चित्रण किया है। उझकि-उझकि तथा पेखि-पेखि में पुनरुक्ति अलंकार है तथा अन्तिम दो पंक्तियों में वीप्सा की सुन्दर छटा है—

"उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।

हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ।।"

ब्रजाङ्गनाओं का कृष्ण के प्रति अटूट अनुराग देख उद्धव की ज्ञान-गरिमा नष्ट हो जाती है और वे प्रेम के रंग में रंग जाते हैं। ब्रज से लौटते हुए उद्धव की मनःस्थिति 'उपमा' अलंकार द्वारा कवि ने चित्रित की है—

"बिथकित साँस लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौं गिरत पुनि उठत उसाँस लौं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'उद्धवशतक' में अलंकार भावोत्कर्ष में सहायक हुए हैं। निःसन्देह कवि को अलंकार-योजना में असाधारण सफलता मिली है।

८. **छन्द सौष्ठव**—रत्नाकर जी कुशल छन्द-शिल्पी हैं। उद्धवशतक का प्रणयन उन्होंने कवित्त अथवा घनाक्षरी छन्द में किया है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इनके कवित्त 'बेजोड़' बताए हैं। शृंगार तथा वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए विद्वानों ने कवित्त छन्द सबसे उपयुक्त माना है। उद्धवशतक वियोग शृंगार की रचना होने के कारण इस छन्द में अत्यन्त निखर कर हमारे सामने आई है। उद्धवशतक का प्रत्येक कवित्त एक जगमगाता हुआ रत्न है, जिसका आलोक हमें चमत्कृत और मुग्ध करता है। अपने कवित्तों में रत्नाकरजी को असाधारण सफलता मिली है। उदाहरण के लिए निम्न कवित्त देखिए जिनमें उद्धव के ब्रज से मथुरा वापिस लौटते समय गोपियाँ अपने हृदयोद्गार व्यक्त कर रही हैं—

"हाल कहा बूझत बिहाल परीं बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबे के जोग
सूधौ सौ सन्देश याहि तू न ठहराइयौ ।।
औसर मिलै औ सरताज कछु पूछहि तौ
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह के कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ।।"

९. **शैली-विधान**—उद्धवशतक का सृजन प्रबन्ध-मुक्तक शैली में हुआ है। सम्पूर्ण काव्य अपने घटना-प्रवाह के कारण प्रबन्ध-काव्य की विशेषता से

आपूर्ण है और साथ ही प्रत्येक छन्द अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखने के कारण मुक्तक-काव्य की विशेषता भी रखता है। इस काव्य में कवि ने वार्तालाप या कथोपकथन शैली का भी समावेश किया है। कवित्त जैसे बड़े छन्द में पारस्परिक सम्वादों का निर्वाह कवि-कौशल का परिचायक है। कृष्ण अपने हृदय के ब्रजानुराग का अपने सखा उद्धव के समक्ष इस प्रकार कथन करते हैं—

"सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवतीं।"

उद्धवशतक में चित्रोपम शैली भी विद्यमान है। एक चित्र देखिए ब्रज में कुछ दिनों तक रहने के बाद जब उद्धव वापिस मथुरा लौट रहे हैं उस समय का दृश्य है—

"धाई जित-तित तें बिदाई हेत ऊधव की
गोपी भरीं आरति सम्भारति न साँसुरी।
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिये
कोऊ गुंज-अंजली उमाहे प्रेम-आँसुरी॥
भाव-भरी कोऊ लिये रुचिर सजाव दही
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नन्द, जसुमति नवनीत नयौ
कीरति कुमारी सुरवारी दई बाँसुरी॥"

उद्धवशतक में सरल तथा अलंकृत दोनों प्रकार की काव्य-शैलियाँ मिलती हैं। **"नन्द औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की, लाड-भरे लालन की लालच लगावती"** कवित्त में यदि सरल शैली है तो, **"राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं, प्रेम रत्नाकर हिये यौं उमगत है।"** नामक कवित्त अलंकृत शैली का उदाहरण है। परन्तु भाव-व्यंजना दोनों काव्य-शैलियों में उत्कृष्ट कोटि की है। रत्नाकरजी के अलंकार शब्द-विलास मात्र न होकर भावोत्कर्ष में सहायक हुए हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रत्नाकर का उद्धवशतक ब्रजभाषा काव्य-पारावार में एक प्रकाश-स्तम्भ के सदृश अपना आलोक विकीर्ण कर रहा है। अपनी भावुकता के कारण यह

काव्य यदि एक ओर सहृदयों के हृदय का हार बना है तो कलात्मकता के कारण दूसरी ओर काव्य-रसिकों को भी पर्याप्त परितोष प्रदान कर रहा है। इस काव्य-कुसुम में रस-राग-पराग-सौरभ सभी कुछ है और इसीलिए कविता-कानन को यह युगों-युगों तक सुरभित करता रहेगा, इसमें सन्देह नहीं।

प्रश्न ३६—कविवर रत्नाकर और डा० रसाल के 'उद्धव-शतक' की तुलनात्मक समीक्षा कीजिए।

उत्तर—भ्रमरगीत-परम्परा पिछली पाँच शताब्दियों से निरन्तर अबाध गति से प्रवाहित होती आ रही है। इस परम्परा ने हिन्दी साहित्य को जो अमूल्य मौक्तिक प्रदान किये हैं उनमें कविवर रत्नाकर तथा डा० रसाल के 'उद्धवशतक' का महत्वपूर्ण स्थान है। ये दोनों ही आधुनिक युग की कृतियाँ हैं। डा० रसाल ने अपने काव्य का नाम 'उद्धव-ब्रजाङ्गना' रखा था, किन्तु उसका प्रकाशन 'उद्धवशतक' के नाम से हुआ है। कथानक, भाव-सौन्दर्य, कला-पक्ष, दर्शन आदि विविध दृष्टियों से इन दोनों काव्य-कृतियों का तुलनात्मक विवेचन किया जा सकता है।

रत्नाकर का उद्धवशतक ब्रजभाषा काव्य का एक देदीप्यमान रत्न है। आधुनिक युग में जन्म-धारण करके भी रत्नाकरजी मध्यकालीन प्रवृत्तियों से अनुप्राणित थे। उनका उद्धवशतक इन्हीं मध्यकालीन भावनाओं से आपूरित रचना है। भक्तिकालीन भावुकता तथा रीतिकालीन कलात्मकता ने इस काव्य-ग्रन्थ के अन्तरंग और बहिरंग को सजाया है। एक ओर भावों का उद्दाम वेग पाठकों को अपने साथ बहाता ले चलता है तो दूसरी ओर कला वैशिष्ट्य अपनी मोहिनी द्वारा मंत्रमुग्ध भी बना देता है। भावपक्ष और कलापक्ष का मणि-काँचन संयोग इस काव्य में हमें सर्वत्र ही दृष्टिगत होता है।

डा० रसाल का उद्धवशतक भी भ्रमरगीत परम्परा की एक कड़ी है। यह काव्य गहन पांडित्य की पीठिका पर प्रतिष्ठित है। इसका आस्वादन एक विशेष बौद्धिक स्तर के पाठक ही कर सकते हैं। शब्द-चमत्कार की योजना, मुहावरों की लड़ी, अलंकारों की बहुलता, बहु-विषज्ञता के आधार पर विषय का गहन निरूपण इस काव्य की विशेषता है। रसाल जी का हृदय कलापक्ष के सौन्दर्य में अधिक रमा है, भाव-सौन्दर्य में कम। डा० आनन्द प्रसाद दीक्षित ने इस काव्य की भूमिका में लिखा है, **"उनकी कमनीय कविता-**

कामिनी जड़ाऊ जेवर पहनने वाली नागरिका है, सहज प्राकृत सौन्दर्य से उत्फुल्ल वन्या नहीं।"[1]

अब हम यहाँ पर रत्नाकर और रसाल के उद्धवशतक का तुलनात्मक विवेचन करेंगे।

कथावस्तु की दृष्टि से—भ्रमरगीत की कथावस्तु इतनी प्राचीन है कि कथा की दृष्टि से उसमें नवीनता के लिए स्थान नहीं रह गया है। इस कथा का उद्गम श्रीमद्भागवत है। भागवत के आधार पर सूरदास, नन्ददास आदि भक्त कवियों, रीतिकालीन कवियों ने एवं आधुनिक काल के कवियों ने इस पर काव्य-रचना की है। श्रीकृष्ण का अपने सखा उद्धव को व्यथित ब्रजवासियों को समझाने के लिए ब्रजभूमि भेजना, ब्रजाङ्गनाओं एवं ब्रज-जनों के अनन्य कृष्ण-प्रेम को देख उद्धव की ज्ञान-गरिमा का धूल-धूसरित होना, उद्धव-गोपी संवाद के मध्य भ्रमर का आगमन और उस भ्रमर को लक्ष्य कर गोपियों का व्यंग्य और उपालंभ की वर्षा करना, उद्धव का प्रेम के रंग में रंगकर मथुरा लौटना, इस कथावस्तु की मुख्य घटनाएँ हैं। इन्हीं घटनाओं के ताने-बाने पर भ्रमरगीतकारों ने अपनी काव्य-रचना की है। यह कथा इतनी प्राचीन है, इतनी छोटी-सी है कि इसे अधिक विस्तार देना और इसमें मौलिकता प्रदर्शन करना हो ही नहीं सकता है। यही कारण है कि इस परम्परा के कवियों का ध्यान कथा-योजना की अपेक्षा भावाभिव्यंजन, अनुभूतियों के प्रकाशन और कला-सौंदर्य की ओर अधिक गया है।

कथावस्तु की दृष्टि से रत्नाकर के उद्धव-शतक का अध्ययन यह प्रकट करता है कि इस काव्य में कथा का पटोद्घाटन अत्यन्त मौलिक एवं रमणीक ढंग से हुआ है। कथारंभ में मुरझाए कमल की योजना करके कवि ने उसे मर्मस्पर्शी एवं भावव्यंजक बना दिया है। यमुना में स्नान करते समय मुरझाए हुए कमल को देख कृष्ण को विरह विधुरा राधा की निष्प्रभ अवस्था का स्मरण हो आता है। रूप-साम्य एवं गंध-साम्य के कारण कमल द्वारा कमलमुखी राधा की स्मृति में कवि-कल्पना का सौंदर्य दर्शनीय है। कृष्ण अचेत हो जाते हैं और तोते के मुख से "राधा" नाम सुनकर ही कृष्ण की

---

१. **डा० रसाल का उद्धवशतक—भूमिका**, डा० आनन्दप्रसाद दीक्षित, पृ० १३।

चेतना लौटती है। यमुना में स्नान के निमित्त गए कृष्ण नेह की नदी में नहाकर वापिस लौटते हैं—

"कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौ
नीकैं तहाँ नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं ॥"

डा० रसाल अपनी कथा-योजना में सूर के निकट हैं। रत्नाकरजी ने कृष्ण के ब्रज-प्रेम का कोई कारण नहीं खोजा है क्योंकि कृष्ण पूर्व सुख की स्थायी स्मृति के कारण अपनी भक्तिभूषिता गोपियों को सदैव स्मृति में रखते हैं। कृष्ण की विह्वलता देख उद्धव उन्हें समझाते हैं और कृष्ण के अनुरोध पर ब्रज जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। यहाँ पर रसालजी ने कथा-प्रसंग में मौलिक उद्‌भावना की है और कृष्ण की ओर से ब्रजवासियों के लिए चार पत्र भेजे हैं। सूर ने अवश्य ही देवकी की ओर से नन्द, यशोदा आदि के प्रति तीन पत्र भिजवाए हैं किन्तु अन्य कवियों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। रसालजी ने कृष्ण के द्वारा नन्द, यशोदा, वृषभानु, गोपियों तथा राधा के लिए चार पत्र भेजने की कल्पना की है।

रत्नाकरजी के उद्धव के ब्रज पहुँचते समय मार्ग में ही उनकी ज्ञान-गठरी की गांठ के खुल जाने का और ज्ञान-राशि के तमाल के वृक्षों और करील के कुंजों में छिटक जाने का वर्णन किया है। रसालजी ने इस सम्बन्ध में सूर की ही भाँति दूर से आते हुए उद्धव को देख ब्रजवासियों का उन्हें कृष्ण समझ कर उल्लसित होना व्यक्त किया है और निकट आने पर उन्हें कृष्ण न पाकर वेदना मग्न हो जाने का वर्णन किया है। इस प्रकार हर्ष और विषाद की भाव-संधि का यह अनूठा संगम अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है।

रत्नाकर ने उद्धव के ब्रज पहुँचने पर गोपियों की कृष्ण-विषयक आतुरता का सजीव चित्र खींचा है और उद्धव के मुख से ज्ञान और योग के उपदेश को सुनकर ब्रजाङ्गनाओं की वज्राहत दशा का मार्मिक अंकन किया है।

ब्रज में कुछ समय तक रहने और गोपियों के कृष्ण-प्रेम को देख प्रेम के रंग में रंग जाने के उपरान्त जब कृष्ण मथुरा वापिस लौटने लगते हैं उस समय उद्धव की भाव-विह्वल अवस्था रत्नाकरजी ने चित्रित की है। मथुरा पहुँचने पर कृष्ण और उद्धव का अनूठा मिलने भी वर्णित किया है।

रसालजी ने उद्धव के मथुरा लौटते समय कथा-प्रसंग में कुछ अन्य घटनाएँ भी वर्णित की हैं। सारथी, अक्रूर आदि के द्वारा लौटते हुए उद्धव की दशा का चित्रण, कृष्ण तथा उद्धव का मिलन और उद्धव का उपालंभ ऐसी घटनाएँ हैं। उद्धव के साथ गोपियाँ अलग-अलग वार्तालाप करती हैं। इससे दो व्यक्तियों के बीच लम्बी वार्ता की एकरसता नहीं आई है।

इस प्रकार कथावस्तु की दृष्टि से रत्नाकर और रसाल के उद्धवशतक का तुलनात्मक विवेचन करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भ्रमरगीत-काव्य की कथा अत्यन्त पुरानी है अतएव उसे मौलिक रूप में प्रस्तुत करना किसी भी कवि के लिए संभव नहीं है। भागवत में वर्णित भ्रमरगीत कथा को ही थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ कविवर रत्नाकर एवं डा० रसाल ने अपने उद्धवशतक में अपनाया है।

भाव-पक्ष की दृष्टि से—भाव-पक्ष की दृष्टि से रत्नाकर और रसाल के उद्धवशतक का अनुशीलन करने से प्रकट होता है कि रत्नाकरजी को इस दिशा में अधिक सफलता प्राप्त हुई है। रत्नाकरजी भाव-व्यंजना के धनी हैं। भावों का जैसा सजीव, स्वाभाविक और मार्मिक चित्रण उन्होंने किया है वह हमें सूर की भावुकता का स्मरण दिलाता है। डा० रसाल चमत्कारवादी हैं। चमत्कार-प्रदर्शन में उनकी रुचि अधिक रमी है। यद्यपि भावों और अनुभूतियों का भी उन्होंने प्रकाशन किया है तथापि रत्नाकर के सदृश उन्हें सफलता नहीं मिली।

'रत्नाकर' जी ने अपने उद्धवशतक में कृष्ण की ब्रज वियोग जनित अन्त-र्व्यथा का सजीव चित्रण किया है। कृष्ण ब्रज की स्मृतियों में विकल हैं परन्तु अपने अन्तरंग सखा उद्धव के समक्ष हृदगत भावनाओं को अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जो पीड़ा, जो टीस, जो कसक उनके प्राणों में समाई है वह अनुभूति का विषय है अभिव्यक्ति का नहीं। कृष्ण के अन्तर में जो व्यथा सुलग रही है उसके प्रकाशन के लिए उन्हें शब्द नहीं मिलते। उद्धव से क्या कहें, कैसे कहें, कहाँ से कहाँ तक कहें, प्रारम्भ कैसे करें ? आदि प्रश्न मन में उठते हैं और जब वाणी भाव-प्रकाशन में समर्थ नहीं हो पाती तो हृदय की पीड़ा नयनों के अश्रु-जल के रूप में बरस उठती है—

"कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूँ तो कहाँ लौं कहैं
कैसे कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं।

तौ लौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अंखियानि तै।

कृष्ण अपनी व्यथा कथा शब्दों के माध्यम से कम, आँसू और हिचकियों के माध्यम से अधिक कहते हैं—

"नैकु कही बैननि अनेक कही नैननि सौं,
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं ॥"

अतीत की मधुर स्मृतियाँ बार-बार कृष्ण को अपनी ओर बुलाती हैं—

"सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती।"

रत्नाकरजी ने कृष्ण की विरह-वेदना का अत्यन्त सजल, तरल एवं संवेदनशील अंकन किया है।

डा० रसाल ने भी अपने उद्धवशतक में कृष्ण की व्यथा का चित्रण किया है, किन्तु वह रत्नाकर के वर्णन के सदृश मर्मस्पर्शी और प्रभावशाली नहीं है। 'रसाल' के कृष्ण भी उद्धव के समक्ष अपने अन्तर की विरह वेदना का उद्‌घाटन नहीं कर पाते—

"कैसे कहैं जैसे द्यौस ये हम बितावै हैं।"

गोपियों की आह और कराह से युक्त श्वास-प्रश्वास तथा राधा की दाहकता से आपूर्ण उच्छ्‌वासों का स्मरण कृष्ण को और अधिक वेदनामय बना देता है—

"गोपिन की आह औ कराह भरी सांसैं हमैं
दाह-भरी राधा की उसासैं तौ बुलावै हैं।"

कृष्ण के अनुरोध पर उद्धव के ब्रज जाने का सभी कवियों ने वर्णन किया है। रत्नाकरजी ने इस प्रसंग की अत्यन्त चित्रात्मक योजना की है। कृष्ण ने उद्धव को रथ पर चढ़ा दिया है किन्तु स्वयं वापिस नहीं लौट रहे। हृदय गोपियों के लिए विविध सन्देश भेजना चाहता है किन्तु मुख से बात नहीं निकलती। बातों की झोंक में कृष्ण रथ के साथ-साथ चले जा रहे हैं। निश्चय ही यह चित्र अत्यन्त सजीव, सुन्दर और गत्यात्मक बन पड़ा है—

"सीरे तपे विविध संदेसनि बातनि की
घातनि की झोंक मैं लगेई चले जात हैं॥"

डा० रसाल ने भी इस दृश्य का मोहक वर्णन किया है। कृष्ण अपने सखा उद्धव को बिदा दे रहे हैं किन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा है मानों—

"ऊधौ जात ऐसे जैसे स्याम के पठावन कौ
स्याम जात ऐसे जैसे स्याम ही पठाए जात।"

चित्रात्मक योजना में रत्नाकरजी को बहुत अधिक सफलता मिली है। उद्धव के ब्रज पहुँचने पर गोपियाँ कृष्ण का संदेश जानने की उत्कंठा से उनके चारों ओर एकत्रित हो जाती है। इस दृश्य का रत्नाकरजी की कुशल लेखनी ने सचित्र अंकन किया है—

"भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज गांवनि में पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नन्द पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पद कंजनि कै पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहन छबैं लगीं।
हमकौं लिख्यौं है कहा हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥"

ब्रज में आते हुए उद्धव को देखकर ब्रजवासियों की जो दशा हुई उसका रसालजी ने गत्यात्मक चित्र उपस्थित किया है—

"हेम-रथ जापै चारु चतुर चितेरे चित्र
रतन-रचाए रुचि रुचिर संवारे हैं।
आवत सिवाने सों इतैई चितै गोपी गोप
ग्वाल-बाल, जो गोपाल ऐबे की निहारे हैं॥
चातुरी बिहाइ धाइ आतुर सौं आगै आइ
'आओ स्याम ! आओ हरे !' प्रेम सौं पुकारे हैं।
निकट निहारे तो उचारे असहारें से ह्वै
स्याम न पधारे सखा स्याम के पधारे हैं॥"

कृष्ण से मिलन के लिए आतुर ब्रजवासियों ने जब उद्धव को निकट आने पर पहचाना होगा तब उनके हृदय को गहरा धक्का लगा होगा। हर्ष और विषाद की भाव संधि का कवि ने सुन्दर शब्द-चित्र उपस्थित किया है।

ब्रज में कुछ समय तक रहने के उपरान्त और ब्रजवासियों के अनन्य और एकनिष्ठ प्रेम के समक्ष अपनी ज्ञान गरिमा को भुला देने के अनन्तर जब उद्धव ब्रज से वापिस मथुरा लौटने लगते हैं, इस दृश्य का रत्नाकरजी ने बड़ा ही भाव-प्रवण चित्र अंकित किया है। कृष्ण के पास भेजने को उपहार लिए गोपिकाएँ चारों ओर से आकर उद्धव के पास एकत्रित हो जाती हैं। कोई मयूर पंख लिए है, कोई अंजली भर गुंज पुष्प, तो कोई सजाव दही लिए हुए है। नंदजी ने पीताम्बर, यशोदा ने मक्खन और राधा ने सुरीली बांसुरी भिजवाई। गोपियों से जब उद्धव कृष्ण के लिए संदेश माँगते हैं तब वे अपनी दशा शब्दों द्वारा नहीं, अभिनय द्वारा प्रस्तुत करने को कहती हैं—

"औसर मिलै और सरताज कछु पूछहिं तौ
कहियौ कछु न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह के कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबै कौ चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ॥"

गोपियाँ उद्धव से अनुरोध करती हैं कि हमारी वेदना का हाल कृष्ण को न कहना क्योंकि इससे उन्हें दुःख पहुँचेगा—

"नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछू
बात बृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
कहै रतनाकर कहति सब हा हा खाइ
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियो।
आँस भरि ऐहै और उदास मुख ह्वै है हाय
ब्रज-दुख त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।
नाम को बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियो॥

निश्चय ही कवि की भावुकता का यह अत्यन्त उत्कृष्ट चित्र है। 'राम-राम' शब्द प्रणाम वाची शब्द-युग्म भी है तथा विरहाकुल गोपियों के जीवनावसान की बेला की ओर भी इंगित कर रहा है जब 'राम राम' कहा जाता है।

'रसाल' की गोपियाँ भी उद्धव से अनुरोध करती हैं कि ब्रजवासियों के विरह दुख का समाचार कृष्ण को न देना, यहाँ की कोई बात कृष्ण को न बताना—

"हा ! हा ! हाथ जोरि, माथ नाइ कहैं एती सुनौ,
ह्याँ तैं ब्रज-नाथ कै समीप जब जैय्यौ तुम ।
बार-बार है तुम्हैं हमारी, हरि हूँ की सौंह,
सौंह करि कै न कछू ह्याँ की बात लैय्यौ तुम ।।"

उद्धव के हाथों ब्रजवासी कृष्ण के लिए उपहार भेज रहे हैं । उपहार क्या, अपने मंजुल मनोरथ ही वे भेजे दे रहे हैं—

"पुंज अभिलाषन के मंजु मिस माखन के
मिस मिसरी के मन-मनसा पठाए देत ।"

ब्रज से वापिस लौटते हुए उद्धव की दशा का रत्नाकरजी ने बड़ा मार्मिक अंकन किया है । प्रेम के रंग में रंगे हुए उद्धव ने ब्रजवासियों से उस प्रकार विदा माँगी जैसे कोई मन को मसोसकर मृत्यु मांगता है । बिदा मांगते ही उनके हृदय का उल्लास जिस प्रकार चला गया उसी प्रकार उन्होंने चुपचाप गमन किया । थकी हुई साँस के समान उनका चलना, रुक जाना, आँसुओं के समान गिरना और उच्छ्वासों के समान उठना वर्णित कर कवि ने उद्धव की प्रेमी दशा का सजीव चित्र उपस्थित किया है । अमूर्त उपमानों के सहारे उद्धव की दशा मूर्तिमान कर दी है । भाव-सौन्दर्य के ऐसे अनूठे चित्रों से उद्धवशतक भरा पड़ा है ।

'रसाल' जी ने भी उद्धव की ब्रज से प्रस्थान बेला का भावपूर्ण चित्र उपस्थित किया है । बड़ी कठिनाई से श्वासों, उच्छ्वासों और आँसुओं को रोककर ब्रजबालाएँ 'श्याम-श्याम' चिल्लाने लगीं और ब्रज-जनों ने 'राम-राम' कहकर उद्धव को बिदा दी । 'श्याम-श्याम' और 'राम-राम' की आवृत्ति द्वारा रसालजी ने बिदा के दृश्य का अंकन भी किया है और व्याकुल ब्रजवासियों की मरणासन्न दशा का बोध भी कराया है ।

ब्रज से लौट कर उद्धव जब मथुरा पहुँचते हैं उस समय कृष्ण से उनके मिलन का रत्नाकर की भाव-प्रवण लेखनी ने भावुकता-स्नात चित्र अंकित किया है । देखिए—

"ब्रज-रज रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाए लेत ।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थराए लेत ।।

कीरति-कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत।।"

'रसाल' जी ने भी कृष्ण और उद्धव के मिलन का सुन्दर चित्रण किया है—

"सहज सनेही दोऊ एक-दुसरैं कौ देखि
धाये अति आतुर न निज कौ संभारे हैं।
दोऊ एक दूसरे कौ ललकि लगाये अंक
एक दूसरे कौ अंक अंक तै न टारै हैं।।
कछु बिलगाइ, धाइ बेगि पुनि धारैं हियै
पुनि बिलगाइ बेर-बेर धाइ धारैं हैं।
कहत कछूक हू न, बैननि सौं, सैननि सौं,
नैननि सौं नेही दोऊ नेह-नीर ढारै हैं।।"

भावों का सजीव, मार्मिक और गत्यात्मक चित्र अंकित करने के लिए रत्नाकरजी ने अनुभावों का सहारा लिया है। मार्मिक अनुभाव-व्यंजना के वे धनी हैं। किसी-किसी कवित्त में उन्होंने अनेक अनुभावों का सुन्दर सुगुंफन उपस्थित किया है। भावावेश में जब वाणी भाव-प्रकाशन में असमर्थ हो जाती है। उस समय अनुभाव ही भावों को अभिव्यक्त करते हैं। पुलकावली, अश्रु-प्रवाह, उच्छ्‌वास, प्रस्वेद, वैवर्ण्य, कंप, कंठावरोध, शैथिल्य अनेकानेक अनुभावों का रत्नाकरजी ने सुन्दर चित्रण किया है। ज्ञान-गरिमा से अभिभूत उद्धव जब ब्रजाङ्गनाओं की प्रेम-विह्वल दशा को देखते हैं तो उनका ज्ञानाभिमान नष्ट होने लगता है। उद्धव की इस समय जो दशा हुई उसका रत्नाकर जी ने अनुभावों के माध्यम से सजीव चित्रण किया है—

"सूखे से, स्रमे से, सकबके से, सके से, थके,
भूले से, भ्रमे से, भभरे से भकुवाने से।
हौले से, हले से, हूल-हूले से हिये में हाय
हारे से, हरे से, रहे हेरत हिराने से।।"

'रसाल' के उद्धवशतक में अनुभावों की इतनी सुन्दर योजना नहीं मिलती। उनके काव्य में वाग्वैभव की प्रधानता है और अनुभाव-विधान गौण हो गया

है। किन्तु कहीं-कहीं अनुभावों की योजना मिल जाती है। निम्न छन्द में स्वरभंग तथा अश्रु सात्विक अनुभाव के साथ-साथ आंगिक विकारों का भी प्रदर्शन है—

"माधव ! विदाई देत आये इती दूर आप
ऊधौ कह्यौ आइ यौं सिवाने मधु-पुर के।
आई स्याम उर सौं उसाँस उठि ऊरध त्यों,
आँस हू त्यों नेह-भरे नैनिन सौं ढुरके॥
कंठ भरि आयौ यौं, कढ़ाये हू कढ़े न बैन,
सैन के सहारे प्रकटाये भाव उर के।
'स्वस्ति' बैन बोलत विलोकि रथ-गौन स्याम
मंगल मनाइ मौन भौन ओर मुरके॥"

भ्रमरगीतकारों ने कृष्ण, कुब्जा, उद्धव आदि को लक्ष्य कर गोपियों की कूटक्तियों का वर्णन किया है। कृष्ण उन्हें छोड़कर कुब्जा के आकर्षण-पाश में बंध गए हैं, इसलिए कृष्ण पर उन्हें रोष है। कुब्जा के नाम पर तो उनका हृदय ईर्ष्या और क्रोध से सुलग उठता है। रत्नाकर की गोपियाँ सोचती हैं कि उद्धव कृष्ण के सन्देश-वाहक न होकर कुब्जा के ही द्वारा यहाँ भिजवाए गये हैं—

"रसिक सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौं कूर कूबरी पठाए हौ।"

'रसाल' की गोपियाँ भी कुब्जा के प्रति अपने अन्तर का आक्रोश इस प्रकार व्यक्त करती हैं—

"अंगनि में कूबरी तरंगनि में तूंवरी सी,
रंगनि मैं ऊबरी उमंगनि उमैठी है।
कंस की पदाधिकारिनी की छटा छोहरी सो,
रानी की पदाधिकारिनी ह्वै आज बैठी है।"

रत्नाकर एवं रसाल का उद्धवशतक विप्रलम्भ श्रृङ्गार की कृतियाँ हैं। कवियों की यह परिपाटी रही है कि वे ऋतुओं का उद्दीपनकारी प्रभाव वर्णित करते हैं और उनसे वियोगिनी को त्रस्त दिखाते हैं। रीतिकालीन कवियों ने षटऋतु वर्णन को अपनाया है। रत्नाकरजी ने भी अपने उद्धवशतक में इसे ग्रहण किया है। बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं का छः

कवित्तों में उन्होंने अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। वर्षा ऋतु का मर्मस्पर्शी वर्णन देखिए—

"रहति सदाई हरियाई हिय-धायनि मैं
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पीर पूरति पुकारति हैं,
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है॥
लागी रही नैननि सौं नीर की झरी औ
उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम धाम ब्रज मंडल मैं
ऊधौ नित बसत बहार बरसा की है।"

संयोगकाल में प्रकृति की जो वस्तुएँ आनन्द प्रदान करती हैं वियोग काल में वे ही दग्धकारी बन जाती हैं। गोपियों के हृदय के घाव कृष्ण-वियोग में सदैव हरे-भरे बने रहते हैं, जैसे वर्षाकाल में चारों ओर हरियाली छा जाती है। उनकी ऊर्ध्व उच्छ्वासें पुरवा हवा के झोंके हैं। वे उसी प्रकार प्रियतम कृष्ण का नाम अहर्निश रटा करती हैं जिस प्रकार पपीहा 'पी पी' करता है। उनके कजरारे नयनों की रिमझिम वर्षा की झड़ी है चित्त की व्याकुलता दामिनी की दमक है। कृष्ण के बिना ब्रज में सर्वत्र ही वर्षाऋतु सदैव परिलक्षित होती है। निश्चय ही मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित रत्नाकर का प्रकृति-चित्रण अत्यंत मनोरम बन पड़ा है।

रसालजी ने भी अपने उद्धवशतक में ऋतु वर्णन किया है किन्तु उन्होंने केवल पावस और बसन्त का ही वर्णन किया है। गोपियाँ उद्धव से कहती हैं—

"ऊधौं ! या अनूठी है न झूठी, ऋतु द्वै ई इहाँ,
और ऋतु रूठी, सो न ब्रज लहिबो करै।
उठति उसांसै लुवै, साँसै तपी ग्रीषम सी,
भीषम सी दाह आह ! देह दहिबो करै।
पूरब की बात, नित्त छाये घनस्याम रहैं,
नैननि सौं लागियै झरीहू रहिबो करै।
रटति पपीहा सी रहै है बस पीहा पीहा,
जीहा दिन रैन-हू न चैन चहिबो करै॥

इस प्रकार भाव-पक्ष की दृष्टि से रत्नाकर और रसाल के उद्धवशतक का तुलनात्मक दिवेचन करने से स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकरजी को इस दिशा में अधिक सफलता मिली है। रत्नाकर भाव-व्यंजना के धनी हैं, भावों का हनन करके चमत्कार सृष्टि उन्हें अभीष्ट नहीं रही है। भावों का जैसा सजीव, स्वाभाविक और मार्मिक अंकन उन्होंने किया है वैसा प्रतिभाशाली कवि की लेखनी द्वारा ही संभव है। रसालजी चमत्कारप्रिय कवि हैं, उन्होंने चमत्कार सृष्टि पर अधिक ध्यान दिया है इसलिए रत्नाकर जैसी भाव-प्रवणता उनमें नहीं आ सकी।

प्रश्न ३७—कलापक्ष की दृष्टि से रत्नाकर एवं रसाल के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—भाषा की दृष्टि से—भाषा भावों की प्रधान वाहिनी है। रत्नाकरजी तथा रसाल के उद्धवशतक में ब्रजभाषा को अपनाया गया है। रत्नाकरजी की भाषा के संबंध में अचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है, 'ब्रजभाषा पर इनका अधिकार व्यापक और विस्तृत था। आरंभ की रचनाओं में भी ब्रजभाषा का एक सुष्ठु रूप है, किन्तु प्रौढ़ कृतियों में विशेषकर 'उद्धव शतक' में रत्नाकर का भाषा पांडित्य प्रखर रूप में प्रस्फुटित हुआ है।"[1] उद्धवशतक की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। उसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग है किन्तु ये शब्द ब्रजभाषा के रंग में रंगे हुए हैं। संगीतात्मकता, प्रवाहमयता चित्रात्मकता, नादसौदर्न्य, भावानुकूलता उद्धवशतक की काव्य-भाषा की विशेषताएँ हैं। अर्थ-गौरव तथा पदलालित्य ने भाषा-सौन्दर्य में चार चांद लगा दिए हैं। कहावतों, मुहावरों आदि ने भाषा को समृद्धता प्रदान की है।

जहाँ तक डा० रसाल के 'उद्धवशतक' की भाषा का सम्बन्ध हैं उसमें अर्थ गौरव रत्नाकरजी के काव्य से अधिक है। कारण यह है कि डा० रसाल ने काव्य में भाषा को प्रधानता दी है और भावों को उनकी तुलना में गौण माना है, जबकि रत्नाकरजी ने भाव और भाषा दोनों को ही काव्य के लिए समान महत्वपूर्ण स्वीकार किया है। रत्नाकरजी भाव-सौन्दर्य का हनन करके चमत्कार सृष्टि नहीं चाहते, जबकि रसालजी को शब्दों के सुचारु सुगुंफन

---

१. **हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी**, आचार्य नंददुलारे बाजपेयी, पृ० २६।

द्वारा चारु चमत्कार की सृष्टि में आनन्द आया है। भावानुकूलता, प्रवाह और संगीतात्मकता यदि रत्नाकर की भाषा के मुख्य गुण हैं तो अर्थ-गौरव, मुहावरों का चमत्कारिक प्रयोग आदि रसाल की काव्यभाषा की विशेषताएँ हैं। रत्नाकरजी की भाषा का माधुर्य, संगीत और भावानुकूलता इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

"उझवि, उझकि पद-कंजनि कै पंजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहन छबै लगी।
हमको लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमको लिख्यौ है कहा कहन सबै लगी॥"

डा० रसाल की भाषा के संबंध में शुकदेव बिहारी मिश्र ने लिखा है, "रसालजी ब्रजभाषा साहित्य के मर्मज्ञ विशेषज्ञ हैं और साथ ही कुशल कवि भी हैं। आपका काव्य कला-कौशल युक्त, गूढ़ तथा गम्भीर रहता है। वाक्य-विन्यास भाव प्रभाव पूर्ण, संयत और वैचित्र्यमय होता है। आपके शब्द सुगुफन में वर्ण-मैत्री और शब्दमैत्री का अच्छा रूप आता है। आपकी रचनाओं में वाग्वैचित्र्य के साथ चमत्कर की प्रधानता है।

मुहावरों पर रसालजी का अद्भुत अधिकार है। कहीं-कहीं तो पूरे छंद में मुहावरों की लड़ी सजी रहती है। कहीं-कहीं उन्होंने मुहावरों के मूल रूप में काव्योचित ढंग से कुछ संशोधन भी कर लिया है। आकाश कुसुम चुनना के स्थान पर 'नभ-फूल चुनना' प्रयुक्त किया है। 'सोना मिट्टी कर देना' के स्थान पर 'माटी करी हेम की' लिखा है। निम्न छन्द में एक ही शब्द से गढ़े 'भिन्न अर्थों काले मुहावरों' का सार्थक निर्वाह देखिए—

"चाहो जो कि बात बिगरी सो बनै बात ऊधौ,
बात बात मैं गढौ न, बात ना गढ़ाओ तुम।
बात बनी राखौ, बात बात, राखौं बस,
यौं बलि न बातई की बात पै चढ़ाओ तुम॥
बात चलै जैसी बस तैसियै चलैगी बात,
और कढ़ै बात, बात और न कढ़ाओ तुम।
बात को बनैबो और बात को बनैबो और
बात है गुनी की बात बेगुनी बढ़ाओ तुम॥"

मुहावरों के प्रयोग के द्वारा रसालजी ने अर्थ गांभीर्य, वाक्चातुर्य और चमत्कार सृष्टि में सफलता प्राप्त की है।

रत्नाकरजी भी मुहावरों के प्रयोग में सफल रहे हैं। निम्न छंद में अनेक मुहावरों और कहावतों का प्रयोग कर उन्होंने कवि-कौशल का परिचय दिया है—

"आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै
बीस बिसे ऊधौ बीर बावन कलाँच ह्वै।
कहै रतनाकर प्रपंच ना पसारौ गाढ़े
बाढ़े पै रहौगे साढ़े बाइस ही जाँच ह्वै॥
प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्यौ
एक ह्वै रहैं क्यों दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाँच तत्व बहकि बतावत सो
जैहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै॥"

इस प्रकार हम देखते हैं कि रत्नाकर और रसाल दोनों का ही भाषा पांडित्य उच्च स्तर का है। रसालजी की भाषा जन-साधारण के लिए नहीं है। वे एक सचेष्ट कलाकार हैं और उनका काव्य कला-मर्मज्ञों के लिए ही लिखा गया है। इसके विपरीत रत्नाकर की भाषा बोधगम्य है। ब्रजभाषा का जो माधुर्य, जो प्रवाह, जो दीप्ति रत्नाकर की भाषा में है वह उन्हें ब्रजभाषा काव्य का अन्तिम श्रेष्ठ कलाकार सिद्ध करती है। रत्नाकरजी के परवर्ती कवियों में भाषा की वह आंतरिक सुषमा और वैभवश्री नहीं है जो रत्नाकर के उद्धवशतक की भाषा में दिखाई देती है।

अलंकार की दृष्टि से—अलंकार कविता कामिनी की सज्जा के उपकरण हैं। अलंकार धारण करके कविता-कामिनी भूषण-भाराकान्ता रमणी की भाँति मंथर-मंथर गति से संचरण करते हुए काव्य-रसिकों के अन्तर को आकर्षित कर लेती है। किन्तु यदि कवि अलंकारों को काव्य-सौन्दर्य वृद्धि का साधन न मानकर साध्य मान बैठता है और अलंकारों की प्रदर्शनी खड़ी करने में ही कवि-कर्म समझने लगता है तो अलंकार काव्य-सौन्दर्य के अपकर्षक बन जाते हैं। अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से रत्नाकरजी का उद्धवशतक एक सफल कृति है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है परन्तु कहीं भी भावों को

गौण बनाकर अलंकारों को प्रधानता नहीं दी। सम्पूर्ण उद्धवशतक में केवल एक स्थल पर वे चमत्कार प्रदर्शन के मोह में पड़े है—

"सूखि जाति स्याही लेखिनी कै नैंकु डंक लागैं
अंक लागै कागद बर्रि वरि जात है।"

अन्यत्र सभी स्थलों पर अलंकारों का निम्न कवित्त में काव्योचित प्रयोग है। साँगरूपक के तो वे अद्वितीय स्रष्टा हैं। निम्न कवित्त में श्लेष से पुष्ट सांगरूपक का सुन्दर निर्वाह हुआ है और कहीं भी कवि को खींचतान की आवश्यकता नहीं पड़ी है—

"राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम-रतनाकर हियै यौं उमगत है।
त्यौं ही विरहातप प्रचण्ड सौं उमंडि अति
ऊरध उसास की झकोर यौं जगत है॥
केवट बिचार कौ बिचारौ पचि हारि जात
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है।
करत गंभीर धीर-लंगर न काज कछू
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है॥"

चन्द्रमा के आकर्षण के कारण समुद्र में ज्वार-भाटा आता ही रहता है— इसी प्राकृतिक घटना के आधार पर प्रस्तुत सांगरूपक निर्मित है। वीप्सा रत्नाकरजी का दूसरा प्रिय अलंकार है। उद्धवशतक में इसका सुन्दर प्रयोग मिलता है—

"रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात है।"

तथा

"वै तौ हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही और
हम उनही की उनही की उनही की हैं।"

अनुप्रास, श्लेष, उपमा, स्मरण, व्यतिरेक, विरोधाभास आदि विभिन्न अलंकार भी उद्धवशतक में अपनी छटा विकीर्ण कर रहे हैं।

अब अलंकारों की दृष्टि से डा० रसाल के उद्धवशतक को देखिए। इस काव्य में अलंकारों की प्रचुरता है। शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही

इस काव्य में मिलते हैं। श्लेष, यमक, वक्रोक्ति, वीप्सा, उपमा, विरोधाभास आदि रसालजी के प्रिय अलंकार हैं। निम्न पंक्तियों में 'गुना करैं' श्लिष्ट शब्द है जिसका एक अर्थ गुणाकर अर्थात् 'कृष्ण' तथा दूसरा 'गुणा करने' की क्रिया है। श्लेष का यह प्रयोग निश्चय ही बड़ा चमत्कारिक है—

"ऊधौ जू गुना करैं दिखावैं ह्याँ हमैं जो तब
सौ की एक बात कहै, बात तौ तिहारी हैं।"

यमक अलंकार का भी डा० रसाल ने बड़ी रुचि के साथ प्रयोग किया है। निम्न पंक्तियों में एक 'कलेस' शब्द का अर्थ क्लेश है और दूसरे का कला का ईश 'चन्द्रमा'। एक अर्थ अभंग रूप में तथा दूसरा सभंग रूप में निकलता है—

"ऊधौ जू कहैबै को कलेश वे दिखावैं कला
साँचे ह्वै रहैं कलेस कारन हमारे हैं।"

रसालजी ने एक-एक छंद में अनेक अलंकारों का सुन्दर सुगुंफन करके अपने श्लाध्य कौशल का परिचय दिया है। निम्न छंद में मन रूपी मीन को नेह-ताल में फांसने का जो रूपक उपस्थित है, उसमें श्लेष, मुद्रा पुष्ट परिकर आदि अलंकार भी विद्यमान हैं—

"करत कलोल लोल जीवन तरंगिनी की
उमंगी उमंगिनी-तरंगिनि की माल मैं।
दै दै चाव-चारौ यौं विमोह्यौ कै न चारौ चल्यौ
बहुत बिचार्यौ तऊ ऐबौ पर्यौ चाल मैं॥
बेधि बेधि बंसी सौं 'रसाल' जिन्हैं बंसीधर
निज गुन खैंचि गये गेरि नेह-ताल मैं।
ऊधौ दुखी दीनन कौ उन मन-मीनन कौ
आये फाँसिबे कौ तुम बेगुन के जाल मैं॥

रसाल के उद्धवशतक में शायद ही ऐसा कोई छंद हो जिससे अलंकार का सौष्ठव न मिलता हो। सभी छंद अलंकारों के मंजुल उदाहरणों से आपूरित हैं।

इस प्रकार रत्नाकर और रसाल के अलंकार-विधान पर एक सम्यक् दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि रत्नाकरजी ने अलंकार को भावाभिव्यंजन में सहायक बनाकर उपस्थित किया है जबकि रसालजी का उद्देश्य अलंकार

द्वारा चमत्कार सृष्टि रहा है। रसाल के काव्य में अलंकारों की लड़ी मिलती है, एक-एक छन्द में अनेक अलंकारों की छटा दिखाई देती है। वास्तव में इनका जितना ध्यान भाषा और अलंकार आदि पर रहा है उतना भावपक्ष पर नहीं। इसके विपरीत रत्नाकर का उद्धवशतक काव्य के अन्तरंग और बहिरंग दोनों पक्षों की दृष्टि से एक उत्तम कृति है। कलापक्ष का सौंदर्य रसाल के उद्धवशतक की विशेषता है तो भावपक्ष और कलापक्ष के मणि-काँचन संयोग ने रत्नाकर के उद्धवशतक को अधिक महत्त्वपूर्ण कृति बना दिया है।

दर्शन की दृष्टि से—रत्नाकर और रसाल का उद्धव भ्रमरगीत काव्य का विषय एक ओर विप्रलंभ शृङ्गार रहा है तो दूसरी ओर निर्गुण का खण्डन और सगुण के मण्डन के माध्यम से दार्शनिक निरूपण भी रहा है। यहाँ हम इन दोनों काव्य-कृतियों का दार्शनिक पुष्टि से तुलनात्मक विवेचन करेंगे।

रत्नाकर की गोपियाँ व्रज की सरल हृदया नारियाँ हैं। सूक्ष्म दार्शनिक विवेचना की गुत्थियाँ उन्होंने कभी पढ़ी या सुनी न थीं। उनके पास तो स्पंदनशील हृदय ही था जो भावों से भरा हुआ था। इसीलिए उद्धव के "कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है" जैसे दार्शनिक उपदेश को सुन वे स्तब्ध और मृतवत सी हो जाती हैं। तनिक संभलने पर वे उद्धव से पहले यह पूछती हैं कि प्यारे कृष्ण कब आयेंगे और फिर यह पूछती हैं कि क्या कृष्ण कभी वहाँ पर जमुना-तट पर जाकर बाँसुरी बजाते हैं? गोपियों के ये प्रश्न नारी हृदय की सरलता व्यक्त कर रहे हैं।

दूसरी ओर डा० रसाल की गोपियाँ षट्दर्शन-ज्ञाता और शास्त्रों की पण्डित हैं। रसालजी का विचार है कि योगिराज कृष्ण के सान्निध्य में रहने वाली गोपियाँ गाँव की गंवारिन अहीरिनें नहीं हो सकतीं। ज्ञान और प्रेम का उनमें समन्वय है स्वयं रसालजी ने इस सम्बन्ध में लिखा है, **"प्रसंग तो वही है—इसमें विशेषता मैंने यह रखी है कि गोपियाँ पूरे तर्क के साथ ब्रह्मवाद को अन्यथा सिद्ध करती हैं और अपनी भक्ति और प्रेम को सिद्ध करती हैं।"** रसालजी ने नारी को केवल भावना में बहने वाली ही नहीं अपितु बुद्धिमती, वाक्चतुर और शास्त्रज्ञ भी दिखाया है। इस प्रकार नारी पक्ष को उन्नत करने के लिए भी उन्होंने गोपियों को ज्ञान-युक्त और तर्कशील

दिखाया है। उद्धव के अद्वैतवाद के वे अत्यन्त सुसंस्कृत एवं व्यंग्यात्मक उपहास करती है—

"मग न दिखात ऊधौ मगन दिखात ऊधौ
मगन दिखात कीन्हे आपु ही में पाप कौ।
मानो औ प्रमानो औंर जानो-अनुमानौ और
और ही वखानो न ठिकानौ कछु आप कौ॥
ब्रह्म सबै जो यै, तो 'रसाल' भेदभाव कैसो
कैसे हमें गोपी लखौ ऊधौ आपु आपु कौ ?
बोधौ आपु स्याम को प्रबोधौ किध्यों गोपिन को
ब्रह्म कौ प्रबोध्य के प्रबोधौ आप आपु कौ।"

रसाल की गोपियाँ तर्कशीला हैं किन्तु रसाल की तर्क-पद्धति नंददास की तर्क-पद्धति से पृथक है। नंददास ने शास्त्रीय पद्धति का वाद-विवाद दिखाया है। उद्धव जो बात कहते हैं, गोपियाँ उसे काटती हैं तथा इस प्रकार उनमें उत्तर-प्रत्युत्तर होता है। रसालजी के उद्धव रत्नाकर के उद्धव के समान एक बार अपनी बात कहकर मौन हो जाते हैं और फिर गोपियाँ उनके उपदेश का नाना तर्कों से खण्डन करती हैं। नंददास और रसाल की गोपियों में एक और भी अन्तर है। नंददास की गोपियों के व्यक्तित्व के दो रूप प्रकट हुए है—पहले रूप में वे शुष्क, तार्किक और बुद्धिवादी हैं तथा इस रूप में उनका आचार्य रूप ही प्रकट है हृदय-पक्ष पूर्णरूपेण लुप्त हो गया है। दूसरे रूप में उनका कृष्ण विरह में आकुल प्रेमिका का स्वरूप है तथा यहाँ पर तर्क का अवलम्ब छोड़ वे भाव-विभोर हो उठती हैं। इस प्रकार नंददास की गोपियों का व्यक्तित्व दो रूप दिखाता है। रसाल की गोपियों में दर्शन, वाक्पटुता तथा भावुकता तीनों एक साथ मुखरित हुई हैं। एक साथ ही वे दर्शन तथा प्रेम की चर्चा करती हैं और उद्धव के उपदेश का तर्कों द्वारा खण्डन करती हैं। ब्रह्म को एक ही मानकर साँसारिक संबंध किस प्रकार उलझ जायेंगे, यह सोचकर गोपियों को हंसी आती है—

"पूत, पति, अनुज, पिता कौ सम देखैं आप
लेखैं हम गाँस सी गरे मैं गँसी आवै है।
मातु, पतिनी, सुतानुजा कौ आप मानें सम
हम अनुमानैं तौ हमैं तौ हँसी आवै है॥"

उद्धव घट-घटवासी की बात करते हैं, परन्तु उसे सचमुच जानते नहीं। गोपियों के अनुसार घट-घट को जानने वाले केवल कृष्ण हैं जो घट ही नहीं उससे एक मात्रा अधिक घाट या जमुना घाट को जानते हैं। गोपियाँ भी एक और घट को जानती हैं—पनघट या जमघट। अर्थात् या तो प्रण का पालन या मृत्यु घटना और घट-घट घाट-घाट को वे नहीं जानतीं—

"ऊधौं आप जानैं कै न जानैं सो न जानैं हम
जानैं इती आप घट-घट की बखानै हैं।
हाँ-हाँ जे तिहारे सखा साथी वै सुजान स्याम
घाट घाट जाने, घट घट की पिछाने हैं॥
हम अपनी तो कहै जानै पनघट एक,
एक अपनेई जमघट की प्रमाने हैं।
जानैं एक पन, एक घट, पन-घट एक
घट घट, घाट-घाट की न हम जानै हैं॥"

गोपियाँ वेदोपनिषद् की अनुगामिनी होकर ब्रह्म को रस रूप मानती हैं, भले ही उद्धव उसे ज्ञान रूप कहते रहें—

"ऊधौ जू सुनी है, तऊ आये गूढ़ ज्ञानिन सौं,
वेद हू 'रसो वै सः' ऐसो ई बतावै है।
तौ यह विवाद-वाद क्यों, जो तुम्हें ज्ञान-रूप
सोई रस-रूप ह्वै 'रसाल' हमें भावै हैं॥"

उद्धव कितना ही कहें कि यह जगत स्वप्नवत है किन्तु गोपियाँ तो इसका सार्थक नाम 'जगत' ही मानती हैं—

"यह जग जामै जगी विधि सौं जगाई जोति,
जगत सदाई तातै जगत कहावै है।"

गोपियाँ अपने प्रेम पयोनिधि की विशेषता बताती हैं—

"यह वहु सिंधु है न, जाकौ पैरि पायौ पार
ऊधौ ! यह प्रेम कौ अपार पारावार है।"

यद्यपि रसाल की गोपियाँ उद्धव से तर्क करती हैं किन्तु अन्त में विवाद में समय नष्ट हो जाने का उन्हें पश्चात्ताप होता है—

"यह अवसर स्याम कथा कौ मिलौ, सो गयो रसना की रलारली में।"

इसलिए गमन की बेला में वे उद्धव से प्रिय की मनभावती सुनने के लिए विकल हो उठती हैं—

"मन भावती हू कहि जाते कछू अब ऊधव ऐसी चलाचली में।"

इस प्रकार रसाल ने निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन करने में तर्क पद्धति पर विशेष बल दिया है। रत्नाकरजी की गोपियों में तर्क का यह रूप नहीं दिखाई देता। फिर भी उनकी सरलता, स्वाभाविकता और स्त्रियोचित अल्पज्ञता में भी एक मनोरमता आ गई है। उद्धव के ब्रह्म से उन्हें कोई लेना-देना नहीं, वे तो कृष्ण की दासी हैं—

"चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधे कहि देत एक कान्ह की कमेरी हैं।"

संसार स्वप्नवत है, उद्धव के इस विचार को वह उन्हीं पर घटित करते हुए उद्धव की हंसी उड़ाती हैं—

"जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हें
तातैं तुम ऊधौ हमें सोवत लखात हो।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुख आवत सौ विवस बयात हो॥
सौवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यों ही तुम आपही सुज्ञानी समुझात हो।
जोग जोग कबहूँ न जानै कहा जोहि जकौं
ब्रह्म ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥"

प्राणायाम के सम्बन्ध में भी वे बड़े भोलेपन से कहती हैं—

"एकै बार लैहैं भरि मीच की कृपा सौ हम
रोकि रोकि साँस बिन मीच मरिबो कहा।"

अपने प्रेम-पारावार की अथाहता को वे उद्धव से बताती है—

"यह वह सिन्धु नाहिं सोखि जो अगत्स्य लियो
ऊधौं यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है॥"

योगी और वियोगी की तुलना करते हुए गोपियाँ वियोगी को श्रेष्ठ सिद्ध करती हैं। योग-साधनों द्वारा प्राप्त होने वाली मुक्ति के प्रति भी उन्हें कोई आकर्षण नहीं।

"मुक्ति मुकता को मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन मानक ही वारि चुकीं।"

उद्धव के निर्गुण ब्रह्म को गोपियाँ उपयोगिता की दृष्टि से भी तुच्छ ठहराती हैं। हाथों के बिना वह उनकी गाय नहीं दुह सकता, पैरों के बिना नाचकर रिझा नहीं सकता है, मुख के बिना माखन नहीं खा सकता, वंशी नहीं बजा सकता, गोधन नहीं गवा सकता। आँख-कान के बिना उनकी विपत्तियाँ नहीं देख-सुन सकता। अतएव वे उद्धव से कहती हैं कि तुम विचारकर अपने मन में देखो कि—

"रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन-धौं हमारै काम आइहै।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नाकर एवं रसाल दोनों के ही उद्धवशतक में दार्शनिक विवेचन उपलब्ध होता है परन्तु रत्नाकर की गोपियाँ जहाँ सीधी सादी ब्रज-गाँव की स्त्रियाँ हैं वहाँ रसाल की गोपियाँ ज्ञानी, पंडिता एवं तर्क-शास्त्र की ज्ञाता हैं। रत्नाकर की गोपियाँ जो तर्क देती हैं। उनमें बुद्धि की अपेक्षा हृदय का प्राधान्य है। उनकी उक्तियाँ हृदय से निकली हैं और पाठकों के हृदय में ही सीधे स्पर्श करती हैं। उनमें नारी सुलभ सरलता, सरसता और मधुरता है तथा कहीं-कहीं व्यंग्य की मीठी मार भी है। रत्नाकर जी ने गोपियों को सरल हृदय-नारियाँ दिखाया है। दर्शनशास्त्र की गुत्थियाँ उन्होंने कभी सुलझाई न थीं, दर्शनशास्त्र उन्होंने कभी पढ़ा या सुना न था, फिर वे उद्धव से दार्शनिक वाद-विवाद कैसे करतीं ? उनके पास तो ले-देकर केवल एक हृदय था और वही उनकी उक्तियों में प्रदर्शित हुआ है। उद्धव के ज्ञान और योग के उपदेश का वे खण्डन करती हैं, योग की युक्तियों का विरोध करती हैं परन्तु उनकी युक्तियों में दार्शनिक उलझाव न होकर सरलता और सहजता है। दूसरी ओर रसालजी की गोपियाँ ज्ञान से आपूरिता हैं। उद्धव के समक्ष वे अपना चातुर्य प्रदर्शित करती हैं। वे कम रहें भी तो क्यों ? आखिर वे कृष्ण-प्रिया हैं। कृष्ण कविर्मनीषी हैं, उनकी प्रिया भी बुद्धिमती होनी ही चाहिए।

बहुज्ञता की दृष्टि से—कवि का काव्य-कौशल उसकी प्रतिभा, अभ्यास और बहुज्ञता पर अवलम्बित रहता है। प्रतिभा और बहुज्ञता का सम्मिलन सोने में सुगन्ध का कार्य करता है और कवि का काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का बन जाता है। रत्नाकर और रसाल दोनों ही कवि बहुविषयज्ञ थे और उनके

उद्धवशतक में उनकी बहुज्ञता का सुन्दर प्रकाशन हुआ है। कवि को अनेक विषयों का ज्ञाता ही न होना चाहिए, अपनी बहुज्ञता का काव्य में प्रसंग, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार प्रयोग करना चाहिए। तभी उसका काव्य उत्कृष्ट कोटि का कहलायेगा।

रत्नाकरजी के उद्धवशतक में विविध विषयों का ज्ञान प्रकट हुआ है। वैद्यक, ज्योतिष, मनोविज्ञान, दर्शन, रसायन शास्त्र और विज्ञान के सिद्धान्तों का सुन्दर काव्योचित उद्घाटन हुआ है। वैद्यक में सुदर्शन चूर्ण विषम ज्वर की अचूक औषधि मानी गई है। गोपियों के वियोग रूपी विषम ज्वर की अचूक औषधि भी सुदर्शन अर्थात् कृष्ण का सुन्दर दर्शन है। "रस के प्रयोगनि..." नामक कवित्त में कवि ने इसी भाव को व्यक्त करके अपने वैद्यक ज्ञान का परिचय दिया है। रसायन शास्त्र के ज्ञान का परिचय उन्होंने पारे से भस्म बनाने की प्रक्रिया के वर्णन द्वारा दिया है। विज्ञान के प्रकाश एवं प्रतिबिम्ब सम्बन्धी सिद्धान्त का वर्णन उन्होंने गोपियों की इस उक्ति द्वारा किया है—

"ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान भूरि
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं।"

गोपियों की कुब्जा के प्रति कटूक्तियाँ सौतियाडाह की परिचायक हैं और कवि के मनोवैज्ञानिक ज्ञान पर आधृत हैं। उद्धव के ज्ञानोपदेश में दार्शनिक सिद्धान्त व्यक्त हुए हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकरजी बहु-विषयज्ञ थे।

रसालजी के उद्धवशतक में भी उनकी बहुज्ञता प्रकट हुई है। कवि की बहुज्ञता व्यापक ज्ञान और निरीक्षण का परिणाम होती है। रसालजी के गणित, जौहरी, चूड़ी बनाने की क्रिया, ज्योतिष, दर्शन, रसोई, वृक्ष, फल, मिष्ठान, अस्त्र-शस्त्र, शकुन, स्वर्णकार आदि विविध विषयों के ज्ञान का परिचय दिया है। गोपियों की नवधा-भक्ति इतनी दृढ़ है कि उन्हें एक के बाद सब शून्य ही जान पड़ता है। गिनती गिनते समय १ से ९ तक पहुँचने के बाद हम १० पर आते हैं, और एक के आगे शून्य लगाकर ही दस पूरा करते हैं। इसलिए गोपियों को गणित के हिसाब से भी एक के बाद शून्य ही जान पड़वा है फिर उद्धव का उपदेश उनके लिए व्यर्थ है—

"एक रस प्रेम-नेम विधि नव तामैं लेखैं,
देखैं एक तासौं परे सून्य सबै आनै हैं।"

गोपियाँ तो आजन्म गुण या गुण को जानती रही हैं, उद्धव कितने भी छगुना बोलने में दक्ष हों ओर छतीस बनते हों, किन्तु गोपियाँ नौ के सतगुने तिरेसठ पहले ही जान चुकी हैं। उन्हें यह मालूम है कि इसी प्रकार बड़े-बड़े शठ पार उतर गए हैं, वे उद्धव की बातों में नहीं आ सकतीं—

"ध्याइ नौ सतैं तो तिरेसठ यौं पढ़ायो गुनी
छा के छगुने करि छतीसी तो पढ़ावौ न।"

इस प्रकार कवि का गणित का ज्ञान उद्धवशतक में यत्र-तत्र प्रकट हुआ है। अन्य शास्त्रों के ज्ञान के विषय में भी यही बात है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नाकर और रसाल दोनों ही बहुविषयज्ञ थे और उन्होंने अपनी बहुज्ञता का काव्यानुकूल प्रकाशन किया है।

उपसंहार—कविवर रत्नाकर एवं डा० रसाल के उद्धवशतक का एक तुलनात्मक विवेचन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन दोनों रचनाओं में रत्नाकर का उद्धवशतक अधिक महत्वपूर्ण कृति है। यद्यपि रसालजी का उद्धवशतक जिसका नाम 'उद्धव-गोपी संवाद' तथा 'व्रजांगना-विलाप' भी है, अपने ढंग की प्रशंसनीय रचना है परन्तु रत्नाकरजी के 'उद्धव शतक' की समानता में नहीं आ सकती। रत्नाकर जी ने काव्य के अन्तरंग और बहिरंग का जैसा सुन्दर समन्वय उपस्थित किया है, वह रसालजी नहीं कर रहे हैं। रसाल का ध्यान मुख्यतः कलापक्ष पर रहा है और उन्होंने भावों को गौण माना है जबकि रत्नाकरजी ने चमकार-सृष्टि के लिए कहीं भी भावों का हनन नहीं किया। रत्नाकर काव्य में कलापक्ष का सौन्दर्य भी है, भाषा, छंद और अलंकार का समृद्ध रूप भी है किन्तु उसके 'साथ-साथ' कवि ने भाव-व्यंजना पर भी पूरा ध्यान दिया है। भाषा भावानुकूल है, अलंकार भावोत्कर्ष में सहायक हैं और कवित्त छन्द में उद्धवशतक की रचना हुई है जो कि विप्रलंभ श्रृङ्गार की व्यंजना के लिए कविगणों का बहुप्रयुक्त छन्द रहा है। व्रजभाषा का जैसा प्राचीन माधुर्य जैसी स्वाभाविक संगीतात्मकता और जैसा साहित्यिक स्वरूप रत्नाकर जी ने उपस्थित किया है, वह उनके समकालीन अथवा परवर्ती किसी कवि के द्वारा संभव न हो सका है। रत्नाकरजी व्रजभाषा के अन्तिम 'क्लैसिक' कवि थे, अन्तिम महान कलाकार थे और उनका 'उद्धवशतक' उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति है। रसाल जी का 'उद्धवशतक', उक्ति-वैचित्र्य, चमत्कार सृष्टि एवं कलापक्ष की दृष्टि से अवश्य ही सुन्दर बन पड़ा है और उसकी गोपियों

की बुद्धिवादिता भी दर्शनीय है किन्तु इन विशेषताओं के होते हुए भी उसे रत्नाकर के उद्धवशतक के समकक्ष नहीं ठहराया जा सकता। ये दोनों ही भ्रमर-गीत परम्परा की कृतियाँ हैं किन्तु भ्रमर का उल्लेख इनमें से किसी में नहीं हुआ है। रसालजी ने तो कहीं भी भ्रमर का उल्लेख नहीं किया, रत्नाकर ने एक स्थान पर छन्द ७६ में अवश्य किया है—

मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमारैं नेह
देह मैं अछेह बिष बिषम बगारै हैं।"

अन्त में हम कह सकते हैं कि रत्नाकर एवं रसाल दोनों के ही 'उद्धवशतक' अपनी-अपनी विशेषताएँ रखते हैं किन्तु रत्नाकर का 'उद्धवशतक' भावपक्ष और कलापक्ष का मणि-काँचन संयोग होने के कारण ब्रजभाषा के प्राचीन माधुर्य से युक्त होने के कारण अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

प्रश्न ३८—ब्रजभाषा काव्य-धारा में कविवर रत्नाकर का स्थान निर्धारित कीजिये।

उत्तर—रत्नाकरजी हिन्दी कविता कानन के एक ऐसे सौरभ-सिक्त सुमन थे जिनमें रस-राग पराग सभी कुछ विद्यमान था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। क्या कविता, क्या गद्य लेख, क्या अनुवाद, क्या समालोचना और क्या सम्पादन —सभी दिशाओं में उन्होंने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। फिर भी वे कवि पहले हैं कुछ और बाद में। कविता के क्षेत्र में उनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

रत्नाकरजी ब्रजभाषा के कलाकार हैं। आधुनिक युग में जन्म लेकर भी वे प्राचीनता से अनुप्राणित रहे। उन्हें ब्रजभाषा काव्य का अन्तिम क्लैसिक कवि कहा जाता है। डा० बी० एन० भट्ट ने लिखा है, "खड़ी बोली के युग में जिन कवियों ने ब्रजभाषा का प्राचीन माधुर्य उपस्थित करके काव्य-रसिकों के हृदयों को ब्रज-भाषा सौंदर्य की ओर आकृष्ट रखा उनमें रत्नाकरजी का नाम अग्रगण्य है। उनके काव्य में अन्तर्तत्व और बाह्य-तत्व के सुन्दर समन्वय से युक्त ब्रज-भाषा की स्वाभाविक संगीतात्मकता का माधुर्य अतीव हृदयस्पर्शी है। वस्तुतः ब्रज काव्य-माधुरी का निर्वाणोन्मुख दीप बुझते-बुझते भी रत्नाकर काव्य के ब्याज से अपनी अन्तिम ज्योति-शिखा प्रज्वलित कर उठा था। उनके पश्चात् जिस ब्रजभाषा काव्य का निर्माण हुआ उसमें न तो वैसी आभ्यन्तरीय सुषमा

है और न कला चातुरी का वैशिष्ट्य, अतः निश्चय ही रत्नाकरजी ब्रजभाषा काव्य के अन्तिम महाकवि थे।"[1] रत्नाकरजी का ब्रजभाषा काव्य-धारा में स्थान निर्धारित करने से पूर्व हमें इस काव्य-धारा का एक सम्यक् अध्ययन अपेक्षित है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर एक दृष्टि डालने से प्रकट होता है कि मध्य युग में ब्रजभाषा हिन्दी काव्य-क्षेत्र की एकाधिपत्य धारिणी साम्राज्ञी थी। ब्रजभाषा को साहित्यिक स्वरूप प्रदान करने का श्रेय अन्ध कवि **सूर** को है जिन्होंने श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण की लीलाओं का मनोहर चित्रांकन किया। वात्सल्य और शृङ्गार की मधुर-मन्दिर स्रोतस्विनी उन्होंने प्रवाहित की जिसकी वारिधारा में अवगाहन कर भावुक हृदय रस-सिक्त हो उठते हैं। ब्रजभाषा का मधुर, कोमल और प्रांजल स्वरूप सूर की काव्य-भाषा में परिलक्षित होता है फिर भी सूर की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा नहीं कही जा सकती क्योंकि उसमें बुन्देलखण्डी, गुजराती तथा अरबी-फारसी के शब्द पर्याप्त मात्रा में हैं। साथ ही व्याकरण की अशुद्धियाँ भी पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होती हैं।

ब्रजभाषा-काव्य धारा में सूर के अनन्तर **नंददास** का नाम लिया जा सकता है। पद-लालित्य, भाषा-माधुर्य, भावानुकूल शब्द चयन, नाद-सौंदर्य आदि उनकी भाषा की ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं जो सहज ही हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती हैं। फिर भी नंददास की भाषा दोषरहित नहीं है। उसमें प्रौढ़ता एवं प्रांजलता का अभाव मिलता है।

नंददास के पश्चात् ब्रजभाषा काव्य-धारा में **रसखान** का नाम आता है। सरल, सरस, सजीव, कोमल एवं सुकुमार ब्रजभाषा लिखने में रसखान दक्ष थे। उनकी भाषा में एक ऐसा धारा-प्रवाह मिलता है जो उनसे पूर्व के ब्रजभाषा कवियों में न था। बोलचाल के प्रचलित शब्दों का भाषा में प्रयोग है और उसका पद-लालित्य हमें विमुग्ध बना देता है।

ब्रजभाषा काव्य परम्परा की अगली कड़ी **मतिराम** हैं। भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से इन्हें रीतिकालीन कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है। अपने 'रसराज' तथा 'ललित ललाम' नामक ग्रन्थों में इन्होंने ब्रजभाषा का सरस एवं प्रसाद गुण युक्त स्वरूप प्रस्तुत किया है। भाषा का प्रत्येक शब्द भावाभि-

---

१. **रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला**—डा० बी० एन० भट्ट, पृ० ३८३।

व्यंजन में सहायक है। कोरा चमत्कार प्रदर्शन करने वाली भाषा का प्रयोग नहीं है।

मतिराम के पश्चात् ब्रजभाषा काव्य-धारा में **घनानंद** का नाम लिया जा सकता है। घनानंद ने वियोग-श्रृङ्गार की कल-कल निनादिनी कालिन्दी प्रवाहित की है और इसके लिए उन्होंने ब्रजभाषा का संबल ग्रहण किया है। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। इनकी भाषा प्रेमी-हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोभावों का सजीव चित्र उपस्थित करने में सफल हुई है। लाक्षणिकता, चित्रोपमता, मानवीकरण, विरोधमूलक-उक्ति-वैचित्र्य एवं प्रतीक विधान इनकी भाषा की सामान्य विशेषताएँ हैं।

घनानंद के अनन्तर ब्रजभाषा काव्य की परम्परा में **पद्माकर** आते हैं। भक्ति एवं श्रृंगार के मणि-काँचन संयोग से आपूर्ण 'गंगा लहरी' एवं 'जगद्विनोद' इनके काव्य ग्रन्थ हैं जिनमें रमणीय, चित्रोपम एवं सुमधुर भाषा का प्रयोग हुआ है—**"नैन नचाय कहै मुसकाय लला फिर अइयो खेलन होरी"**। जैसी रमणीय पदावली पाठकों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। ब्रजभाषा के अन्तर्गत हाव-भावों की उन्होंने अत्यन्त रमणीय योजना की है। इन विशेषताओं के साथ ही पद्माकर की काव्य-भाषा में कुछ दोष भी मिलते हैं। शब्दों की तोड़-मरोड़, भाषा में एकरूपता का अभाव आदि इनकी काव्य-भाषा के दोष हैं। किन्तु भाषा की विपुल विशेषताओं के समक्ष ये दोष नगण्य से हैं और हम पद्माकर की काव्य-भाषा की सराहना किये बिना नहीं रह सकते।

पद्माकर रीतिकालीन कवि थे। रीतियुग के पश्चात् ब्रजभाषा का पतन प्रारम्भ हो गया। भारतेन्दु युग में साहित्यकार गद्यरचना के लिए खड़ी बोली का आश्रय ग्रहण करते थे और पद्य रचना ब्रजभाषा में करते थे। किन्तु इस ब्रजभाषा में उस सरसता, माधुर्य और निखार का अभाव था जो रीतिकालीन कवियों में परिलक्षित होती है। ब्रजभाषा के इस निर्वाणोन्मुख युग में उसे विगत गौरव से अभिमण्डित करने का श्रेय कविवर रत्नाकर को है। रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा में 'हिंडोला', 'समालोचनादर्श', 'हरिश्चन्द्र', 'कलकाशी', 'श्रृङ्गार लहरी', 'गंगा लहरी', 'विष्णु लहरी', 'रत्नाष्टक', 'वीराष्टक', 'गंगावतरण', 'उद्धवशतक' आदि रचनाएँ प्रस्तुत कीं और उसके निर्जीव तन

में प्राणों का संचार किया। उसमें उन मुहावरों और लोकोक्तियों का समावेश किया, जो विस्मृति के अंधगर्त में जा गिरी थीं। भाषा में संगीतात्मकता की सृष्टि की और उसे जन-जन के गले का हार बनाया। ब्रजभाषा में एकरूपता लाने का प्रयास किया तथा उसके संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया आदि के शब्दों के बहुप्रचलित रूपों में एकरूपता स्थापित की। रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा को ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से सज्जित किया तथा लाक्षणिकता एवं उक्ति-वैचित्र्य से सम्पन्न कर सहृदयों के आकर्षण का केन्द्र बनाया। डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने सत्य ही लिखा है, **"अपने प्रखर भाषा-पाँडित्य, ललित पद-योजना, भाषा की अनुपम कारीगरी एवं विशुद्ध भाषा-प्रयोग के कारण रत्नाकर ब्रजभाषा की काव्य-माला में अन्तिम कवि-मणि होकर भी सुमेरु की भाँति देदीप्यमान हो रहे हैं।"**[1]

रत्नाकरजी के समकालीन कवियों ने तथा उनके बाद के कवियों ने भी ब्रजभाषा में काव्य-सर्जना की; किन्तु रत्नाकर की रचनाओं के समक्ष वह काव्य द्युतिहीन सिद्ध होता है। भारतेन्तु हरिश्चन्द्र अवश्य ही प्रतिभा सम्पन्न कवि थे किन्तु उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी अतएव उन्होंने काव्य के साथ ही साहित्य की अन्य विधाओं पर भी ध्यान दिया। फलस्वरूप उन्हें काव्य के लिए अधिक अवसर न मिल सका। सत्यनारायण कविरत्न की प्रतिभा से भी इन्कार नहीं किया जा सकता; परन्तु वे अत्यन्त अल्पायु में इस लोक को छोड़कर परलोकगामी हो गए और उनकी प्रतिभा को विकसित होने का समय ही न मिल सका। वियोगी हरि ने 'वीर सतसई', दुलारेलाल भार्गव ने 'दुलारे दोहावली' तथा रामेश्वर 'करुण' ने 'करुण सतसई' नामक ग्रन्थों की रचना की है किन्तु इनमें से कोई भी रचना रत्नाकर काव्य की समानता नहीं कर पाती। श्री रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' का 'उद्धव-गोपी संवाद', श्री हरदयाल सिंह का 'दैव्य वंश' तथा श्री 'सरस' का 'अभिमन्यु वध' भी यद्यपि उच्चकोटि की काव्य-कृतियाँ हैं किन्तु रत्नाकरजी की रचनाओं के समक्ष हीन सिद्ध होती हैं। जो माधुर्य, जो संगीतात्मकता, जो भावों की आर्द्रता तथा जो श्रुतिमधुरता रत्नाकरजी के 'गंगावतरण' एवं 'उद्धवशतक' में है वह आधुनिक युग की अन्य ब्रजभाषा की कृतियों में नहीं। आधुनिक युग में ब्रजभाषा के गिरते हुए महत्व

---

१. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि—डा० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, पृ० ४८।

को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ब्रजभाषा में 'बुद्धचरित' नाम से एक अंग्रेजी ग्रन्थ का अनुवाद प्रस्तुत किया था। परन्तु इस रचना में भी वह माधुर्य और सरसता नहीं है जो रत्नाकरजी के काव्य में दिखाई देती है। शुक्लजी का कविरूप गौण है, गद्य-लेखक तथा आलोचक का रूप प्रधान है, जबकि रत्नाकरजी सबसे पहले कवि हैं तत्पश्चात कुछ और; यही कारण है कि रत्नाकरजी आधुनिक युग के ब्रजभाषा काव्य में मूर्धन्य स्थान के अधिकारी हैं।

रत्नाकरजी ने ब्रजभाषा में उच्चकोटि के काव्य-ग्रन्थों का सृजन कर अपनी महत् प्रतिभा का परिचय दिया है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में, **"जो ब्रजभाषा भक्तों की भावनाओं से भरकर रीतिकवियों की साज-सज्जा से चटकीली हो रही है, उसके साथ आलाप करना या तो किसी बड़े कलाभिज्ञ का ही काम है और या किसी निपट अनाड़ी का ही। जो भाषा अपनी सम्पूर्ण प्रौढ़ प्रतिभा और देशव्यापी प्रभाव के रहते हुए भी अपनी ही परिचारिका खड़ी बोली को अपना सौभाग्य सौंपकर विवश पड़ी हो, उस मानिनी को सान्त्वना देने के लिए उसके किसी अनन्य प्रेमी की ही आवश्यकता होगी। ब्रज की वह सभ्य सुन्दरी जब ग्रामीण और अनुपयोगी कही जा रही हो, तब उसके रोषदीप्त मुख के अश्रु-मुक्ताओं को संभालने के लिए बहुत बड़ी सहानुभूति अपेक्षित है।"**[1] यही सहानुभूति रत्नाकरजी ने दिखाई और अत्यन्त कुशल करों से दिखाई। ब्रजभाषा कामिनी के रोषदीप्त मुख को उन्होंने शान्त और सहज बनाया तथा उस मानिनी को अत्यन्त खूबी से सान्त्वना प्रदान की। ब्रजभाषा की खोई हुई गरिमा उन्होंने उसे पुनः वापिस दिलाई और उसको साहित्यकारों तथा पाठकों के आकर्षण का केन्द्र बनाया।

रत्नाकरजी ने विगत गौरवमय अतीत का ही पुनर्स्थापन किया। भाव और भाषा—किसी भी दिशा में वे नवीनता के प्रेमी न रहे। उन्होंने भक्तिकालीन भावनाओं तथा रीतिकालीन भाषा-सौष्ठव को ही अपने काव्य में पुनः मूर्तिमान किया। उन्हें हिन्दी का अन्तिम 'क्लेसिक' कवि कहा जा सकता है। खड़ी बोली के इस वर्तमान युग में उन्होंने सूरदास, नंददास, घनानन्द और पद्माकर की भाषा अपनाई। निःसन्देह वे ब्रजभाषा के अन्तिम महाकवि थे। आधुनिक युग के ब्रजभाषा काव्य में उनका स्थान सर्वोपरि है। आचार्य

---

१. हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी—पृ० २४।

नंददुलारे बाजपेयी के शब्दों में हम कह सकते हैं, "वर्तमान और कवियों में कोई ऐसा नहीं जो आजीवन इनकी धाक न मानता रह विक्रम की बीसवीं शताब्दी अब समाप्त हो रही है : अतः जब शताब्दी के आरम्भ में पुराने कवियों और उनकी कृतियों की जांच की जायगी, तब रत्नाकर को इस क्षेत्र में शीर्ष स्थान देते हुए, अ किसी को कुछ भी असमञ्जस न होगा।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते रत्नाकरजी ब्रजभाषा काव्य के अन्तिम 'क्लासिक' कवि हैं। आधुनिक ब्रजभाषा कवियों में कोई भी उनकी समानता नहीं कर सकता। सूर, घ पद्माकर आदि की जिस भाषा से साहित्यकार विमुख हो उठे थे उसके गौरव की कवि रत्नाकर ने पुनर्स्थापना की। इसमें संदेह नहीं कि उन कार्य के लिए ब्रजभाषा काव्य उनका चिर ऋणी रहेगा।